सहज आसिकी नाहिं

प्रवचन-क्रम

1. यह प्रेम का मयखाना है...2
2. सहज निर्मलता..19
3. आत्म-श्रद्धा की कीमिया..35
4. संन्यास यानी नया जन्म..49
5. अब प्रेम के मंदिर हों...66
6. है इसका कोई उत्तर..82
7. मैं तुम्हारा कल्याण-मित्र हूं..98
8. स्वाध्याय ही ध्यान है..114
9. जिसको पीना हो आ जाए...130 10..अंतर-आकाश के फूल 146

सहज आसिकी नाहिं
पहला प्रवचन

यह प्रेम का मयखाना है

पहला प्रश्नः संत पलटू ने सावधान किया हैः सहज आसिकी नाहिं। समझाने
की अनुकंपा करें कि यह आसिकी क्या है?

योग मुक्ता, आसिकी तो समझाई नहीं जा सकती; समझी जरूर जा सकती है।
प्रेम की कोई परिभाषा नहीं है। प्रेम स्वाद है। स्वाद की कोई परिभाषा करे तो कैसे करे? प्रेम अनुभव है। जीकर ही जाना जाता है। और यही खतरा है। इसलिए पलटू ने सावधान किया है। पहला कदम ही खतरनाक है; बिना जाने उतरना होता है।
मन तो उन चीजों में जाना चाहता है, जो परिचित हों, जानी-मानी हों, ज्ञात हों, जिनका गणित हमारे वश में हो। मन अज्ञात में जाने से डरता है; इसी किनारे को पकड़ रखना चाहता है, जोर से! पता नहीं दूसरा किनारा हो कि न हो! दिखाई भी तो नहीं पड़ता। दिखाई तो पड़ते हैं तूफान और आंधियां। दिखाई तो पड़ता है अनंत सागर का विस्तार। जहां तक आंखें जाती हैं दूर क्षितिज तक, सागर ही सागर। इस विराट सागर में इस छोटी-सी नौका को लेकर उतरना आसान तो काम नहीं है।
अगर परिभाषा हो सके, अगर व्याख्या हो सके, अगर अंधे को समझाया जा सके
कि प्रकाश क्या है, तो शायद वह आंख का इलाज करवाने को राजी हो जाए। लेकिन अंधे का डर यह है कि तुम बताते तो हो नहीं कि प्रकाश क्या है, कहीं ऐसा न हो कि उसकी तलाश में जिसका मुझे पता नहीं, वह भी खो जाए जिसका मुझे पता है। अपने अंधेपन से तो किसी तरह राजी हो गया हूं। माना कि लकड़ी से टेक-टेक कर चलना पड़ता है, पूछ-पूछ कर कदम उठाने होते हैं, सम्हल-सम्हल कर; लेकिन यह तो अब जानी-मानी बात हो गई। यह भाषा तो मुझे समझ में आती है। मगर तुम किस प्रकाश की बात छेड़ रहे हो? तुम किन आंखों की बात उठा रहे हो? जब तक पक्का न हो जाए, जब तक मुझे साफ न हो जाए--अंधा कहेगा--कि प्रकाश है, और ऐसा है, और मेरे अंधेपन से ज्यादा मूल्यवान है, कि अंधापन खोऊं तो कुछ खोएगा नहीं, लाभ ही होगा, हानि नहीं होगी... ।
मन तो हिसाबी-किताबी है। मन तो मारवाड़ी है।
मैंने सुना, बंबई और दिल्ली के बीच दो मारवाड़ी भाइयों में ट्रंक काल
से बात हो रही थी। छोटे भाई ने कहा, मां कह रही हैं आठ सौ रुपए भेज दो।
बड़े ने पूछा, क्या कहा? कुछ सुनाई नहीं दे रहा है।
छोटे ने और जोर से कहा, मां कह रही हैं आठ सौ रुपए भेज दो, आठ सौ रुपए।
बड़े ने वही बात दोहराई। छोटे ने और ऊंची आवाज में मां का संदेश कहा।
जब चार-छह बार यही सब चलता रहा तो आपरेटर जो दोनों की बात सुन रहा था, बीच में बोला, कमाल है, इतना साफ तो सुनाई दे रहा है! आपकी मां कह रही हैं कि आठ सौ रुपए भेज दो।
बड़े भाई ने कहा, तुझे इतना साफ सुनाई दे रहा है तो तू ही भेज दे न!
मन मारवाड़ी है; एक पैसा भी छोड़ना मुश्किल। लाभ तय हो जाए तो दांव लगा सकता है। मगर वह दांव नहीं है, धंधा है। मन जुआरी नहीं है, व्यवसायी है। और मन की यह जो अवस्था है, यही पूछती है--प्रेम क्या है?
सेठ चंदूलाल अपने भाई मंगूलाल के साथ किराने का धंधा करते थे। गांव
से खबर आई कि बूढ़े पिता मृतप्राय हैं। चंदूलाल ने कहा, अपने दोनों के जाने से क्या फायदा? तुम अकेले ही चले जाओ और जाकर तुरंत तार कर देना कि पिताजी की तबीयत अब कैसी है। और तुम्हें तो पता ही है कि एक तार में कम से कम आठ शब्द लिखे जा सकते हैं।
मंगूलाल जी मारवाड़ी घर चले गए। दूसरे ही दिन उनका तार आया, जो इस प्रकार था--पिताजी समाप्त, दाह-संस्कार कल; अरहर तेजी, गुड़ मंदी। आठ शब्द जब भेजे जा सकते हैं तो चार से क्यों चूकना!
पलटू कहते हैंः सहज आसिकी नाहिं!

पहली तो कठिनाई यही है कि मन के गणित में नहीं बैठता प्रेम। मन के गणित से बहुत बड़ा है। मन जीता है ज्ञात में और प्रेम है अज्ञात की यात्रा। मन की है सीमा और प्रेम है असीम। मन है तुम्हारा सोच-विचार और प्रेम है तुम्हारी भाव-दशा। यह अलग लोक है।
दिल ने इक चीज बड़ी बेशबहा मांगी है
हुस्ने-मगरूर की फितरत से वफा मांगी है
अब यह समझ में नहीं आता कि--
मसलहत है कि तवज्जो है या कि साजिश है
दिल ने इक चीज बड़ी बेशबहा मांगी है
हुस्ने-मगरूर की फितरत से वफा मांगी है
मसलहत है कि तवज्जो है या कि साजिश है
एक दुश्मन ने मेरे हक में दुआ मांगी है
प्रेम का तो कोई आशीर्वाद भी दे तो मन विचार में पड़ जाता हैः
मसलहत है कि तवज्जो है या कि साजिश है
धन का आशीर्वाद लोग चाहते हैं, प्रेम का नहीं। प्रेम तो दुस्साहस है।
योग मुक्ता, आसिकी सहज नहीं, महंगा सौदा है। लेकिन महंगा सौदा केवल शुरुआत में। जब दूसरा किनारा मिलेगा तब पता चलता हैः जो छोड़ा वह तो कुछ भी न था; जो पाया वह अपार है, अनंत है। जो छोड़ा वह तो क्षणभंगुर था; जो पाया वह शाश्वत है। जो छोड़ी वह तो ओस की बूंद थी और जो मिल गया है वह सागर है। मगर सवाल तो पहले है, छोड़ते समय है। ओस की बूंद को कैसे भरोसा दिलाओ कि तू अगर सागर में उतरेगी तो कुछ खोएगी नहीं। सारा गणित तो उसे यही कहता है कि सागर में उतरना अपने को खोना है, अपने को गंवाना है। पागल है तू? होश तेरे खो गए हैं? बच सकेगी तू?
पलटू का पूरा सूत्र है--
पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहिं।
सीस उतारें हाथ से, सहज आसिकी नाहिं।।
कहा कि बड़े बेवकूफ हैं, पागल हैं, दीवाने हैं, मस्ताने हैं, मदहोश हैं, परवाने हैं!
पलटू बड़े बेकूफ वे...
जो बूंद चली है सागर में उतरने, पागल ही तो है। समझदार बूंदें, सयानी बूंदें कहेंगीः यह क्या कर रही है? मिट जाएगी। अपने हाथ से अपने को मिटाना, आत्महत्या है यह।
प्रेम आत्मघात है, क्योंकि अहंकार तो मिटेगा। अहंकार तो नेस्त-नाबूद
हो जाएगा। अहंकार तो खोजे से न मिलेगा। बूंद जैसे ही सागर में उतरी कि बूंद की सीमाएं समाप्त, बूंद गई, सदा के लिए गई। अब लाख खोजो तो भी पा न सकोगे।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।
अब कैसे खोजोगे उस बूंद को जो सागर में समा गई है? जो अपने को गंवाने
को राजी है, जो अपनी सूली--जैसा जीसस ने कहा--अपने ही कंधों पर रख कर चलने को राजी है, वही केवल आशिक हो सकता है। हालांकि पीछे पता चलता है कि बूंद ने कुछ भी नहीं खोया। अरे बूंद होना खोना कुछ खोना तो नहीं है; सिर्फ सीमा का खोना है, क्षुद्रता का खोना है। और हो गई विराट!
कबीर पहले तो कहेः
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।।
लेकिन जब हिरा ही गए कबीर--यह पहले की बात है, यह किनारे पर खड़े होकर कहा होगा--और जब दूसरा किनारा मिला तो, जब बूंद सागर में खो ही गई तो, तो फिर दूसरा वक्तव्य कबीर का और भी अदभुत हैः
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।।
पहला वचन है किनारे पर खड़ी हुई बूंद का; दूसरा वचन है निर्वाण के बाद, समाधि के बाद, प्रेम की पराकाष्ठा के बाद, परमात्मा की अनुभूति के बाद।
रात यूं दिल में तेरी खोई हुई याद आई

जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए
जैसे सहराओं में हौले से चले वादे-नसीम
जैसे बीमार को बेवजह करार आ जाए
याद भी आ जाए सागर की, याद भी, तो यूं हो जाता है--
जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए
जैसे सहराओं में हौले से चले वादे-नसीम
जैसे बीमार को बेवजह करार आ जाए
बिना किसी कारण के जैसे बीमार के भीतर स्वास्थ्य की एक लहर दौड़ जाए! बिजली कौंध जाए! जैसे अचानक रात टूट जाए! जैसे अचानक रात टूट जाए, सुबह हो जाए; नींद टूट जाए, जागरण आ जाए। सिर्फ याद भी आ जाए बूंद को सागर की, तो अपने प्राणों की याद आ गई, अपने स्वरूप की याद आ गई। क्योंकि बूंद है तो सागर ही। सागर से ही आई है, सागर में ही लीन होना है। और ये जो बीच के थोड़े- से क्षण हैं, जब सागर में नहीं है, तब भी स्वरूपतः तो सागर ही है। अगर एक बूंद के राज को भी हमने पूरी तरह समझ लिया तो हमने सारे जगत के सागरों को समझ लिया। सूत्र तो वही होगा--एच.टू.ओ.। एक बूंद का विश्लेषण और सारे सागरों का रहस्य समझ में आ जाता है। प्रेम की एक बूंद पर्याप्त है।
योग मुक्ता, मामला लेकिन दीवानों के लिए है, पागलों के लिए है; होशियारों के लिए नहीं, सयानों के लिए नहीं। परवाने को देखा न! परवाने को देखा है नाचते हुए? चल पड़ता है शमा की तरफ--मरने जा रहा है, मिटने जा रहा है! सब गंवा बैठेगा। लेकिन लाख समझाओ परवाने को, शमा जली और परवाना चला। न मालूम कैसे दूर-दूर तक उसे खबर मिल जाती है। खिंचा चला आता है, जैसे चुंबक खींचती हो। रोक ही नहीं पाता अपने को। और फिर शमा के पास आकर नाचता है।
वह रक्स, वह नृत्य अपूर्व है! अपनी ही मृत्यु के पहले वह उत्सव! वही उत्सव तो मैं संन्यास के नाम से तुम्हें सिखा रहा हूं। रक्स देखा है परवाने का! वही संन्यास है। यह अहंकार की मृत्यु के पूर्व नृत्य है, उत्सव है, समारोह है। यूं भी क्या रोते-रोते मरना! जो रोते-रोते मरा है, फिर जन्मेगा, फिर मरेगा, फिर जन्मेगा, फिर मरेगा। जो हंसते-हंसते मरा, नाचते हुए मरा, फिर उसका कोई जन्म नहीं, फिर उसकी कोई मृत्यु नहीं।
संन्यास का अर्थ है अपने अहंकार को जला देना, राख कर देना या बुझा देना। जैसे कोई दीए को फूंक मार कर बुझा दे। और आसिकी का वही अर्थ है। जिन्होंने अपने को मिटाया है उन्होंने ही परमात्मा को जाना है।
आनंद मोहम्मद ने ये गीत मुझे लिखे--

क्या अजब है मकामे-जुस्तजू भी
जहां मैं भी नहीं, तू ही।
निगाहें झुक गईं, पासे-अदब से
आपको देखा खुदा के रूबरू ही।
जब से तेरी निगाह ने इस दिल के दीए जलाए हैं तेरी महफिल में हमने नगमें बहुत गुनगुनाए हैं

मोहब्बत हो गई, हो गई
वह कहानी थी और यह हकीकत हो गई
कोयल ने दी जो सदा,
कोयल की कुहू-कुहू जामे-शराब हो गई
मोहब्बत हो गई, हो गई
इस मयखाने में तेरी आंखों से हम पी रहे थे
जिंदगी यह अब शराब हो गई, हो गई
कौन जाए काबा और कौन जाए काशी
सर को झुकाया तो इबादत हो गई, हो गइ
र्मोहब्बत हो गई, हो गई

योग मुक्ता, मत पूछ कि प्रेम क्या है। न शब्दों में समाता है, न शास्त्रों में समाता है। कितने गीत लिखे गए प्रेम के, लेकिन प्रेम अनगाया

ही रह गया है। कितने बुद्धों ने जाना, जीया। कितनी मीराओं ने पहचाना, पीया। लेकिन अनकहा ही रह गया है। जिसने जाना वही गूंगा हो गया। गूंगे केरी सरकरा! कहना भी चाहो तो नहीं कहा जा सकता। बात इतनी बड़ी है, सब शब्द छोटे पड़ जाते हैं, बहुत छोटे पड़ जाते हैं। कहो, और कहते ही असत्य हो जाता है। अनुभव करो। और अगर यहां अनुभव न हो सके, योग मुक्ता, तो फिर कहीं भी अनुभव न हो सकेगा। यह तो मंदिर ही प्रेम का है। यह तो मयखाना ही प्रेम का है। यहां मैं शास्त्र तो नहीं सिखा रहा हूं; शास्त्रों से मुक्ति सिखा रहा हूं। यहां कोई शब्द और सिद्धांत तो तुम्हें नहीं दे रहा हूं। तुम्हारे भीतर सोई हुई प्रेम की जो अभीप्सा है, उसको उकसा रहा हूं, जगा रहा हूं। सबके भीतर अंगार है, लेकिन राख में दब गया है। जरा राख झाड़ देनी है और अंगार प्रकट हो जाएगा। और एक छोटी-सी चिनगारी पूरे जंगल में आग लगा देती है।
पलटू बड़े बेकूफ वे...
पलटू ठीक कहते हैं कि हैं तो पागल बिल्कुल!
... आसिक होने जाहिं।
आसिक होने चले हो? पागल हो गए हो? अरे दुकान करो, धंधा करो, धन कमाओ, पद
की यात्रा करो। आसिक होने चले हो? अपने हाथ से अपने को मिटाने का आयोजन कर रहे हो?
अभियुक्त शराबी था। उस पर आरोप था कि उसने नशे में अपनी सास पर गोली चलाई। वह तो निशाना चूक गया, वरना सास की जान चली जाती। अंत में जज ने अपराधी को समझाया कि देख भाई, थोड़ा सोच। शराब के कारण ही तुममें सास के प्रति इतनी घृणा पैदा हुई। शराब के कारण ही यह घृणा इस हद तक बढ़ी कि तुम पिस्तौल खरीदने पर मजबूर हुए। शराब के कारण ही तुम पिस्तौल लेकर सास के घर तक गए। शराब के कारण ही तुमने सास को पिस्तौल का निशाना बनाया। और शराब के कारण ही तुम निशाना भी चूक गए।
शराबी बेचारा निशाना चूकेगा ही। और प्रेम तो शराब है; इस जगत के सब निशाने चूक जाएंगे। न धन मिले, न पद मिले, न प्रतिष्ठा मिले। लेकिन इतना दांव पर लगाने को जो राजी न हो, वह परमात्मा को पाने का हकदार नहीं।
सीस उतारें हाथ से...
अपने ही हाथ से अपनी गर्दन काटनी है। कठिन काम है।
... सहज आसिकी नाहिं।
कोई दूसरा भी गर्दन काटे तो आदमी अपने को बचाता है; अपने ही हाथ से अपनी गर्दन काटनी है। अत्यंत कठिन है।
गर्दन से मतलब है--अहंकार। सिर प्रतीक है अहंकार का। अहंकारी व्यक्ति अपने सिर में ही जीता है। अहंकारी व्यक्ति की अकड़, सिर उसका झुकता ही नहीं। कहीं भी नहीं झुकता। झुकना उसकी भाषा नहीं है। और इस सीस को उतार कर रख देना है।
सीस उतारें हाथ से...
और कोई दूसरा भी नहीं काटेगा, खुद ही। तो पागलपन चाहिए ही चाहिए। बिना पागल हुए यह असंभव है।

ऐ काश की सोजे-गम अश्कों में न ढल जाए
दामन से जो पोंछूं दामन मेरा जल जाए
हमको तो गुलिस्तां के हर गुल से मोहब्बत है
गुलचीं को जो नफरत हो गुलशन से निकल जाए
हर खार हमारा है, हर फूल हमारा है(क्यूं?)
(कि) हमने ही लहू देकर गुलशन को संवारा है हम डूबने वालों को काफी ये सहारा है(क्या?) (कि) साहिल पे तू आ जाना, हर मौज कनारा है
सौ जुल्म किए तुमने, इक आह न की हमने(क्यूं?) वो दर्द तुम्हारा था, ये दर्द हमारा है
हम तश्नालबी अपनी दुनिया से छुपा लेंगे साकी से रुसवाई अब हमको गवारा है

अब उनका हसीं आंचल किस्मत में नहीं शायद(क्यूं?) (कि) आंसू भी हमारे हैं, दामन भी हमारा है
खामोश फजाओं में बजने लगी शहनाई
(अरे) ये तुमने सदा दी है या दिल ने पुकारा है
आंखों में जब अश्कों के तूफान मचलते थे
हमने वो जमाना भी हंस-हंस के गुजारा है
उनके लबे-नाजुक को क्या राज बताएंगे
(अरे) कुछ तू ही बता ऐ दिल क्या हाल हमारा है(क्यूं?)
(कि) आंसू भी हमारे हैं, दामन भी हमारा है
प्रेमी का रास्ता एक दृष्टि से तो आंसुओं से भरा है और दूसरी दृष्टि
से फूलों से। उसके आंसू ही फूल हो जाते हैं। और प्रेमी का रास्ता मंदिर और मस्जिदों की तरफ नहीं जाता। प्रेमी का रास्ता काबा और कैलाश की तरफ नहीं जाता। प्रेमी का रास्ता किसी परमात्मा की मूर्ति, प्रतिमा, धारणा से संबंधित नहीं है। प्रेमी का रास्ता तो यह सारे अस्तित्व से प्रेम है। ये वृक्ष, ये चांद, ये तारे, ये हवाएं, ये बादल, ये पहाड़, ये नदियां, ये लोग, ये पशु, ये पक्षी, यह सारा अस्तित्व प्रेमी के लिए मंदिर है। यही उसका काबा है, यही उसकी काशी है।

हर घड़ी अहंकार को पोंछते चलो, मिटाते चलो, जलाते चलो। टिकने न दो, रुकने न दो, सहारा न दो। भूल कर भी उसे भोजन मत दो। जाने-अनजाने भी उसकी रक्षा न करो, उसे मर जाने दो। अहंकार एक झूठ है। मर जाए तो सत्य प्रकट हो। सत्य को खोजना नहीं है। सत्य तो हमारे भीतर विराजमान है, और हमारे बाहर भी। सत्य का अर्थ--वह, जो है। और असत्य का अर्थ--वह, जो है नहीं, लेकिन भासता है कि है। असत्य मृग-मरीचिका है। दूर से लगता है कि है; पास जाओ तो कुछ भी नहीं।
अपने अहंकार को जरा गौर से देखो, अपने अहंकार पर जरा आंख गड़ाओ। अहंकार
पर आंख गड़ाने की कला ही ध्यान है। ध्यान कुछ और नहीं, बस छोटा-सा राज, छोटी- सी कुंजीः अपने अहंकार पर अपनी आंखों को गड़ा लेना। और जैसे ही तुम्हारी आंखें अहंकार पर ठहरेंगी, तुम चकित हो जाओगे; इधर आंखें ठहरीं वहां अहंकार तिरोहित हुआ। वह था ही तब तक जब तक तुमने भर नजर देखा न था। तुमने देखा कि गया। जैसे ही तुम्हारे भीतर दर्शन, दृष्टि, द्रष्टा का आविर्भाव होता है, साक्षी जगता है, अहंकार बिखर जाता है। छाया मात्र है, आभास है। और अहंकार के बिखरते ही उसका तत्क्षण पता चलता है, जो आभास नहीं है; जो तुम्हारे भीतर मौजूद ही था, लेकिन अहंकार की भ्रांति में छिप गया था।
न तो रामनाम जपने से कुछ होगा, न नमोकार पढ़ने से, न ओंकार का पाठ करने से। अगर कुछ हो सकता है तो बस एक ही सूत्र है उसका, एक ही कीमिया हैः अपने अहंकार को गौर से देखो। साक्षी बनो। और अहंकार गिर जाएगा तो अनुभव हो जाएगा सब। फिर उसे चाहे प्रेम कहो, चाहे परमात्मा कहो, चाहे सत्य कहो, चाहे मोक्ष कहो। ये सब एक ही अनुभव को कहने के अलग-अलग ढंग हैं।

तेरे हिज्र में मुझे ऐ सनम न सुकून है न करार है
मैं नियाजमंदे-जबान हूं मेरी जां तुझ पर निसार है
ये खिरद की मेरी इबादतें ये जुनूं की मुझ पे इनायतें
मगर इतना तो मुझको होश है मेरा दिल तो जाने-दयार है
तेरे हिज्र में मुझे ऐ सनम न सुकून है न करार है
सर हो न तो खम होगा तरफदार के लेकिन
सज्दे में नजर आएंगे जल्वे तेरे लेकिन
दिल रख दिया बाहिस्ता ये हकदार है लेकिन
हम पहले नमाज को आज खड़े हो गए लेकिन
काबे की तरफ मुंह सही दिल तेरी तरफ है
मगर इतना मुझको तो होश है मेरा दिल तो जाने-दयार है तेरे हिज्र में मुझे ऐ सनम न सुकून है न करार है ये तड़फ जो दिल में है वाकई तुझे क्या बताऊं

मैं हमनशींन कतीले-खंजरे-नाज हूं
मेरा गम से सीना फिगार है
वो नकाब अपनी उठाएं तो, वो जमाल अपना दिखाएं तो
मेरा शौके-सज्दा है मुज्तरिब मुझे फिक्रे-दीदे-निगार है तेरे हिज्र में मुझे ऐ सनम न सुकून है न करार है
तू ही मेरे शेरो-सुखन की जां,
है तुझी से हुस्ने-बयां मेरा
तेरी दीद ही मेरी ईद है, तू ही जिंदगी की बहार है लबे-बाम जल्वा दिखाएं तो, मेरे होश आके उड़ाएं तो
वो गिराएं पर्दे-निगाह तो, मुझे ताबे-सब्रो-करार है
मुझे साकी मस्ते-खिराम ने जो शराबे-इश्क पिलाई थी
वही दिल में माज-सुरूर है वही अब भी कैफो-खुमार है
तेरे हिज्र में मुझे ऐ सनम न सुकून है न करार है
मैं नियाजमंदे-जबान हूं मेरी जां तुझ पर निसार है
सत्य को जाने बिना न सुकून, न करार। परमात्मा के अनुभव के बिना न शांति, न आनंद। जीवन फूलों से वंचित, जीवन आंखों से वंचित। जीवन में वसंत ही नहीं आता, बहार ही नहीं आती, सुगंध ही नहीं उड़ती, ज्योति ही नहीं जगती। फिर भी लोग जीए जाते हैं। न मालूम कैसे जीए जाते हैं। किसी तरह घसटे जाते हैं। किसी तरह बोझ को ढोए जाते हैं।
पलटू ठीक कहते हैंः सहज आसिकी नाहिं। सचेत करते हैं, मगर निमंत्रण आसिकी का ही दे रहे हैं। सावधान करते हैं कि यह मत सोच लेना कि सस्ता है रास्ता, मगर आओ, जरूर आओ। दीवाने हो तो आओ। मस्ताने हो तो आओ। परवाने हो तो आओ। सयाने हो तो मत आना। होशियारी से आना चाहो तो मत आना।
मैंने भी अपने दरवाजे होशियारों के लिए बंद कर दिए हैं। व्यर्थ उनके साथ समय खराब होता है। कोई उनके जीवन में क्रांति नहीं हो सकती। क्योंकि होशियारी कैसे क्रांति करे? होशियारी तो कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लगा रखती है। संन्यास तो जुआरी के लिए है, शराबी के लिए है; सयानों के लिए नहीं; समझदारों के लिए नहीं। उनके लिए तो मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गीता-कुरान हैं, बाइबिल हैं। वे शब्दों और सिद्धांतों में लिपटे रहें, शब्दों और सिद्धांतों के जाल में अपने को उलझाए रखें, अपने को भुलाए रखें। उनके लिए जीवन के परम सत्य नहीं हैं। अनुभव उनके लिए नहीं हैं, क्योंकि वे पहला काम ही न कर पाएंगे--सीस उतारे हाथ से। वहीं मुश्किल हो जाएगी खड़ी। वे झुक ही नहीं सकते।
मेरे पास आ जाते हैं पंडित, ज्ञानी। पत्र लिखते हैं कि हम संन्यास तो नहीं ले सकते, लेकिन सत्य को जानना जरूर है। मुफ्त, बिना कुछ किए। संन्यास नहीं ले सकते हैं। क्या घबड़ाहट है? अरे लोग पागल ही कहेंगे न! इसलिए तो संन्यास है। इसलिए तो यह पागलों जैसा वेश दे दिया। इतनी-सी हिम्मत न कर पाओगे तो फिर जब शमा जलेगी और पुकारेगी कि आओ और अपना सब लुटा दो, तब कैसे कदम बढ़ाओगे? फिर परवाना भाग खड़ा होगा। यह आहिस्ता-आहिस्ता एक-एक कदम, एक-एक सोपान चढ़ो। धीरे-धीरे हिम्मत जुटेगी। धीरे-धीरे साहस जगेगा।
पंडित तो कुछ का कुछ समझता रहता है। समझेगा ही। उसकी होशियारी उसे सत्य को नहीं समझने देती। पढ़ता है गीता को, लेकिन समझेगा तो अपनी। गीता को कैसे समझेगा? जब तक कोई कृष्ण न हो जाए तब तक गीता को समझने का कोई उपाय नहीं। जब तक कोई क्राइस्ट न हो जाए तब तक बाइबिल में कुछ सार नहीं।
हां, क्राइस्ट कोई हो तो बाइबिल समझ में आए। और मजा यह है कि कोई क्राइस्ट हो तो बाइबिल में समझने को रह ही क्या जाता है! सभी कुछ उसके भीतर समझ में आ गया। कोई कृष्ण हो तो गीता में क्या रखा है फिर! यही मुश्किल है।
जब तक कृष्ण नहीं, गीता बेकार; जब कृष्ण हो गया तो बिल्कुल बेकार।
मुल्ला नसरुद्दीन ने चंदूलाल से कहा, भई चंदूलाल बधाई हो, मैंने सुना
कि कल तुमने बंबई की घुड़दौड़ में पचास हजार रुपए जीते।
चंदूलाल ने कहा, कल घुड़दौड़ बंबई में नहीं, पूना में थी।
मुल्ला नसरुद्दीन बोला, पूना में ही सही, लेकिन खबर तो खुशी की ही है।

चंदूलाल ने कहा, दूसरे, जहां तक मेरा सवाल है, मामला सिर्फ दस हजार का था, पचास हजार का नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अरे दस हजार ही सही, बात तो फिर भी खुशी की
ही है।
चंदूलाल ने कहा, तीसरे, वे दस हजार मैं जीता नहीं, हारा था।
यूं समझोगे तुम गीता। यूं ही समझोगे तुम बाइबिल। ऐसे ही समझोगे तुम कुरान।
समाचारपत्रों में मैंने एक खबर पढ़ी है। नई दिल्ली की पुलिस ने एक सरदार टैक्सी ड्राइवर को गिरफ्तार किया। उसका अपराध यह था कि उसने सड़क पार कर रहे एक आदमी को जमीन पर गिरा दिया था। पुलिस के अनुसार क्षमा मांगना तो दूर, टैक्सी के सरदार ड्राइवर ने उस आदमी के ऊपर टैक्सी को लाकर खड़ा कर दिया और बोला, उस्ताद, अब जब नीचे पड़े ही हो तो जरा आइल भी चेक कर दो। ऐसा मौका क्या चूकना, जब पड़े ही हो तो आइल ही चेक कर दो। जब अवसर ही आ गया तो इसका उपयोग ही हो जाने दो। सरदार तो सरदार!
तुम जो पढ़ोगे, तुम ही तो पढ़ोगे न! तुम जो सुनोगे, तुम ही तो सुनोगे न! तुम जो समझोगे, तुम ही तो समझोगे न! काश तुम्हारे पास आंखें होतीं तो तुम ठीक समझते, ठीक सुनते, ठीक पढ़ते! आंख ही नहीं, तो कचरा इकट्ठा कर रहे हो। और कचरे को लोग ज्ञान समझ लेते हैं।
ज्ञान की चिंता छोड़ो, प्रेम की फिक्र लो। ज्ञान से परमात्मा नहीं मिलता, प्रेम से मिलता है। और ज्ञान और प्रेम बड़े विपरीत रास्ते हैं। ज्ञान तो थोथा है, कागजी है। कबीर ठीक कहते हैंः लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात। यह कोई लिखा-पढ़ी की बात है! यह कोई खाते-बही की बात है! यह तो देखा-देखी बात है। देखोगे तो।
मुक्ता, तू प्रश्न तो ठीक पूछती है कि पलटू ने सावधान कियाः सहज आसिकी नाहिं! यह आसिकी क्या है?
देखा-देखी बात! और यह सारा अस्तित्व तैयार है। प्रेम करो--वृक्षों से, पक्षियों से, बादलों से, सूरज की किरणों से, चांद-तारों से! इतना प्रेम के लिए उपाय है, इतने निमित्त हैं, और फिर भी आदमी प्रेम से वंचित है। आदमी भी गजब कर रहा है! चारों तरफ सरोवर है और प्यासा बैठा है। आनंद की वर्षा हो रही है और उसका घड़ा खाली का खाली है।
तो या तो तुमने घड़ा उलटा रखा है कि वर्षा होती है जरूर, मगर घड़े में भरती नहीं। या तुम्हारा घड़ा इतना भरा है पहले से, सीधा भी रखा हो, वर्षा होती है मगर तुम्हारे घड़े में जगह नहीं है; वहां गीता, कुरान, वेद, उपनिषदों का अंबार लगा है। अमृत जाए तो कहां जाए? बह जाता है, बाहर बह जाता है। और या फिर तुम्हारा घड़ा न तो उलटा है, न कचरे से भरा है, तो बहुत छिद्र हैं उसमें। अमृत भरता भी है तो टिक नहीं पाता। आया और गया। इधर आया, उधर गया। तुम खाली के खाली रह जाते हो।
ये तीन बातें ख्याल रखनी जरूरी हैं। घड़ा सीधा हो। घड़े को सीधा कर लेना
ही श्रद्धा का अर्थ है। जो नहीं कहता है, वह नास्तिक। जो हां कहता है, वह आस्तिक। हां किससे? जीवन से। तुम्हारे पुराने ढब के भगोड़े संन्यासियों को मैं आस्तिक नहीं कहता। जीवन को इनकार कर रहे हैं और तुम इनको आस्तिक कहते हो! ये नास्तिक हैं, निपट नास्तिक हैं! ये तुम्हारे अखंडानंद, मुक्तानंद, आत्मानंद और यह जो आनंदों की कतार है, ये भगोड़े हैं, ये नास्तिक हैं। ये जीवन को इनकार कर रहे हैं। ये कैसे प्रेम करेंगे?
जीवन को स्वीकार करो--आह्लाद से, अनुग्रह से, तो उस हां-भाव में, उस स्वीकृति में तुम्हारा घड़ा सीधा होगा। श्रद्धा में घड़ा सीधा होता है; उसका मुख आकाश की तरफ हो जाता है। फिर छिद्रों को बंद करो। छिद्र क्या हैं? व्यर्थ को देखते हो, यह छिद्र है। इससे आंख की ऊर्जा व्यय हो रही है। व्यर्थ को सुनते हो, यह छिद्र है। इससे कान की ऊर्जा व्यय हो रही है। व्यर्थ को पढ़ते हो, यह छिद्र है। और सब तरफ व्यर्थता की कतारें बंधी हुई हैं।
चंदूलाल से मुल्ला नसरुद्दीन ने पूछा, चंदूलाल, तुमने तलाक क्यों दिया?

चंदूलाल बोला, मेरी पत्नी ने मुझे बेवकूफ कहा।
नसरुद्दीन ने बोला, लेकिन तलाक के लिए यह कारण तो काफी नहीं है।
चंदूलाल बोला, भाई, दरअसल बात यह हुई कि एक दिन मैं दुकान से अचानक ही
घर आ गया, तो क्या देखता हूं कि मेरी पत्नी मेरे पड़ोसी की बाहों में थी। मैंने पूछा इसका क्या मतलब? तो मेरी पत्नी ने जवाब दिया--बेवकूफ कहीं के, तुम्हें दिखता नहीं क्या?
यहां दिखता किसको है? यहां तो व्यर्थ को देख-देख कर आंखें थक गई हैं, दिखता किसको है? यहां तो सब बेवकूफ हैं इस लिहाज से। किसको सुनाई पड़ता है? और जो सुनाई पड़ता है वह कुछ का कुछ सुनाई पड़ता है।

कुर्बानी का गीत गाकर
नाच रही थी नतिनी
कूल्हा मटका कर,
कि ऊंचा सुनने वाली नानी ने
कहा झुंझला कर
इ गीत लिखे वाले भी अजब हैं हमरे बखत भी किए गजब हैं,
दिल को बर्तन-भांडा बना कर लिख दिहिन कि टुकड़े हजार हुए कोई इहां गिरा, कोई उहां गिरा; मगर अबरी तो हदे बेसर्मी किहिन ऐसा अपवित्तर गीत लिख दिहिन-- कि सुने वाले को
तुरते पाप लग जाए,
जब घर की
जवान-धवान लड़की चीख के गाए--
कि आप जइसा कोई
हमरी जिंदगी में आए
तो बाप बन जाए...

कुछ का कुछ सुन रहे हैं लोग। कुछ का कुछ देख रहे हैं लोग। इस सब में जीवन-ऊर्जा क्षीण हो रही है।
जीवन को थोड़ा सत्कार दो, थोड़ा सम्मान दो, यूं न गंवाओ। यह बड़ा बहुमूल्य है; चूंकि यह अवसर है जिसमें परमात्मा मिल सकता है। इसकी सुरक्षा करो। तो छिद्रों को बंद करो। असार को मत देखो। असार को मत सुनो। असार को मत पढ़ो।
और फिर तीसरी बात ध्यान में रखोः घड़ा सीधा हो--श्रद्धापूर्वक, और घड़ा अछिद्र हो--क्योंकि व्यर्थ और असार छूट गया, तो अब घड़े को खाली कर लो। इसमें शास्त्रीयता, पांडित्य और थोथे शब्दों को मत रखे बैठे रहो। तो तुम्हारे जीवन में प्रेम का कमल आज खिल सकता है--अभी और यहीं!

दूसरा प्रश्नः गीता में कहा गया है कि हम जैसा कर्म करेंगे वैसा ही फल हमें भोगना पड़ेगा। जन्म-मृत्यु का चक्र तब तक चलता रहता है जब तक मोक्ष न मिले।
मैं इसी खोज में हूं कि जब पहली बार भगवान ने सृष्टि रची तो क्यों? हमें क्यों पैदा किया गया और हमें कर्म करने की चेतना क्यों दी गई? जो आज हमें पाप-पुण्य की परिभाषाएं सिखाई जा रही हैं, वे हमें क्यों बताई जा रही हैं?
कल आपने कहा कि मैंने बहुत संतों पर कहा है, आज तक किसी ने इतने महापुरुषोंपर नहीं कहा। क्या यह आपका अहंकार नहीं है? आप भगवान हैं तो आप इस तरह क्यों कहते हैं?
मैं उस भगवान से पूछती हूं कि यह कहां का न्याय है कि पैदा करके कहो कि
यह करो वह न करो? अगर वह सृष्टि नहीं रचता तो आज कुछ भी नहीं होता। मुझे

कभी-कभी न जाने क्या हो जाता है! आप मुझे स्थिर, तटस्थ रहने का कोई उपाय बताएं।

कृष्णा पंजाबी, बाई, तू गजब की है! हो न हो सिंधी है। सिंधी बाइयों के ज्ञान का तो क्या कहना! बाइएं तो मैंने बहुत देखीं, मगर सिंधी बाइएं तो लाजवाब हैं। और ज्ञान के पीछे तो हाथ धोकर पड़ी हैं। जरूर कोई दादा चूहड़मल फूहड़मल की तू शिष्या होगी। देखो क्या गजब की बातें पूछी हैंः
"गीता में कहा गया है कि हम जैसा कर्म करेंगे वैसा ही फल हमें भोगना पड़ेगा!"
मैंने गीता लिखी नहीं। मेरा कोई कसूर नहीं। जिसने लिखी हो गीता उससे पूछना। हालांकि कृष्ण की सोलह हजार पत्नियां थीं, मगर एक कृष्णा पंजाबी मिल जाती तो उन्होंने संन्यास ले लिया होता। उनमें एक भी सिंधी बाई नहीं थी, मैं तुझे पक्का कहता हूं। मैं भी बहुत शास्त्रों की खोज कर लिया कि एकाध सिंधी बाई तो थी कि नहीं, सोलह हजार में एक नहीं थी। नहीं तो तू उनकी गति कर देती।
सुना है मैंने, हर सफल लेखक के पीछे कोई स्त्री होती है और उस स्त्री
के पीछे होती है उस लेखक की पत्नी। और पत्नी अगर सिंधी हो तो फिर कहना ही क्या! फिर सफलता सुनिश्चित है। वह तो ऐसे चाबुक चलाती है!
क्या गजब की बातें तू कह रही है, "गीता में कहा गया है... ।"
तुझे क्या लेना-देना गीता से? गीता ने तेरा क्या बिगाड़ा है? और कोई काम नहीं? और गीता में कहा हो, इससे क्या कुछ सच हो जाता है?
कहती है कि "गीता में कहा गया है कि हम जैसा कर्म करेंगे वैसा ही फल हमें भोगना पड़ेगा।"
पहले तो गीता को सत्य मानो, तो फिर इस तरह की बातें उठेंगी, इस तरह के प्रश्न उठेंगे। कहा किसने कि गीता को सत्य मानो! मैं तो ध्यान के लिए कह रहा हूं; और तो कुछ गीता या कुरान या बाइबिल में अटको, यह मैं कह नहीं रहा हूं। मैं तो इस सबको कचरा कहता हूं। इससे तो छुटकारा पाओ। मगर वे दादा चूहड़मल फूहड़मल तेरी खोपड़ी में भर रहे होंगे इस तरह की बातें।
दादा चूहड़मल फूहड़मल सत्संग करवा रहे थे। एक सिंधी बाई सामने ही बैठी सत्संग कर रही थी। बगल में ही बाई का पुत्तर भी बैठा हुआ था। पुत्तर बीच में ही बोल उठा सत्संग के कि मुझे पेशाब लगी है। दादा बहुत नाराज हो गए। दादा ने सिंधी बाई को कहा कि देख, सत्संग में और ऐसे... बीच सत्संग में इस तरह के शब्दों का उपयोग? अपने पुत्तर को कुछ ज्ञान नहीं समझाती?
तो बाई ने कहा, मैं इसको क्या ज्ञान समझाऊं? इसको लगी सो लगी। अब इसमें कोई क्या कर सकता है?
तो दादा ने कहा, अरे इतना तो कर सकती है कि तू इसको कह दे कि सत्संग में
इस तरह के शब्द नहीं बोलते। कोई भी सांकेतिक शब्द रख ले।
तो बाई ने पूछा, आप ही बताइए, कौन-सा सांकेतिक शब्द?
तो उन्होंने कहा, समझ लो कि इसको बता दो कि जब तुझे पेशाब लगे तो कहा करे कि मुझे गाना गाना है। बस तू समझ जाना कि क्या इसका मतलब है। एक कोड शब्द बना लिया कि गाना गाना है। तू समझ जाएगी; कोई समझेगा नहीं कि बात क्या है। सो उठा कर ले गए और गाना गवा दिया, कहीं भी गवा दिया। कोई हिंदुस्तान में गाना गवाने में दिक्कत है, कहीं भी गवा दो। इस कोने, उस कोने, सड़क पर, नाली में, कहीं भी गवा दिया। किसी को पता भी नहीं चलेगा, फिर वापस अपने सत्संग में आ गए।
बात सिंधी बाई को जंची। लड़के को समझाया। लड़के ने भी कहा कि बात तो ठीक है।
कोई छह महीने बाद दादा चूहड़मल फूहड़मल उसी बाई के घर मेहमान हुए। पड़ोस में किसी की मौत हो गई। सो बाई ने चूहड़मल फूहड़मल को कहा कि आप जरा पुत्तर को सम्हालना, मैं जरा पड़ोस में कोई मृत्यु हो गई है, वहां होकर आती हूं। चूहड़मल फूहड़मल पुत्तर को लेकर बिस्तर पर सो रहे। कोई रात के दो बजे पुत्तर ने उन्हें हिलाया कि दादा-दादा, गाना गाऊंगा। चूहड़मल फूहड़मल को बड़ा क्रोध आया कि हद हो गई बदतमीजी की! अरे रात को कोई दो बजे गाना गाता है! अरे

कमबख्त, चुप हो! यह कोई वक्त है गाना गाने का? बड़े गायक बने हैं! चुपचाप सो जा!
थोड़ी देर पुत्तर चुप रहा, मगर वह चुप रहे भी कैसे। उसने फिर कहा कि दादा, गाना मानता ही नहीं, मैं तो गाऊंगा। आप कितना ही रोको, अब तो रोके नहीं रुकता।
चूहड़मल फूहड़मल ने बहुत सत्संग करवाए थे, कई गीता-ज्ञान-यज्ञ करवा चुके थे। मगर ऐसा प्रश्न किसी ने खड़ा नहीं किया था कि रुकता ही नहीं। दादा ने कहा, अरे मैं ऐसे बहुत बड़े सत्संग करवा चुका हूं, बड़े-बड़े प्रश्न करने वालों को हरा चुका हूं। वाद-विवाद में मुझसे कोई जीत नहीं सकता। और तू कह रहा है गाना रुकता ही नहीं! गाना भी कोई ऐसी चीज है कि जिसमें कोई बड़ा संयम साधना पड़ता है? चुपचाप सो जा! अरे चार-छह घंटे की बात है, सुबह उठ कर गाना। जो करना हो सुबह करना। और मुझे भी सोने दे, दिन भर मैं भी सत्संग करके थक गया हूं। आखिर साधु-संतों को भी सोना तो पड़ेगा ही, विश्राम तो करना ही पड़ेगा।
डांट-डपट दिया तो पुत्तर फिर चुप रह गए, लेकिन पुत्तर चुप रहे कैसे! उसने फिर दादा से कहा कि दादा, आप लाख कहो, अगर अब आपने रोका तो गाना यहीं निकल पड़ेगा। फिर मत कहना। पूरे बिस्तर पर गाना ही गाना हो जाएगा।
दादा ने कहा, हद तरह का गाना है! न सोने देता है दुष्ट और ऐसा कैसा गाना
कि पूरे बिस्तर पर गाना ही गाना हो जाएगा! अरे मूर्ख, तुझे गाना गाना आता भी है?
उसने कहा, आता है। अरे रोज गाता हूं, कई दफे गाता हूं। और रात में तो हमेशा गाता हूं। दो-तीन दफे तो गाता ही हूं। यह तो पहली दफे है।
दादा ने कहा, हद हो गई। वह तेरी बाई, तेरी मां कहां गई है, दुष्ट अभी तक नहीं लौटी! और इसको पीछे लगा गई मेरे। यह कह रहा है कि दो-तीन दफे गाना ही होगा। और मोहल्ले वाले जग जाएं, कोई क्या कहेगा! और न तू खुद सोता न मुझे सोने देता।
उस लड़के ने कहा, अब आप कुछ भी कहो, अब तो मैं एक दो तीन कह कर एकदम से... तीन मैंने कहा कि आप समझ लेना गाना निकल जाएगा। एक... दो... ।
दादा ने कहा, ठहर-ठहर! तू मेरे कान में गा दे चुपचाप। और गुनगुनाना, जोर से भी नहीं गाना।
तो पुत्तर क्या करे, अंधेरे में कान खोज कर उसने दादा के गा दिया। गुनगुना दिया! अरे गुनगुनाया क्या, भनभना दिया। क्योंकि रोके हुए था, संयम साधे हुए था। जैसा आदमी योग से भ्रष्ट हो, ऐसा एकदम संयम साधे हुए था, गुनगुना दिया। बिस्तर पर गाना ही गाना हो गया। दादा नहा गए। दादा ने कहा, अरे नालायक! इसको गाना कहते हैं? यह गाना है? हरामजादे! भाषा को भी भ्रष्ट कर दिया।
उस पुत्तर ने कहा, दादा, आपने ही तो मेरी मां को बताया था। मैं उसी का पालन कर रहा हूं। मुझे क्या पता कि भाषा भ्रष्ट हो गई। आपने ही बताया था! तब दादा को ख्याल आया कि धत तेरे की! अपनी ही तरकीब में फंस मरे!
अब ये तू जो बातें कर रही है, ये ऐसे ही दादाओं से सुन ली होंगी। ये चूहड़मल फूहड़मल कई स्त्रियों को सत्संग करवा रहे हैं। स्त्रियों के सिवा कोई सत्संग करने जाता ही नहीं। अब "गीता में कहा गया है कि हम जैसा कर्म करेंगे... ।" तेरी मर्जी बाई, कर। जैसा कर्म करना हो कर। "वैसा ही हमें फल भोगना पड़ेगा।" अब भोग! गाओ गाना! गुनगुनाओ, भनभनाओ, जो करना हो करो। गीता में तो कहा है। अरे गीता में कहा है तो मैंने कोई गीता का ठेका लिया है? "जन्म-मृत्यु का चक्र तब तक चलता रहता है जब तक मोक्ष न मिले।"
यह भी खूब बात कही! ये दादागण जो समझाते फिरते हैं, इनसे यह भी तो पूछा करें... ये क्या-क्या बातें समझाते हैं! पहले कहते हैं, जन्म-मृत्यु का चक्र तब तक चलता रहता है जब तक मोक्ष न मिले। मोक्ष कब मिलता है? जब जन्म-मृत्यु का चक्कर खतम हो जाता है। अब पड़ गया चक्कर पूरा। अब इसमें से बचोगे कैसे? इसमें रास्ता ही न रहा बाहर निकलने का। मोक्ष तब मिलेगा जब जन्म-मृत्यु का चक्कर छूटे! और जन्म-मृत्यु का चक्कर कब छूटेगा? तब छूटेगा जब मोक्ष मिलेगा। अब कौन आगे, अंडा कि मुर्गी? पहले चक्कर छूटेगा, मोक्ष

मिलेगा? कि पहले मोक्ष मिलेगा, फिर चक्कर छूटेगा? दोनों ही बातें कह रहे हैं ये ज्ञानीजन।
और तू कह रही है, "मैं इसी खोज में हूं कि जब पहली बार भगवान ने सृष्टि रची थी तो क्यों?"
अब पहले तो मजा यह कि किसने तुझसे कह दिया कि भगवान ने सृष्टि रची? हम अजीब-अजीब बातें मान लेते हैं और फिर उनमें से प्रश्न उठने लगते हैं। इसलिए तो मैं कहता हूंः कुछ न मानो। क्योंकि तुमने कुछ माना कि चक्कर में पड़े।
अब पहले तो यह मान लिया कि परमात्मा ने सृष्टि रची। यह कैसे मान लिया? देखा तूने? कृष्णा पंजाबी, तूने देखा कि परमात्मा ने सृष्टि रची? और अगर तूने देखा सृष्टि रची, तो उसका मतलब है कि वह तो सृष्टि रच रहे थे, तू तो पहले ही से मौजूद थी। मतलब पंजाब तो पहले ही, सिंध तो पहले ही बन चुका था। पंजाबी-सिंधी मौजूद ही थे। तो देखा तो किसी ने नहीं, क्योंकि अगर किसी ने देखा हो तो उसका मतलब कि सृष्टि तो पहले से ही चल रही थी, ये भैया कहां से आए? ये खड़े होकर वहां क्या कर रहे थे?
परमात्मा ने सृष्टि रची, यह किसी ने देखा नहीं। यह लोग माने बैठे हैं।
और माने क्यों बैठे हैं, क्योंकि अजीब-अजीब प्रश्न लोग उनको खड़ा करवा देते हैं। कहते हैं सृष्टि किसने रची; क्योंकि हर चीज का बनाने वाला होना चाहिए तो सृष्टि का भी कोई बनाने वाला होगा। चलो, बड़ी ऊंची बात कह रहे हो; फिर सवाल यह उठेगाः उस बनाने वाले का कौन बनाने वाला है? क्योंकि हर चीज का बनाने वाला होना चाहिए। अब चक्कर से घनचक्कर शुरू हुआ। नंबर एक का परमात्मा नंबर दो के परमात्मा ने बनाया, नंबर दो का परमात्मा नंबर तीन के परमात्मा ने बनाया। अब चले। अब इसका कहीं अंत ही न आएगा। जहां भी जाकर रुकोगे, सवाल यह उठेगा कि इस परमात्मा को किसने बनाया? क्यों बनाया?
तू कह रही है कि "मैं इसी खोज में हूं कि जब पहली बार भगवान ने सृष्टि रची तो क्यों?"
कभी रची ही नहीं। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। लेकिन बुद्धू इसी तरह
की बातें समझा रहे हैं कि भगवान ऐसे जैसे कुम्हार घड़े रचता है। इसलिए वह भी एक कुंभकार है। जैसा कुम्हार घड़े रचता है ऐसे ही भगवान घड़े रच रहा है। काहे को रच रहा है? कायकू रचे? शांति से रहते नहीं बनता? गाना गाएगा ही गाएगा! आधी रात, मगर गाना गाना है। कायकू गाना है। कोई शांति से रहने में तकलीफ हो रही है उनको? इतना सब उपद्रव पैदा करना!
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा कोई स्रष्टा नहीं है--सृजन
की प्रक्रिया का नाम है, सृजनशीलता का नाम है।
इसलिए तू इस चिंता में न पड़ कि भगवान ने सृष्टि क्यों रची पहली बार! तो पहली बार के पहले क्या था? सन्नाटा ही सन्नाटा, कि दादा चूहड़मल फूहड़मल सो रहे हैं, कोई गाना गाने वाला ही नहीं है, सन्नाटा ही सन्नाटा। पहले के पहले भी तो कुछ होगा। और नहीं तो पहली बार एकदम से अचानक... एकदम से गाना गाने का ख्याल आ गया! अनंत काल से पड़े रहे और फिर एकदम से गुनगुनाने लगे। इतनी देर तक क्यों पड़े रहे, यह भी सवाल उठेगा। दो दिन पहले गाते तो क्या हर्जा था? चार दिन पहले गाते तो क्या हर्जा था? या और दो-चार दिन रुक जाते तो क्या हर्जा था? कौन-सा कारण, कौन-सी विपदा आ गई एकदम से इनके ऊपर कि संसार बना कर रहेंगे! और संसार ही बनाते तो कम से कम कृष्णा पंजाबी को तो न बनाते! बेचारी को क्यों झंझट में डाला? इसका क्या कसूर?
अब कहते हो कि पिछले जन्म में जैसा कर्म किया उसका फल भोगना पड़ता है। मगर इसने सृष्टि के पहले तो कोई कर्म कृष्णा पंजाबी ने किया ही नहीं होगा। सृष्टि ही नहीं थी, कर्म कैसे करती? खुद ही नहीं थी, तो कर्म कैसे करती? तो फिर काहे को इस बेचारी को उलझा दिया? अब यह कैसी झंझट में पड़ी है?
कहती है, "मैं इसी खोज में हूं कि जब पहली बार भगवान ने सृष्टि रची तो क्यों?"
न कभी भगवान तुझे मिलेगा, न कभी तू पूछ पाएगी। तू नाहक परेशान न हो।

और कहती है, "हमें क्यों पैदा किया गया? और हमें कर्म करने की चेतना क्यों दी गई? जो आज हमें पाप-पुण्य की परिभाषाएं सिखाई जा रही हैं, वे हमें क्यों बताई जा रही हैं?"
सब तुम्हारी मान्यता की बात है। मैं तो यहां किसी को पाप-पुण्य की कोई परिभाषा नहीं बता रहा हूं। मैं तो यहां किसी को नहीं कह रहा हूं कि परमात्मा ने सृष्टि रची। जो है वह सदा से है और सदा रहेगा। ऐसा कभी न था कि न हो और ऐसा भी कभी न होगा कि न हो जाए। जो है वह है। उसके मिटने का कोई उपाय नहीं, न बनने का कोई उपाय है। बनेगा तो कहां से बनेगा? शून्य से कुछ बनता है? और क्या जो है वह कभी शून्य हो सकता है? असंभव। सत्य वही है जो सदा है। इसलिए पहली बार की बात छोड़। ऐसा कभी नहीं था कि संसार न हो। जीवन सदा से है। और किसी की जिम्मेवारी नहीं है, बस ऐसा है। एस धम्मो सनंतनो। ऐसा ही स्वभाव है अस्तित्व का--होना। किसी के ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं।
और पाप-पुण्य की कोई परिभाषा दूसरा तुम्हें क्यों देगा? पाप-पुण्य की परिभाषा तो स्वयं की दृष्टि से अनुभव में आनी शुरू होती है। अगर रास्ते पर कांटे पड़े हों तो तुम बच कर निकल जाती हो कृष्णा पंजाबी कि नहीं? कोई पूछेगा, क्यों बच कर निकलती है? तू कहेगी कि कष्ट होता है कांटों से, इसलिए बच कर निकलती हूं। फूल की माला बना लेती है। कोई पूछेगा, क्यों? क्योंकि सुगंध और आनंद आता है। बस ऐसा ही पाप-पुण्य है। पाप वह जिससे कष्ट होता है-- कांटे। और पुण्य वह--फूलों की माला--जिससे सुख होता है। इसमें किसी के बताने न बताने का सवाल नहीं है। यह तुम्हारे भीतर ही, तुम्हारा अंतःकरण ही नियंता है। वह प्रतिपल कह रहा है--क्या करने से सुख होता है, क्या करने से दुख होता है। और सुख की स्वाभाविक खोज है और दुख से स्वाभाविक बचने की आकांक्षा है। इसमें किसी परमात्मा का कोई हाथ ही नहीं।
आखिर जैन धर्म है, ईश्वर को नहीं मानता, परमात्मा को नहीं मानता, फिर
भी धर्म है। बौद्ध धर्म है, किसी परमात्मा को नहीं मानता। परमात्मा की तो बात छोड़ दो, आत्मा को भी नहीं मानता। फिर भी धर्म है। और फिर भी बौद्धों ने अदभुत तरह के लोग पैदा किए--अपूर्व प्रकाश से भरपूर, अपूर्व आनंद से जगमगाते हुए! खूब दीए जलाए! सच तो यह है कि बुद्ध ने जितने दीए जलाए इस पृथ्वी पर किसी ने भी नहीं जलाए। न आत्मा को मानते, न परमात्मा को मानते। मानने का सवाल ही नहीं। मानने से तो और उपद्रव खड़ा होता है।
ये तूने जितने प्रश्न पूछे हैं, ये सब माने हुए हैं। पहले तो मान लिया
और फिर प्रश्न पूछने लगे। मानना ही क्यों? शून्य से शुरुआत करो। शून्य का नाम ध्यान है। अपने मन को बिल्कुल खाली कर लो--सारी धारणाओं से, सारी विचारणाओं से। ये गीता, कुरान, वेद, सबको विदा दे दो, नमस्कार कर लो। चित्त को शून्य करो। और उस शून्य चित्त में तुम्हें सारे उत्तर मिल जाएंगे, उत्तरों का उत्तर मिल जाएगा।
और इस आशा में कृष्णा पंजाबी मत बैठी रह कि कभी परमात्मा मिलेगा तो उससे पूछ लेंगे। है ही नहीं कहीं कोई मिलने वाला। और अगर होता भी तो इतना मैं कहे देता हूं कि सिंधी बाई से नहीं मिलेगा। क्योंकि कौन तुझसे सिर मारेगा? इन प्रश्नों के उत्तर परमात्मा कहां से लाएगा? तुझे देख कर ही भाग खड़ा होगा। मिल भी जाता होगा कभी तो इधर-उधर बच जाता होगा, छिप जाता होगा, कि कृष्णा पंजाबी आ रही है! यह सत्संगी बाई आ रही है!
अब तूने कहा, "कल आपने कहा कि मैंने बहुत संतों पर कहा है, आज तक किसी
ने इतने महापुरुषों पर नहीं कहा। क्या यह आपका अहंकार नहीं?"
निश्चित है। इसमें क्या शक है! और जब कृष्ण को तूने गीता में पढ़ा होगा
और वे कहते हैं अर्जुन से--मामेकं शरणम व्रज, सर्वधर्मान परित्यज्य। सब धर्मों को छोड़ कर ऐ अर्जुन, मेरी शरण आ--क्या है? अहंकार है। साफ है, अरे और क्या अहंकार होगा? हद हो गई! शर्म भी न आई, लाज नहीं, संकोच नहीं! जिसके सारथी बने बैठे हैं, उसी से कह रहे हैं, मेरी शरण आ। उसके ही घोड़ों को नहलवाते हैं। उसके ही घोड़ों को साफ करते हैं, दाना डालते हैं, चारा डालते हैं। उनकी ही लगाम पकड़े बैठे हैं। अर्जुन रथ में बैठा हुआ है, कृष्ण सारथी हैं। हद हो गई!

जैसे तुम्हारा कोचवान तुमसे कहने लगे--सर्वधर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणम व्रज! जैसे कृष्णा पंजाबी आई होगी रिक्शा में बैठ कर, रिक्शा वाला कहे--बाई, छोड़ सब, मेरी शरण आ! अहंकार है, साफ अहंकार है, हद हो गई! रिक्शा वाला भी हद कर रहा है! एक तो मीटर से ज्यादा पैसे ले रहा है और ऊपर से कह रहा है कि मेरी शरण आ, बाई कहां जा रही है? अरे मैं ही सत्संग करवा दूंगा। सर्वधर्मान परित्यज्य! साफ बात है कि अहंकार है।
बुद्ध ने कहा है कि जैसा निर्वाण मैंने पाया, मुझसे पहले किसी ने भी नहीं पाया। साफ है अहंकार है। मुझसे पहले किसी ने भी नहीं पाया! अरे हद हो गई! अनंत काल बीत गया और तुम यह कह रहे हो कि जैसा निर्वाण मैंने पाया, मुझसे पहले किसी ने भी नहीं पाया। और जीसस ने कहा कि मैं परमात्मा का इकलौता बेटा हूं। देख रहे हो तरकीब--इकलौता। दूसरे को मौका ही नहीं छोड़ रहे। अहंकार है! उपनिषद के ऋषि कहते हैंः अहं ब्रह्मास्मि! अब यह तो शुद्ध अहंकार हो गया। मैं ब्रह्म हूं! हद हो गई। अगर कहा होता कि मैं भरम हूं तो ठीक था, मगर ब्रह्म हूं! भरम देवता होते तो भी ठीक था। मगर मैं ब्रह्म हूं-- खुद ही कह रहे हैं, अपने ही मुंह से कह रहे हैं। अपने मुंह से मियां मिट्ठू बने हुए हैं। और अलहिल्लाज मंसूर, सूफी फकीर कहता हैः अनलहक! मैं सत्य हूं! ठीक किया लोगों ने, उतार दी गर्दन, काट दिए हाथ-पैर, जबान काट दी। पापी है, काफिर है, कुफ्र बोलता है। अहंकार की बातें करता है कि मैं सत्य हूं।
ठीक कहती है कृष्णा पंजाबी कि जो मैंने यह कहा कि आज तक किसी ने इतने महापुरुषों पर नहीं कहा, तो निश्चित ही अहंकार है। मगर मैं क्या करूं, किसी ने कहा ही नहीं। मेरी भी मजबूरी समझ। मेरी भी तकलीफ समझ। अब मैं क्या करूं, किसी ने कहा ही नहीं! कहा हो किसी ने, तू बता दे। तथ्य ही बोल रहा हूं, इसमें अहंकार कुछ भी नहीं है। सीधा-सीधा तथ्य। न लाओत्सु ने कहा, न बुद्ध ने कहा, न महावीर ने कहा, न राम ने कहा, न कृष्ण ने कहा, न जीसस ने कहा, न मोहम्मद ने कहा। और मैं सत्य ही बोल रहा हूं। अब अगर सत्य बोलने में भी अहंकार आता हो तो क्या तू कहती है कृष्णा पंजाबी, झूठ बोलने लगूं? सिर्फ इस ख्याल से कि कहीं किसी को यह ख्याल न आ जाए कि अहंकार हो गया? क्या कहूं कि नहीं, मुझसे पहले बहुत लोगों ने कहा? और कहा किसी ने नहीं, तो फिर तो बात बिल्कुल झूठ हो जाएगी। सो मैं अहंकार को स्वीकार कर सकता हूं, मगर झूठ नहीं बोल सकता।
और अहंकार तुझे दिखाई पड़ता है, मेरी तरफ से तो कोई अहंकार नहीं। अगर अहंकार होता तो बुद्ध पर बोलता ही क्यों? महावीर पर बोलता ही क्यों? कृष्ण पर बोलता ही क्यों? जीसस पर बोलता ही क्यों? अगर अहंकार ही होता तो जो बातें मुझे कहनी हैं वे सीधी ही कह देता। क्या जरूरत थी इन सब पर बोलने की? इन सब पर इसीलिए बोल रहा हूं कि तुमसे कहना चाहता हूं, मेरी अपनी कोई बात नहीं। सत्य किसी का नहीं; मेरा नहीं, इतना तो निश्चित है। सत्य सबका है। इसलिए सबकी गवाहियां तुम्हें दे रहा हूं। इन सबमें वही है जो मैंने जाना और जो तुम भी जान सकती हो। मगर मेरे जैसे व्यक्ति तो दर्पण होते हैं; उनमें तुम्हें अपनी ही शक्ल दिखाई पड़ जाती है। तू भयंकर अहंकार से पीड़ित होगी। तुझे इसमें अहंकार दिखाई पड़ गया, सिर्फ तथ्य की सूचना थी।
अब तू कहती है, "आप भगवान हैं तो आप इस तरह क्यों कहते हैं?"
अरे इसीलिए तो कहता हूं! जब भगवान ही हूं तो अब क्या अहंकार से डरवाएगी मुझे? अब मुझे तू किसी चीज से नहीं डरवा सकती। जो तुम्हारी इन बातों से डर जाते हैं, मैं उन लोगों में से नहीं हूं। भगवान हूं, अब क्या डरना! अहं ब्रह्मास्मि! अब क्या डरना? कायकू डरना? अब जब मुझे अपनी भगवत्ता का ही पता चल गया तो अब कैसा अहंकार?
मगर तुझे दिखाई पड़ा होगा, क्योंकि तू जिन दादाओं का सत्संग करती रही होगी, वे बड़ी विनम्रता की बातें करते हैं, कि हम तो आपके पैर की धूल हैं। मेरे पास ऐसे एक दादा आ गए, कि मैं तो आपके पैर की धूल हूं। मैंने कहा,
आप कहिए ही मत। मुझे पहले से ही पता है। आप हैं।
वे तो बड़े नाराज हो गए। भन्ना गए कि आप किस तरह की बात करते हैं! आप बड़ी अहंकार की बात करते हैं।

आपने खुद कही, मैंने तो कही नहीं थी। मैंने तो सिर्फ स्वीकृति भरी। आपने कहा कि आपके पैर की धूल हूं, मैंने कहा कि बिल्कुल ठीक, बिल्कुल सच्ची बात कह रहे हैं। लगते ही हैं आप बिल्कुल पैर की धूल! सो मेरा जी खुद ही झाड़ने का हो रहा है कि कब पैर से झाडूं! आप न कहते तो मैंने उठाई न थी बात। मगर वे बेचारे इसलिए थोड़े ही कह रहे थे कि मान लो। वे यह इसलिए कह रहे
थे कि उनसे कहो कि अहा, आप कैसे विनम्र हैं, आप कितने निरहंकारी हैं। तब प्रसन्न होता चित्त। मुझे कोई चिंता नहीं होती इस बात से कि कोई मुझे अहंकारी कहे। कहो। तुम्हारी जबान है, जो तुम्हारे दिल में आए कहो। मैं जो हूं सो हूं। अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक! तुम्हें जो कहना हो कहो। और जब भगवान ही हूं तो अब क्या डराओगी मुझे अहंकार इत्यादि छोटे-मोटे शब्द लाकर?
तू कहती है, "मैं उस भगवान से पूछती हूं कि यह कहां का न्याय है कि पैदा करके कहो कि यह करो वह न करो?"
बाई, तू उसी से पूछ। मैंने तुझे पैदा नहीं किया, इतना पक्का है। मैं तुझे पहचानता भी नहीं, पैदा करना तो बिल्कुल दूर। जिसने किया हो उसी से तू पूछ।
"अगर वह सृष्टि नहीं रचता तो आज कुछ भी नहीं होता।"
सच्ची बात! बिल्कुल सत्य वचन। अरे न तू होती, न मैं होता। सृष्टि ही नहीं होती तो बात ही खतम थी। खेल खतम, पैसा हजम!
"मुझे कभी-कभी न जाने क्या हो जाता है।"
अरे कभी-कभी, तुझे होता होगा हमेशा।
"आप मुझे स्थिर, तटस्थ रहने का कोई उपाय बताएं।"
नहीं बाई, मैं तो न बताऊंगा, क्योंकि उसमें अहंकार हो जाए, कि आपने मुझे उपाय बताया, आप कौन हैं उपाय बताने वाले? आप बड़े ज्ञानी! क्योंकि उपाय तो ज्ञानी अज्ञानी को बताता है, गुरु शिष्य को बताता है। अगर मैं कहूं कि मैं तेरा गुरु हूं, तो झंझट, अहंकार हो जाए। अगर उपाय बताऊं तो झंझट, अहंकार हो जाए।
अब तू कह रही है, "मुझे स्थिर, तटस्थ रहने का कोई उपाय बताएं।"
बाई, तू उसी से पूछ लेना जिसने संसार बनाया और जिसने तुझे बनाया और जिसने ऐसी झंझटें खड़ी कीं। तू मुझे क्षमा कर। मुझे तो बहुत जोर से गाना गाना है।
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
दूसरा प्रवचन

सहज निर्मलता

पहला प्रश्नः मुझे ज्ञान दें। आज भिक्षु बन कर आपकी शरण में हूं। क्या आप शरण आए को क्षमा नहीं करेंगे? आपकी शरण आकर ही मैं आज ज्ञान-दान मांग रही हूं। मेरी स्थिति उस कनक ऋषि की पुत्री की तरह है, जो निर्मल थी, जिसे कुछ भी पता न था; जैसा जिसने बताया, सिखाया, उसके हृदय पर लिख गया। क्या इसे मिटा नहीं सकते? आप कहते हैं, जिन्होंने बताया उन्हीं से पूछो। नहीं, मैं आज आपकी शरण हूं। आप ही तटस्थता की स्थिति का मार्ग-दर्शन कराएंगे। क्या निराश वापस जाऊं? नहीं, सिर्फ एक बार मुझे मार्ग-दर्शन कराएं। चाहे किसी भी धर्म की होऊं, आपके लिए तो सब समान हैं न?

कृष्णा पंजाबी, अज्ञान से छूटना आसान, ज्ञान से छूटना बहुत मुश्किल। अज्ञान से छूटना इसलिए आसान कि अज्ञान अहंकार के विपरीत है। कौन होना चाहता है अज्ञानी? कौन रहना चाहता है अज्ञानी? अज्ञान काटता है। अज्ञान कांटे की तरह चुभता है। कांटे को तो कोई भी निकालने को राजी हो जाता है। लेकिन ज्ञान, चाहे झूठा ही सही, उधार ही सही, बासा ही सही, सड़ा-गला ही सही, फिर भी फूल जैसा लगता है। आदमी सम्हाल लेना चाहता है, बटोरना चाहता है। ज्ञान को छोड़ना इसीलिए मुश्किल हो जाता है--अहंकार को भरता है, सजाता है,शृंगार देता है। और अगर जंजीरें भी आभूषण मालूम होने लगें तो बहुत मुश्किल हो जाती है। कोई छुड़ाना भी चाहे तो जिसने जंजीरों को आभूषण समझा है, वह विरोध करेगा। कारागृह को किसी ने मंदिर समझा हो तो जीवन बहुत झंझट में पड़ जाता है।
और ऐसी ही तेरी झंझट है। अभी भी तुम उन्हीं उधार बातों को दोहराए जाती हो। कहती हो, "मेरी स्थिति उस कनक ऋषि की पुत्री की तरह है, जो निर्मल थी, जिसे कुछ भी पता न था।"
कहां के कनक ऋषि और कहां की उनकी पुत्री? सब बकवास सुनी हुई है--उधार
और बासी।
एक विद्यालय निरीक्षक
विद्यालय का निरीक्षण
करता हुआ,
एक कक्षा में आया।
आते ही विद्यालय निरीक्षक ने लड़कों के सामने
प्रश्न उठाया--
खानों के बारे में
क्या जानते हो?
एक लड़का बोला, श्रीमान,
जहां धरती से
खनिज निकलता है,
उसे कहते हैं खान।
तभी दूसरा लड़का,
जो फिल्में देखने का था
शौकीन।
ऐक्टरों के बारे में रखता था जरूरत से ज्यादा ज्ञान। बोला-- खानों की बंबई में भी
कमी नहीं है।
तीन खान तो बहुत मशहूर हैं कादर खान
संजय खान
और

फिरोज खान।

कहां के कनक ऋषि? सब सुनी हुई बकवास। लेकिन प्यारी लगती हैं ये बातें
कि मैं कनक ऋषि की पुत्री की भांति हूं--निर्मल। जैसा जिसने बताया, सिखाया, उसके हृदय पर लिख गया।
यह तो निर्मलता की पहचान नहीं है। निर्मलता में तो बड़ी सजगता होती है। निर्मलता का तो अनिवार्य अंग है--जागरूकता। कोई भी आए और कुछ भी लिख जाए, यह बुद्धूपन हो सकता है, निर्मलता नहीं; मूढ़ता हो सकती है, सरलता नहीं। और ध्यान रखना, बुद्धू होना बुद्ध होना नहीं है; हालांकि दोनों शब्द एक ही धातु से बने हैं, लेकिन कितना आसमान और जमीन का अंतर है। कहां बुद्ध और कहां बुद्धू! एक अर्थ में दोनों निर्मल मालूम होते हैं--बुद्धू भी और बुद्ध भी। लेकिन बुद्ध की निर्मलता में बगावत है, विद्रोह है, सजगता है, तलवार की धार है। ऐसे हर कोई लिख जाए, हर कुछ लिख जाए, कूड़ा-करकट फेंक जाए, आसान नहीं है। बुद्धू तो कचरे का ढेर है; कुछ भी डाल दो, उसी को पकड़ लेगा। न सोचेगा, न विचारेगा। न खोजेगा, न प्रयोग करेगा। भरोसे को तैयार ही बैठा है।
और कैसी-कैसी बातें तुमने मान रखी हैं! उन पर प्रश्नचिह्न लगाओ। इसके पहले कि मानो, जानो। जानने से ज्ञान बनता है, मानने से नहीं। विश्वास अंधापन है।
हमारे पास एक शब्द है--अंधविश्वास। मगर वह शब्द ठीक नहीं, क्योंकि उस शब्द से यह भ्रांति पैदा होती है कि शायद कुछ विश्वास ऐसे भी होते होंगे जो अंधे नहीं होते। सभी विश्वास अंधे होते हैं। अंधविश्वास कहने की जरूरत ही नहीं है; विश्वास यानी अंधा। सिर्फ अंधा आदमी प्रकाश पर विश्वास करता है। आंख वाला क्यों विश्वास करे? किसलिए विश्वास करे? आंख वाला प्रकाश को देखता है, जानता है; विश्वास की जरूरत नहीं रह जाती। जहां विश्वास की जरूरत न रह जाए वहीं समझना कि ज्ञान हुआ। लेकिन विश्वास को ही हम ज्ञान समझ कर छाती से लगाए चलते हैं।
अब तू कहती है, "जैसा जिसने बताया, सिखाया, हृदय पर लिख गया।"
प्रश्न उठाने थे। जिज्ञासा करनी थी। संदेह करना था। लेकिन संदेह करने
के लिए साहस चाहिए। और निर्मलता में साहस होता है। साहस तो चालबाज आदमी में नहीं होता, बेईमान आदमी में नहीं होता। साहस तो हर बच्चे में होता है। इसलिए छोटा बच्चा तो सांप को पकड़ ले, कोई भय नहीं; सिंह के साथ खेलने लगे, कोई भय नहीं; आग में हाथ डाल दे, कोई भय नहीं; जहर को पी जाए, कोई भय नहीं। अभय है। और जहां अभय है वहां सत्य की खोज हो सकती है।
तू कहती है, "मुझे ज्ञान-दान दें।"
फिर वही बात। दूसरे का दिया हुआ ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिए ज्ञान-दान नहीं होता। ज्ञान का आविष्कार करना होता है। भिक्षा में नहीं मिलता ज्ञान, नहीं तो एक ही बुद्ध पुरुष सारे जगत को ज्ञान दे डाले। भिखारियों की कोई कमी तो नहीं है। और मुफ्त ज्ञान मिलता हो तो कौन छोड़े! और इसी मुफ्त ज्ञान के कारण हम धोखे में पड़े हैं। ज्ञान मुफ्त नहीं मिलता; बड़ी कीमत चुकानी होती है। अपने अहंकार को समर्पित करना होता है। और तू कहती है, मुझे ज्ञान-दान दें। तू भाषा ही गलत बोल रही है।
मगर ये तथाकथित सत्संग जो इस देश में चलते हैं, वहां इसी भाषा के सिक्के चलते हैं। हम तो किसी भी चीज का दान कर देते हैं। लड़की का विवाह करते हैं, उसको कहते हैं--कन्यादान। कन्या न हुई, कोई चीज हुई! कुर्सी हुई, फर्नीचर हुई, रेडियो हुई, टेलीविजन हुई, लड़की न हुई। कन्यादान शर्म भी नहीं आती कहते! जैसे कुछ भिक्षा दे रहे होओ। मगर शर्म इसलिए नहीं आती कि धारणाएं मजबूत बैठ गई हैं। स्त्री को संपत्ति मानने की धारणा है हमारी, इसलिए कहते हैं--स्त्री-संपत्ति। और स्त्रियां भी विरोध नहीं करतीं। वे शायद सोचती होंगी--अहा, संपत्ति! कैसा प्यारा शब्द! कितना मूल्य दिया जा रहा है, कितना सम्मान! संपत्ति!
लोग कहते हैं--जर जोरू जमीन, झगड़े के घर तीन। लेकिन पत्नी की भी गिनती जमीन के साथ कर रहे हैं, धन के साथ कर रहे हैं। और कोई पत्नी विरोध नहीं

करती, कोई स्त्री विरोध नहीं करती। जिन स्त्रियों को तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्मा सतत गालियां देते हैं, वे ही स्त्रियां उनके सत्संग में बैठ कर सत्य वचन महाराज बोलती हैं। जिन साधु-महात्माओं की तुम्हें पिटाई कर देनी चाहिए, जिनको निकाल गांव के बाहर फेंक देना चाहिए--क्योंकि वे साधु- महात्मा कह रहे हैं कि स्त्रियां नरक का द्वार हैं--और स्त्रियां मंत्रमुग्ध होकर सुन रही हैं। वे साधु-महात्मा समझा रहे हैं स्त्रियों के विपरीत स्त्रियों को। और स्त्रियों के सिवाय कोई सत्संग नहीं कर रहा है उनका। स्त्रियां ही सत्संगी हैं। सौ सत्संगियों में नब्बे स्त्रियां मिल जाएंगी।
और दस जो पुरुष सत्संग करने आए हैं वे महात्मा का सत्संग करने नहीं आए हैं। वे बाकी स्त्रियों का सत्संग करने आए हुए हैं--कि भीड़-भाड़ में थोड़ा धक्का-मुक्की कर लेंगे। भारतीय संस्कृति! ऐसा अवसर नहीं चूकना चाहिए। और तो कहीं अवसर मिलता नहीं; यहीं सत्संग में थोड़ा-बहुत धक्का-मुक्की हो सके तो हो सके। और साधु-महात्मा जैसे ठेका ही लिए बैठे हैं। एक ही काम है कि स्त्रियों को गाली दो।
मगर बगावत का स्वर खो गया है। भिखारीपन की बात आ गई है। तू कहती है, मुझे ज्ञान-दान दें। जो दान में दिया जा सके उसकी चोरी भी हो सकती है। मैं तो दे दूं और कोई चुरा कर ले जाए, फिर? मैं तो तुझे दे दूं, कोई चकमा दे दे, फिर? और तू तो कनक ऋषि की पुत्री की तरह निर्मल है!
ज्ञान न तो दिया जाता, न लिया जाता। ज्ञान तो स्वयं के भीतर अनुभव करना होता है। ज्ञान तो स्वानुभव है। जरूर मैं तुझे विधि दे सकता हूं कि कैसे उस स्वयं के भीतर छिपे हुए राज को खोला जाए। मैं तुझे कुदाली दे सकता हूं कि कैसे अपने ही भीतर खुदाई की जाए और अमृत के झरनों को खोजा जाए। अमृत के झरने मैं नहीं दे सकता। मगर तू बड़ी जल्दी में मालूम पड़ती है।
तू कहती है, "सिर्फ एक बार मुझे मार्ग-दर्शन कराएं।"
एक बार में तू सोचती है तुझे मार्ग-दर्शन हो जाएगा? ऐसे भागते-भागते भूत की लंगोटी भी नहीं मिलती। कहते हैं लोग कि भागते भूत की लंगोटी भली। मगर भागते भूत की लंगोटी भी मिल सकती है? ऐसी आपाधापी में मालूम होती है तू, इतनी जल्दबाजी में कि बस एक बार! काश इतना आसान होता कि मैं एक बार कहता और तू समझ लेती। हजार बार में भी समझ ले तो जल्दी समझा। लाख बार में भी समझ ले तो सौभाग्यशाली है। क्योंकि समझ के विपरीत इतनी-इतनी बातें बैठी हैं, जो रुकावट डालेंगी, जो दीवारों की तरह हैं।
अब जैसे तू कह रही है कि "एक बार मुझे मार्ग-दर्शन कराएं। चाहे किसी भी धर्म की होऊं, आपके लिए तो सब समान हैं न?"
मेरे लिए तो एक ही धर्म है, समान का सवाल ही नहीं उठता। समान का तो सवाल तब उठे जब बहुत धर्म हों। हिंदू और मुसलमान और ईसाई और जैन और बौद्ध धर्म नहीं हैं, संप्रदाय हैं। उस एक धर्म को पाने के विभिन्न रास्ते हैं। धर्म तो एक ही है। धर्म तो स्वभाव का नाम है, तुम्हारे चैतन्य की जो प्रतीति है। चैतन्य को अनुभव कर लेना, अपने भीतर बैठे परमात्मा को पहचान लेना धर्म है। और तो कोई धर्म नहीं है। ये मंदिर और ये मस्जिद और ये गिरजे और गुरुद्वारे, ये सब तो उसी धर्म की तरफ जाने वाले मार्ग हैं। इसलिए हमने इनको पंथ कहा है, धर्म नहीं; संप्रदाय कहा है, धर्म नहीं। धर्म कहीं दो हो सकते हैं? आत्मा का स्वभाव एक है, सत्य एक है, तो धर्म कैसे दो हो सकते हैं? अनेक तो हो ही नहीं सकते।
लेकिन तेरी धारणाएं खूब मजबूती से बैठी हैं। तू कहती है कि "क्या आप शरण आए को क्षमा नहीं करेंगे?"
मैं तुझ पर नाराज ही कब हुआ? क्षमा तो वह करे जो नाराज हुआ हो। कल तेरी बातों का हम सबने इतना रस लिया, फिर भी तू समझ रही है कि मैं नाराज हुआ। इतनी मीठी-मीठी बातें तूने कही थीं, सब गदगद हुए थे, आह्लादित हुए थे। नाराजगी का सवाल कहां है? लेकिन तू चूक गई होगी। क्योंकि तू तो ब्रह्मज्ञान के पीछे लट्ठ लेकर पड़ी है। ये ब्रह्मज्ञानी बड़े अजीब तरह के लोग हैं। ये तो एकदम गुरु-गंभीर, परमात्मा के ऐसे पीछे पड़े हैं कि मिल जाए तो उसे ठिकाने लगा दें। इसलिए तो मिलता नहीं। इसलिए वह भी भागा-भागा है।

जब पहले पहल--सुनी है मैंने कहानी--कि परमात्मा ने दुनिया बनाई थी तो एम.जी. रोड पर ही रहता था। लेकिन लोग बहुत सताने लगे, पहुंचने लगे होंगे कृष्णा पंजाबी और इत्यादि-इत्यादि। सिंधी सत्संगी जहां न पहुंच जाएं! यहां भी बहुत सिंधी सत्संगी हैं। मगर उन सबको मैंने भ्रष्ट कर दिया। और मैं जब किसी को भ्रष्ट करता हूं तो ऐसा भ्रष्ट करता हूं कि फिर कुछ बाकी नहीं छोड़ता। तो यहां भी एक से एक सिंधी सदगुरु मौजूद हैं। अगर तुझे सत्संग ही करना हो तो यहां भी कई सिंधी दादा हैं--चेनानी दादा! सीता मैया! रामचंद्र जी को ठिकाने लगा चुकीं--कई रामचंद्र जी को ठिकाने लगा चुकीं! और अभी भी मजबूती से तैयार हैं कि किसी को भी भरम-ज्ञान करना हो तो करवा दें। जैसी तू कृष्णा पंजाबी है, ऐसी हमारी पुष्पा पंजाबी है। बिगड़ गई, बिल्कुल बिगड़ गई, नाम रख दिया--बिगड़ गई बहुत तो मैंने नाम रख दियाः धर्म ज्योति! तेरी जैसी ज्ञानी थी। जब शुरू-शुरू में आई थी, बड़ी ब्रह्मज्ञान की बातें करती थी। मगर मेरा काम ही लोगों को भ्रष्ट करना है; उनको जमीन पर लाना है। लोग आकाश में उड़ना चाहते हैं। पहले जमीन पर तो पैर टिकाओ।
तो कल तो हमने तेरा इतना आनंद लिया, तेरी बातों का, और तू समझी कि नाराज हैं! तू सुन ही न पाई होगी। तूने सोचा होगा कि तेरे ब्रह्मज्ञान की बातों पर मैं गंभीरता से चर्चा करूंगा। मैं तो सिर्फ सरलता से, सहजता से, आनंद-भाव से बात करता हूं। गंभीरता तो रोग है, बीमारी है।
मैं चंदूलाल को लेकर मुल्ला नसरुद्दीन से मिलने गया था। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक बहुत प्यारा चुटकुला सुनाया। मैं तो जी खोल कर हंसा, लेकिन चंदूलाल बिल्कुल गंभीर रहे। मैं थोड़ा हैरान हुआ कि बात क्या। जब लौटे तो रास्ते में मैंने पूछा कि चंदूलाल, इतना प्यारा लतीफा सुनाया और तुम हंसे नहीं! कहा कि लतीफा तो प्यारा था, लेकिन पहले तो वह मुसल्ला, मैं हिंदू और मुसलमान की बात पर हंसूं, कभी नहीं! और वह क्या जानता है? ब्रह्मज्ञान की बातें उसे आती भी नहीं। लतीफा सुंदर था और सबके सामने हंसूं, उससे गंभीरता का क्षय होता है। और सत्य के खोजी को गंभीर होना चाहिए। अरे अपने घर जाकर एकांत में बैठ कर हंसूंगा, न किसी को पता चलेगा न किसी को खबर होगी।
तो तू भी गंभीर रही होगी। अगर तू भी हंस लेती, आनंदित होती, प्रसन्न होती, तो मैं जो बात कह रहा था वह तेरे समझ में आती। गंभीर आदमी तो बंद होता है। उसके द्वार-दरवाजे बंद। उसमें से तो किरण भी प्रवेश नहीं कर सकती, हवा का झोंका भीतर नहीं आ सकता। खुल! ये ज्ञान की, ये किताब की दीवारें जो तूने खड़ी रखी हैं, इनको अलग कर।
दुनिया में सिर्फ धार्मिकता है, धर्म नहीं। सत्य है धार्मिकता। और धार्मिक व्यक्ति न हिंदू होता, न मुसलमान होता, न ईसाई होता, न जैन होता। हो ही नहीं सकता। धार्मिक व्यक्ति तो सिर्फ धार्मिक होता है। उसके जीवन में अस्तित्व के प्रति एक प्रेम होता है, एक श्रद्धा होती है, अस्तित्व के प्रति एक प्रगाढ़ आनंद का भाव होता है। संगीत हिंदू होता है कि मुसलमान? नृत्य ईसाई होता है कि जैन? तो उत्सव, आनंद--अंतस का उत्सव, अंतस का आनंद-- कैसे हिंदू, कैसे ईसाई, कैसे मुसलमान हो सकता है? असंभव।
इसलिए यह मत सोच कि मैं तुझ पर नाराज था, या तू किसी और धर्म की है। सब मेरे धर्म के हैं, क्योंकि एक ही धर्म है दुनिया में। जो धार्मिक हैं, वे सब एक धर्म के हैं। और जो अधार्मिक हैं, वे अनेक धर्मों के हो सकते हैं। और नाराज तो मैं कभी भी नहीं। लेकिन अपने-अपने ढंग होते हैं सोचने के। तूने सत्संग किए होंगे तथाकथित साधु-महात्माओं के, पढ़ी होगी रामायण बाबा तुलसीदास की--जो कह गएः ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी। स्त्रियां पढ़ रही हैं, फाड़ नहीं डालतीं, आग नहीं लगा देतीं! चूल्हा इतने करीब है। वहीं चूल्हे के सामने बैठी रामचरितमानस पढ़ रही हैं। खुद ही दोहरा रही हैं, सिर हिला-हिला कर दोहरा रही हैंः ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।
चंदूलाल अपने कमरे में बैठे थे, उनका बड़ा लड़का आया और बोला, पिताजी मेरी वजह से एक लड़की मुसीबत में फंस गई। चुप रहने के लिए वह पांच हजार रुपए मांगती है। चंदूलाल ने बड़े अनमने भाव से चेक काट कर दे दिया। तभी उनका

छोटा लड़का आया और उसने भी वैसी ही दास्तान सुनाई। फर्क सिर्फ इतना था कि इस मामले में लड़की दस हजार रुपए में ही चुप रह सकती थी। पिता परेशानी में चेक काट ही रहे थे कि उनकी सबसे छोटी लड़की आई और सोफे पर बैठ कर रोने लगी। कारण पूछने पर बोली, पिताजी, मैं भी मां बनने वाली हूं। सुनते ही पिताजी की बांछें खिल गईं और मूंछों पर बल देते हुए बोले, अब बटोरने की मेरी बारी है। मारवाड़ी तो एक ही भाषा समझता है--पैसे की भाषा, कि अब बटोरने की मेरी बारी है। ठीक किया बिटिया, पंद्रह हजार हाथ से गए हैं, अब तीस हजार से कम नहीं बटोरूंगा।
तू भी एक भाषा की आदी हो गई है--वही गंभीर भाषा। सरल हो। जैसा तू कहती
है कि निर्मल, तो थोड़ा हंस, थोड़ा मुस्कुरा, थोड़ा प्रसन्न हो। थोड़ी हलकी हो।
भारी होने से कोई परमात्मा तक नहीं पहुंचता, हलका होने से पहुंचता है।
इसलिए मेरी दृष्टि में तो जी भर कर हंस लेने से बड़ी कोई प्रार्थना नहीं।
क्योंकि हंसना जितना हलका करता है, प्रार्थना उतना हलका नहीं करती।
प्रार्थना करने वाले तो बड़े गुरु-गंभीर हो जाते हैं, भारी हो जाते हैं, पत्थर जैसे हो जाते हैं। ये क्या आकाश में उड़ेंगे, इनके तो पंख ही कट गए!
न तो मैं तुझ पर क्रोधित हुआ हूं, न कभी किसी पर क्रोधित हुआ हूं। क्रोधित होता ही नहीं हूं। सार ही क्या है क्रोधित होने में! क्रोधित तो तू थी कि परमात्मा ने यह दुनिया क्यों बनाई? यह क्यों जंजाल शुरू किया? फिर पाप-पुण्य की परिभाषा न बनाता कुछ, न होता पाप न होता पुण्य। नाराज तो तू थी। मैं तो तुझसे कहूंगा कि परमात्मा को क्षमा कर दे, अरे गलती सभी से हो जाती है और एक बार गलती करने का तो सभी को हक है। दुबारा तो उसने दुनिया बनाई नहीं। एक बार बेचारा बना बैठा, बना बैठा। जो हो गया सो हो गया। बीती ताहि बिसार दे! अब आगे की सुध लो। अब जो हो गया पीछे, हो गया। अब किए को तो अनकिया नहीं किया जा सकता।
वही तो गलती की थी उसने, दुनिया बनाई, गलती कर दी, एम.जी. रोड पर रहने लगे। बस तेरी जैसी महिलाएं और महात्मागण उनको सताने लगे। दिन-रात चौबीस घंटे सत्संगी पहुंचने लगे, कि ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों किया, क्यों दुनिया बनाई? आदमी के मन में पाप को क्यों रखा, वासना क्यों बसाई? प्रेम का उदय क्यों होता है? आदमी घर-गृहस्थी में क्यों फंसता है? आवागमन से छुटकारा कैसे होगा? जान ले ली उसकी! परमात्मा भाग खड़ा हुआ। उसने अपने वजीरों को इकट्ठा किया और पूछा कि कोई रास्ता बताओ, कहां छिपूं? ये दुष्ट अब मेरा पीछा न छोड़ेंगे। अब हो गई गलती, हो गई। अगर आदमी को न बनाता तो यह उपद्रव न होता। पशु-पक्षी भले थे। सब सुंदर थे। कोयल गीता गा रही थी, तोते हवाओं में हरियाली फैला रहे थे--यूं उड़ रहे थे जैसे वृक्षों से पत्ते उड़ गए हों! तितलियां धूप में आनंदमग्न हो उड़ रही थीं। आकाश में चीलें दूर-दूर की यात्रा पर निकली थीं। सब सुंदर था। फूल खिले थे। बदलियां तैर रही थीं। झीलों में वृक्षों की छाया बन रही थी। सब प्यारा था। यह आदमी को बना कर गलती हो गई। अब मैं कहां जाऊं, कहां छिपूं?
तो एक ने कहा कि आप ऐसा करें गौरीशंकर पर चले जाएं। वहां कोई आदमी नहीं आ पाएगा। ईश्वर ने जरा गौर से देखा और कहा कि नहीं, थोड़े ही दिनों बाद एक दुष्ट होगा पैदा, हिलेरी नाम का, वह वहां पहुंचेगा। और वह पहुंच गया कि फिर देर नहीं लगेगी। एक पहुंचा कि सब पहुंचे। थोड़ी देर में बसें आने लगेंगी, हवाई जहाज, हेलीकाप्टर, और यही सब दुष्ट, वही के वही सवाल। और जवाब मेरे पास कुछ भी नहीं। अरे भूल हो गई, हो गई। अब और क्या कहूं? कितनी बार माफी मांगूं, कि भाई माफ करो, अब कभी ऐसा न करूंगा! वहां से कुछ हल नहीं होगा।
किसी ने सलाह दी, आप चांद पर बस जाएं।
उसने कहा, वहां भी कुछ ही देर में ये अमरीकी पहुंच जाएंगे। ये अमरीकी जहां न पहुंचें! ये कोई स्थान ही छोड़ने वाले नहीं हैं। ये चले जाते हैं, साधु-संत रहते हैं हिमालय की गुफाओं में, वहां भी पहुंच जाते हैं। हिंदुस्तानी तो यहीं नीचे से बैठ कर प्रसन्न होते हैं कि साधु-संत हिमालय में रहते हैं, जाता-वाता कोई नहीं। ऐसी झंझट में कौन पड़े! अरे साधु-संतों को पड़ी होगी तो खुद ही आएंगे ज्ञान-दान करेंगे, जिनको करना होगा ज्ञान-दान

करेंगे। जब बेचैनी खुद ही पैदा होगी तो आएंगे। मगर अमरीकी पहुंच जाते हैं।
तो हिलेरी भी पहुंचा। भारत का तो गौरीशंकर, मगर कोई भारतीय नहीं कोशिश किया। और अमरीकी पचास साल से कोशिश में लगे हुए थे। पाश्चात्य देशों के लोग पचास साल से आ रहे थे, जा रहे थे, मर रहे थे, गिर रहे थे, खो जाते थे, पता नहीं चलता था कि कहां गए, मगर चढ़ कर ही रहे। जब हिलेरी से किसी ने पूछा कि आखिर ऐसी क्या बेचैनी थी? किसी भारतीय पत्रकार ने पूछा कि हम भी यहीं रहते हैं, सामने ही गौरीशंकर है, अरे जब चाहे चले जाते, कभी न गए, ऐसी क्या पड़ी थी? और उधर रखा भी क्या है? पा क्या लिया जाकर? तो हिलेरी ने, मालूम है, क्या कहा? हिलेरी ने कहा कि सवाल पाने का नहीं है; सवाल यह है कि यह गौरीशंकर चुनौती है। यह खड़ा है और अब तक इस पर आदमी नहीं पहुंचा। पहुंच कर रहेंगे! इसको ठिकाने लगा कर रहेंगे! यह अकड़! यह आदमी बरदाश्त नहीं कर सकता।
तो अमरीकी तो जहां न पहुंच जाएं। वे कहीं भी पहुंचेंगे। गुफा-गुफा खोज डालेंगे। चांद पर भी पहुंच जाएंगे। पहुंचने ही वाले हैं--ईश्वर ने कहा--ज्यादा देर नहीं है। कोई ऐसी जगह बताओ जहां कोई न पहुंचे!
तब एक बूढ़े वजीर ने उसके कान में कहा, आप ऐसा करो। चुपचाप कान में कहा। परमात्मा एकदम प्रसन्न हो गया। उसने कहा, यह बात जंचती है। यही करूंगा। सबने पूछा कि वह कौन-सी बात है? उसने कहा, अब यह तुम न पूछो, नहीं तो बात फैल जाएगी।
तुम्हें मैं बता रहा हूं, लेकिन किसी से कहना मत। यह बात फैलानी नहीं है। इसे सम्हाल कर रखना है। संयम साधना। लाख मन हो कहने का, किसी से कहना ही मत।
उस बूढ़े वजीर ने परमात्मा से कहा था कि आप ऐसा करो, आदमी के भीतर छिप जाओ, वहां कोई आदमी कभी नहीं जाएगा। या कभी अगर कोई जाएगा भी--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई मोहम्मद, कोई नानक, कोई कबीर, कोई पलटू--तो वे ऐसे आदमी नहीं हैं कि आप से प्रश्न करें, कि झंझटें खड़ी करें। वे तो इस तरह के लोग हैं कि आप उनसे प्रश्न करोगे तो वे कहेंगे, चुप रहो भाई, बेकार! फिजूल का सत्संग कर-कर के हम थक गए, अब चुप रहो। यहां भी आए, यहां भी आप बैठे हो। फिर सत्संग! किसी तरह तो सत्संगियों से छूटे। तो ये इस तरह के लोग नहीं हैं, इनसे आपको कोई बेचैनी नहीं होगी। न ये सवाल उठाएंगे, न जवाब देंगे।
और परमात्मा को बात जंच गई। और कृष्णा पंजाबी, तभी से वह आदमियों के भीतर छिपा बैठा है, तेरे भीतर भी छिपा बैठा है। और तू ज्ञान-दान मांग रही है और वह भीतर बैठा हुआ है। और वह भीतर बैठा हंस रहा है। वह कह रहा है, यह देखो, यह सिंधी बाई को देखो!
तू कहती है कि "आज मैं भिक्षु बन कर आपकी शरण में आई हूं।"
भिक्षु बन कर आने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरे संन्यासी भिखारी नहीं हैं, भिक्षु नहीं हैं। सम्राट हैं। सम्राटों की तरह ही रहते हैं। यूं ही रहना चाहिए। अरे चार दिन की जिंदगी है, शान से रहो! गीत तुम्हारे ओंठों पर हों, आनंद तुम्हारे प्राणों में हो। यह भिक्षापात्र लिए क्या घूमना? और परमात्मा भीतर बैठा है, उसका भी तो कुछ संकोच करो। क्या सोचेगा?
नहीं, भिक्षु बन कर आने की कोई आवश्यकता नहीं है और न मांगने की कोई जरूरत है। जो भी तुम्हें पाना है, तुम्हारे भीतर मौजूद है। कहीं जाना नहीं है, भीतर मुड़ना है। आंखें जो बाहर भटक रही हैं, इनको बंद करो।
तू पूछती है कि तटस्थता का मार्ग बता दें। सीधा-साफ रास्ता है। बाहर
से आंख बंद करो और भीतर देखना शुरू करो। सधते-सधते सध जाएगा। धैर्य रखना। जल्दबाजी की बात नहीं है। जल्दी की कोई जरूरत भी नहीं है। अनंत काल पड़ा हुआ है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, देर-अबेर बात हो जाएगी। जब होनी है तब हो जाएगी। आपाधापी नहीं पैदा कर लेना, क्योंकि उसी से चिंता पैदा होती है, व्यग्रता पैदा होती है, अधैर्य पैदा होता है। अधैर्य, व्यग्रता, चिंता से मन में तरंगें उठ आती हैं। तरंगें उठ आती हैं, बस फिर भटक गए, फिर भीतर का दर्पण छिन्न-भिन्न हो गया।

निस्तरंग चित्त चाहिए। और निस्तरंग चित्त तभी होता है, जब कोई दौड़ न
रह जाए--धन की नहीं, पद की नहीं, परमात्मा की भी नहीं। धन की नहीं, ध्यान की भी नहीं। उसी स्थिति का नाम ध्यान है, जहां दौड़ न रह जाए। लेकिन आदमी ऐसा पागल है कि जिसका हिसाब नहीं। वह किसी तरह धन छोड़ता है तो ध्यान की दौड़ में लग जाता है, मगर दौड़ जारी है। अब बाजार नहीं जाता तो हिमालय जाता है; मगर जाता है बाहर। बाजार भी बाहर है, हिमालय भी बाहर है। पहले जाकर फिल्में देखता था, अब जाकर साधु-महात्माओं का सत्संग करता है। फिल्में भी बाहर, संजय खान और फिरोज खान और सब खान बाहर। और ये महात्मा भी उतने ही बाहर। ध्यान का अर्थ है, आपाधापी नहीं, दौड़-धूप नहीं, कहीं जाना नहीं है। चौबीस घंटों में जब भी तुझे थोड़ा समय मिल जाए कृष्णा, आंख बंद करके चुपचाप अपने भीतर देख। शुरू-शुरू में तो सिर्फ विचारों की भीड़ ही दिखाई पड़ेगी, क्योंकि वही जन्मों-जन्मों से पाली है, पोसी है, खिलाई है, पिलाई है। वही विचार डंड-बैठक लगा-लगा कर पहलवान हो गए हैं। वे मुगदर घुमाते हुए मिलेंगे, भुजाएं फड़काते मिलेंगे। भीतर देखेगी तो बस वहां कबड्डी खेल रहे हैं। वही विचार, जो तूने पाल रखे हैं। मगर कोई चिंता की जरूरत नहीं, चुपचाप देख, सिर्फ देख।
और यही कठिन मामला हो जाता है। सरल जैसी बात है, बहुत सरल बात है, मगर कठिन हो गई। क्योंकि देखने में ही हम मुश्किल में पड़ गए हैं। हम देख ही नहीं सकते। हम देखने के पहले निर्णय ले लेते हैं। हमारे भीतर साधु- महात्माओं ने पाप-पुण्य की धारणाएं भर दी हैं--यह बुरा, यह अच्छा। अच्छा विचार दिखेगा कृष्णा पंजाबी को तो एकदम गले लगा लेगी कि अहा, धन्य-भाग! कृष्ण कन्हैया बांसुरी बजा रहे हैं! मगर है कुल जमा विचार, कहां कृष्ण कन्हैया! कहां बांसुरी! बांसुरी भी गई, कृष्ण कन्हैया भी गए, पांच हजार साल हो गए। अब कुछ भी नहीं है। वह बात समाप्त हो गई। वह गीत परमात्मा गा चुका। और परमात्मा दोहराता नहीं है।
मगर भीतर जाएगी, तो गीता सुनती रही है--कल के प्रश्न में गीता से ही उसने प्रश्न उठाया था कि गीता में ऐसा कहा हुआ है और गीता में वैसा कहा हुआ है--भीतर जाएगी, गीता के विचार तैरते हुए मिलेंगे। छाती से लगा लेने का मन होगा कि आओ, बैठ जाओ मेरी गोदी में, आंचल ओढ़ा दूं, कहीं ठंड न लग जाए; कि अरे कहां जाते हो, बड़ी मुश्किल से तो आए हो! मगर ये विचार ही हैं। और अगर कोई ऐसा विचार आ जाएगा, जिसके साधु-महात्मा खिलाफ हैं, तो दुतकारेगी तू कि हट-हट, बदतमीज यहां कहां चला आ रहा है! मुझ कनक ऋषि की निर्मल कन्या के पास! अरे दुष्ट, जा किसी और को छेड़। जैसे कोई मोहनी मूरत किसी की दिखाई पड़ गई-- किसी की क्या, वही पड़ोसी मोहल्ले वालों की--तो एकदम से दुतकारेगी तू कि हट, शर्म नहीं आती? पराई स्त्री के पास चला आ रहा है! है विचार ही, मगर चला आ रहा है। पड़ोसी चला आ रहा है। सपनों में चले आते हैं पड़ोसी! क्या करोगे? मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन रात बड़बड़ाने लगा; मगर स्त्रियां भी बड़ी होशियार हैं, पत्नी उसकी कान लगा कर सुनने लगी कि क्या बड़बड़ा रहा है। वह कह रहा है--विमला! हे विमला! और पत्नी ने दिया हुद्दा--दो किलो वाला हुद्दा--कि उठ, क्या कह रहा है? कौन-सी विमला? नसरुद्दीन नींद में था, एकदम घबड़ा गया। दो किलो वाला हुद्दा लगे तो कोई भी घबड़ा जाए। और पत्नियां जब हुद्दा मारती हैं तो वजनी मारती हैं, कोई... अरे अपने ही पति को मार रही हैं, किसी और को तो मार नहीं रहीं। और जब दे ही रहे हैं तो दिल खोल कर दो। फिर भी पति भी हमेशा सजग रहते हैं, नींद में भी सजग रहते हैं कि पत्नी बगल में ही सो रही है। अरे--नसरुद्दीन ने कहा--कुछ भी नहीं, यह विमला तो एक घोड़ी का नाम है, इस पर मैंने दांव लगाया हुआ है, रेसकोर्स की घोड़ी।
पत्नी को भरोसा तो नहीं आया। किसी पत्नी को कभी भरोसा नहीं आता। पति
की बातों पर किसी पत्नी ने कभी भरोसा किया है! यह बात ही नहीं बनती। यह हुआ ही नहीं कभी। यह असंभव मामला है। मगर अब इतनी रात को क्या हुल्लड़ मचाना। और अभी कोई सूत्र खोजना पड़ेगा तब देखेंगे।
दूसरे दिन मुल्ला जब दफ्तर में था, फोन आया पत्नी का कि अरे सुनो जी, फजलू के पिता, फोन आया है।
नसरुद्दीन ने पूछा, किसका फोन?

पत्नी ने कहा, उसी घोड़ी का। वही विमला नाम की घोड़ी फोन कर रही है, कह रही है आज रात प्लाजा टाकीज के पास मिल जाना।
फंस गए! कहां जाओगे भाग कर? नींद में आएंगे पड़ोसी। आंख बंद करोगी तो आएंगे पड़ोसी। बड़े सज-धज कर आएंगे, बड़े छैल-छबीले बन कर आएंगे। और तेरा मन धार्मिक, कनक ऋषि की निर्मल कन्या! तू कहेगी, अरे हट-हट! बस वहीं गड़बड़ हो जाएगी। किसी विचार को लिया, छाती से लगाया और किसी को धक्का देकर हटाया कि तटस्थता खो गई।
तटस्थता का अर्थ होता हैः अच्छा आए कि बुरा, कुछ लेना-देना नहीं। आए-जाए, जो आए, जैसा हो, कोई निर्णय न लेना, कोई मूल्यांकन न करना। न अच्छा कहना न बुरा; न पाप न पुण्य; न धर्म न अधर्म। बस देखते रहना तटस्थ भाव से; जैसे अपना कुछ प्रयोजन ही नहीं; जैसे रास्ते के किनारे खड़े हैं और राह चल रही है, लोग आ रहे जा रहे; अच्छे लोग भी हैं, बुरे लोग भी हैं। क्या प्रयोजन है? क्या लेना-देना है? हाथी-घोड़े भी निकल रहे हैं, गाड़ियां भी निकल रही हैं, रिक्शे भी निकल रहे हैं, तांगे भी निकल रहे हैं। सारी दुनिया चल रही है, रास्ता चल रहा है। चुपचाप किनारे पर खड़े होकर देखना। बस ऐसे ही मन के किनारे पर खड़े होकर चुपचाप देखने का नाम तटस्थता है। शास्त्र इसी को साक्षी-भाव कहते हैं।
और जो साक्षी है, वही एक दिन उस अपूर्व अनुभव को उपलब्ध होता है, जहां
सब विचार चले जाते हैं--बुरे भी, अच्छे भी। विचार तो विचार हैं, बुरे और अच्छे का कोई सवाल नहीं। अरे पानी के बबूले हैं, क्या अच्छा क्या बुरा! जब सब विचार चले जाते हैं और चित्त निर्विचार होता है, तब उस निर्विचार क्षण में सत्य का साक्षात्कार है; तब उस निस्तरंग चेतना में अस्तित्व झलक आता है--वैसा, जैसा है।
और अस्तित्व न हिंदू है, न मुसलमान, न ईसाई। अस्तित्व तो बस अस्तित्व है। उस अस्तित्व के झलकने को तुम चाहे परमात्मा का अनुभव कहो, चाहे आत्मा का अनुभव कहो, चाहे सत्य का, चाहे सच्चिदानंद का, चाहे निर्वाण का, चाहे कैवल्य का; ये अलग-अलग शब्द हैं, लेकिन एक ही तरफ इनका इशारा है। ये अलग-अलग भाषाएं हैं, मगर बात एक ही है।
तटस्थता तो आसान है, कृष्णा, लेकिन तुझे थोड़ी कठिन पड़ेगी। क्योंकि तू थोड़ी सत्संगी महिला है, वही अड़चन है। तू थोड़ी धार्मिक है, वही अड़चन है। जर्मनी में बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ--वेजनर। उसके पास जब भी कोई संगीत सीखने आता था, तो जो कभी संगीत नहीं सीखे थे, उनसे वह जितनी फीस लेता, उनसे दोगुनी फीस उनसे लेता जिन्होंने कहीं संगीत सीखा था। स्वभावतः जो दस साल संगीत सीख कर आया है, वह कहता कि यह अजीब उलटा न्याय हो रहा है! यह कैसी अंधेर नगरी है, यह क्या ढंग है! मैं दस साल मेहनत करके आया हूं, मुझसे दुगनी फीस और जिसने कभी हाथ में कोई वाद्य नहीं लिया, कभी तार नहीं छुआ, कभी स्वर की जिसे कोई पहचान नहीं है, छंद का कोई बोध नहीं है, उससे आधी फीस!
वेजनर कहता, हां, और इसमें अंधेर नहीं है, सीधा गणित है। पहले मुझे तुम
जो जानते हो वह भुलाना पड़ेगा। और उस आदमी के साथ कुछ भुलाने की झंझट नहीं है, सीधा काम शुरू हो जाएगा। तुम्हारी स्लेट पर बहुत कुछ लिखा हुआ है, वह मुझे पोंछना पड़ेगा। उसकी तकलीफ की भी फीस लगेगी। इसलिए तुमसे दो गुनी फीस। और जो बिल्कुल नया-नया आया है, संगीत के लिए अजनबी है, उससे आधी फीस में चल जाएगा। वह ताजा है, उसकी किताब कोरी है।
कृष्णा पंजाबी, तुझे थोड़ी दिक्कत होगी। यह मेरा अनुभव है वर्षों का। लाखों लोगों को मैंने ध्यान की विधि से परिचय कराया है। अनुभव में यह आया कि तथाकथित धार्मिक लोगों को सबसे ज्यादा कठिनाई होती है। जिनको धर्म से कुछ लेना-देना नहीं रहा कभी, सीधे-सादे लोग उनको ही मैं कहता हूं। जो अपने काम-धाम में ही रहे, न कभी मस्जिद की फिक्र की न कभी मंदिर की फिक्र की, न गीता में उलझे न कुरान में उलझे, जिन्हें सिद्धांतों की बकवास में पड़ने का समय नहीं मिला--सीधे-सादे लोग, सांसारिक लोग--वे जब आते हैं तो ध्यान में उनकी गति जल्दी हो जाती है।
इसलिए तुम यह जान कर चकित होओगी कि मेरे पास तुम्हें पश्चिम से आए हुए हजारों संन्यासी दिखाई पड़ेंगे, लेकिन भारतीय बहुत कम। क्योंकि भारतीय तो

महाज्ञानी! उनकी तो खोपड़ी पर पहाड़ लदे हुए हैं शास्त्रों के। वे तो ब्रह्मज्ञान से ऐसे भरे हुए हैं कि उनको क्या ध्यान से लेना-देना है! उन्हें तो बकवास कंठस्थ हो गई है तोतों की तरह, दोहरा रहे हैं रामनाम, पढ़ रहे हैं जपुजी, नमोकार का पाठ कर रहे हैं--और सोच रहे हैं कि बस सब हो गया। हुआ कुछ भी नहीं है। ऐसे कहीं कुछ होता है? पश्चिम से आए हुए लोगों को मैं ज्यादा सरल पाता हूं, सीधे पाता हूं। अक्सर तो उनमें भौतिकवादी लोग हैं, जिनको कभी धर्म से कुछ लेना-देना नहीं रहा; या नास्तिक हैं, जिन्होंने कभी ईश्वर पर भरोसा नहीं किया। और मेरा अनुभव बड़ा अनूठा है कि इस तरह के लोग बड़ी शीघ्रता से ध्यान में गति कर जाते हैं। क्योंकि उनके पास पकड़ने को कोई अच्छी बात है ही नहीं। पकड़ने का सवाल ही नहीं है।
तो तुझे थोड़ी कठिनाई तो होगी तटस्थ होने में। उसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। इसलिए मैंने तुझसे कहा था--नाराजगी के कारण नहीं--कि जिन्होंने तुझे यह सब ज्ञान दिया है उन्हीं से पूछ। नाराजगी के कारण नहीं कहा था; इसलिए कहा था कि अब यह कचरा कौन साफ करे! कचरा फैलाए कोई और साफ मैं करूं, यह गोरखधंधा कौन करे! उन्हीं के पास जा। नाराजगी के कारण नहीं कहा था; सिर्फ तुझे बोध देने के लिए कहा था, ताकि तुझे यह साफ हो सके कि ये जो तू बातें कर रही है ये बातें किसी काम की नहीं हैं। ये बिल्कुल व्यर्थ की बातें हैं।
शास्त्रों को छोड़ देना होता है, तभी कोई ध्यान को उपलब्ध होता है। शब्दों को छोड़ो तो शून्य को उपलब्ध होओ। और जहां शून्य है वहां पूर्ण विराजमान हो जाता है। जो बिल्कुल शून्य में उतर गया, सन्नाटे में, इसी क्षण परमात्मा का अनुभव हो जाता है। परमात्मा काबा में नहीं, कैलाश में नहीं, काशी में नहीं। परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है--और अभी मौजूद है, इसी क्षण मौजूद है। अब देर उतनी ही लगेगी जितनी तुम्हें अपने ज्ञान को काटने में लगनी है। अगर समझ हो तो एक झटके में भी ज्ञान काटा जा सकता है। उठाओ कृपाण और काट डालो! मगर ज्ञान को काटना कठिन मामला तो होता ही है, क्योंकि उससे प्रीति बंध गई। और ज्ञान का ख्याल है कि यह ज्ञान है।
और तू थोड़ी तो मुश्किल पाएगी। रामकृष्ण जैसे व्यक्ति को बहुत मुश्किल
हो गई थी। क्योंकि जिंदगी तो उन्होंने बिताई--जय मैया, काली मैया की भक्ति में। उतारते रहे आरती, करते रहे भजन। और भाव-भीने होकर करते रहे भजन। लेकिन एक बात धीरे-धीरे समझ में आने लगी उन्हें कि द्वैत नहीं मिटता है, दो तो बने ही हैं--मैं और काली। आंख भी बंद करें तो काली सामने खड़ी है। द्वैत कैसे मिटे? एक कैसे बचे?
तो पूछा एक परमहंस से--तोतापुरी उनका नाम था। वे यूं ही भटकते हुए दक्षिणेश्वर के पास से निकलते थे, उनको देख कर रामकृष्ण एकदम चौंक गए। ऐसा प्रकाशित व्यक्तित्व, ऐसी चमकती हुई धार उन्होंने कभी देखी न थी। कहा तोतापुरी को कि रुक जाएं, थोड़े दिन यहां मेरे मंदिर में मेहमान हो जाएं। तोतापुरी ने कहा, ठीक। रामकृष्ण ने सेवा-सत्कार किया और कहा कि मुझे वर्षों हो गए पूजा करते, प्रार्थना करते और पूरे भाव से पूजा की... ।
इसमें कोई शक नहीं कि पूरे भाव से पूजा की। लेकिन भाव भी है तो मन। विचार भी मन है और भाव भी मन है। विचार से भी बाहर जाना है, भाव से भी बाहर जाना है। विचार से बाहर जाने में भाव सहयोगी हो जाता है, लेकिन फिर भाव पकड़ लेता है। जैसे एक कांटे से दूसरा कांटा तो निकाल दिया, फिर अब दूसरे कांटे को उस घाव में रख लिया, तो बात तो वही रही, मुसीबत तो वही की वही रही। कांटा अब भी है। भाव से विचार कट जाता है, मगर भाव पकड़ जाता है। तो रामकृष्ण ने विचार तो काट दिया था, लेकिन भाव में खूब तल्लीन हो गए थे, ऐसे तल्लीन हो गए थे कि वह भाव मूर्च्छा दे रहा था। रास्ते पर चलते और कोई अगर काली का नाम ले देता तो वे वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ते। ऐसे भावाविष्ट हो जाते। उनको रास्ते से ले जाने में कठिनाई होती थी। उनके भक्तों को पकड़ कर ले जाना पड़ता था। कोई अगर काली का नाम ले दे--और कलकत्ते में तो काली के खूब भक्त हैं और रामकृष्ण को देख कर कोई भी कह दे जय काली, क्योंकि वे भी काली के महा भक्त थे--बस वे वहीं गिर पड़ें रास्ते पर, बीच रास्ते पर। घंटों के लिए बेहोश हो जाएं। आंखों से आनंद की अश्रुधार बहने लगे। मगर यह कोई

बुद्धत्व की अवस्था तो नहीं थी। एक जंजीर से छूटे, दूसरी जंजीर में फंस गए। लोहे की जंजीर छूट गई, माना, मगर सोने की जंजीर हाथ में पड़ गई। और सोने की जंजीर भी है तो जंजीर ही। हीरे-जवाहरात भी जड़ी हो तो क्या होता है? तोतापुरी से कहा कि मुझे अब इस सोने की जंजीर से छुड़ाओ।
तोतापुरी ने कहा, बहुत आसान है। बड़ी आसान बात है। तू आंख बंद करके बैठ मेरे सामने और जब काली की मूर्ति खड़ी हो तो उठा कर तलवार और दो टुकड़े कर देना।
रामकृष्ण ने कहा, काली की मूर्ति को तलवार उठा कर दो टुकड़े कर दूं! क्या कहते हैं आप? यह मुझसे न हो सकेगा। अरे जिंदगी भर जिसकी पूजा की, आरती उतारी, जिंदगी भर जिसकी सेवा में लगा रहा, जिसकी अर्चना की, भावना की, जिसको बामुश्किल तो सजा पाया, अब तो आंख बंद करता हूं तो ऐसी ज्योतिर्मय प्रतिमा खड़ी होती है--पत्थर की नहीं, ज्योति की बनी हुई--उसको कैसे काट दूं? क्या बात करते हैं आप? कैसी अधार्मिक बात करते हैं?
इसलिए मेरी बातें भी बहुत लोगों को अधार्मिक लगती हैं। लगेंगी, क्योंकि तुम जिसे धर्म समझते हो वह मेरे लिए धर्म नहीं है।
तोतापुरी ने कहा, तो फिर मैं चला। तू जान तेरा काम। अगर तुझे धर्म मिल
ही गया तो मुझसे क्या पूछता है? अगर तू पहुंच गया तो तू जान। मुझे क्या लेना-देना है? मुझे क्या पड़ी?
तोतापुरी ने अपना डंडा उठा लिया और चलने लगे। रामकृष्ण ने कहा, रुको- रुको! मेरा मतलब यह नहीं था। कुछ कमी तो है।
तो तोतापुरी ने कहा, कमी है तो फिर तलवार उठानी पड़ेगी। बस इतनी ही कमी है, तूने सब तो तोड़ दिया, अब यह काली से तेरा मोह बंध गया है, इसको भी काट दे। यह जंजीर प्यारी है, मगर मिटा।
रामकृष्ण ने कहा, तलवार कहां से लाऊंगा?
तोतापुरी ने कहा, यह भी तूने खूब बात कही! बड़ा होशियार है! काली कहां
से लाया? अरे जहां से काली लाया वहीं से बंदूक, वहीं से तलवार।
मुल्ला नसरुद्दीन गया था नौकरी करने पानी के जहाज पर। कप्तान ने पूछा
कि नसरुद्दीन, नौकरी तो मिल जाए, लेकिन समझ लो कि तूफान आ जाए तो क्या करोगे?
नसरुद्दीन ने कहा, अरे तूफान आएगा तो लंगर डाल देंगे।
कप्तान ने कहा, समझो कि तूफान फिर से आ जाए, और बड़ा तूफान आ जाए, फिर क्या करोगे?
नसरुद्दीन ने कहा, और बड़ा लंगर डाल देंगे।
कप्तान फिर भी न माना, बोला, और भी बड़ा तूफान चला आ रहा है उसके पीछे, फिर क्या करोगे?
उसने कहा, करेंगे क्या, उससे भी बड़ा लंगर डाल देंगे।
कप्तान ने कहा, ये सारे लंगर तुम ला कहां से रहे हो?
उसने कहा, और ये सारे तूफान तुम कहां से ला रहे हो? अरे जहां से तुम तूफान ला रहे हो वहीं से हम लंगर ला रहे हैं। तुम लाए जाओ तूफान, हम लाए जाएंगे लंगर। कहां से तुम ला रहे हो, यह पहले तुम बताओ। पहले तुम ला रहे हो, हम तो पीछे।
ठीक कहा तोतापुरी ने रामकृष्ण से कि तू काली कहां से लाया? कल्पना का जाल है। भावना मात्र है। तो जब काली बना ली तूने कल्पना से तो तलवार नहीं बना सकता! इतना छोटा-सा काम नहीं बनेगा!
रामकृष्ण को लाजवाब तो हो जाना पड़ा, जवाब तो न दे सके। बात तो सच थी। काली निर्मित ऐसे ही तो हुई थी भावना करने-करने-करने से। आंख बंद की। मगर आंख बंद करें, घंटों बाद आंख खोलें, आंखों से आंसुओं की धार लग जाए, मस्त हो जाएं और फिर कहें कि क्षमा करना--तोतापुरी से--कि जब काली मुझे दिखाई पड़ती है तो मैं भूल ही जाता हूं। तुम्हें भी भूल जाता हूं, तलवार भी भूल जाता हूं, सब सुध-बुध ही भूल जाती है। मैं तो मस्त हो जाता हूं।
तो फिर तोतापुरी ने कहा, अब एक ही रास्ता है। वे गए बाहर और रास्ते के किनारे से एक कांच का टुकड़ा उठा लाए--कोई टूटी हुई बोतल का टुकड़ा--और कहा कि तू बैठ और यह आखिरी है। अगर इससे हल नहीं हुआ तो मैं चला जाऊंगा। दांव

आखिरी लगा ले। तू आंख बंद कर और मैं जब देखूंगा कि तू भाव में पड़ रहा है-- क्योंकि तेरे आंसू बहने लगते हैं और तू डोलने लगता है, तू मस्त होने लगता है--जब देखूंगा कि मस्त होने लगा, तो यह कांच का टुकड़ा देखता है, इसको तेरे माथे पर रख कर, जहां तृतीय नेत्र है भीतर वहां जोर से काट दूंगा बाहर से, लहू की धार बह जाएगी। और जब मैं तेरे माथे को काटूं इस कांच के टुकड़े से तो तू भी चूकना मत, उसी वक्त उठा कर तलवार, देर-अबेर मत करना, सोच-विचार मत करना, उठा कर तलवार दो टुकड़े तू काली के कर देना। इधर मैं तेरे दो टुकड़े करूंगा बाहर से माथे पर, उधर भीतर तू दो टुकड़े कर देना। क्योंकि काली यहीं खड़ी होगी, इसी मस्तिष्क के तृतीय नेत्र के पास, यहीं, यही स्थान है कल्पना का। यहां बाहर से मैं कल्पना काटूंगा, तू भीतर से काट देना। इशारा तुझे मैं दे दूंगा। यह आखिरी। नहीं तो मैं चला। अब तू जान और तेरा काम। रामकृष्ण ने आंख बंद करीं। तोतापुरी ने उठा कर माथे पर लकीर खींच दी, लहू का फव्वारा छूट गया। रामकृष्ण ने भी हिम्मत की और भीतर तलवार उठा कर प्रतिमा के दो टुकड़े कर दिए। प्रतिमा दो टुकड़े होकर गिरी कि रामकृष्ण को परम समाधि उपलब्ध हो गई। छह दिन समाधि लगी रही। छह दिन बाद समाधि टूटी। तोतापुरी मौजूद रहे। जब समाधि टूटी और रामकृष्ण से पूछा कि कुछ कहना है, रामकृष्ण ने कहा कि बस चरण छू लेने दें। इतना ही कहना है कि आखिरी बंधन गिर गया, आखिरी दीवार गिर गई।
तू कहती है कि "मैं आपकी शरण आई हूं।"
अभी क्या शरण आएगी! पहले यह सारा कचरा गिरा। पहले यह सब उपद्रव जो तूने पाल रखा है तथाकथित ज्ञान का, कृष्णा, इसको मिटा। यह गीता, यह रामायण, ये सब जो तेरे भीतर भनभना रही हैं, इनको समाप्त कर। ये रिकार्ड जो तेरे भीतर चल रहे हैं ग्रामोफोन के, इनको काट डाल, तोड़ दे, मिटा दे। तब धन्यवाद देने के लिए आ जाना, वह बात और है। अभी शरण, अभी संभव नहीं है कि तू झुक सके। अभी तो खोपड़ी बहुत विचारों से भरी है, झुकेगी नहीं। झुकेगी भी तो झूठी झुकेगी, औपचारिक होगी।
तटस्थता का मैंने सूत्र तुझे बता दियाः साक्षी-भाव। भीतर बैठ कर अपने विचारों को, वासनाओं को, कामनाओं को, सपनों को, इनकी चलती हुई धारा को देखते रहना। देखते-देखते एक दिन यह धारा बंद हो जाती है। बस देखते-देखते ही यह बंद हो जाती है, और कुछ करना नहीं पड़ता। और जब बंद हो जाती है तो क्या शेष रह जाता है? जो शेष रह जाता है वह सन्नाटा ही परमात्मा है। यही सन्नाटा, जो यहां तुम्हें घेरे हुए है, अभी! यही सन्नाटा! और इसी सन्नाटे में परम साक्षात्कार है। इसी सन्नाटे में शाश्वत और सनातन का अनुभव है। मगर तू थोड़ा अपने ज्ञान को हटा, नहीं तो साक्षी न हो पाएगी।
एकर एक चोर कोई वकील साब रै घर में चोरी करण नै घुस्यो। झलोझल आधीक रात, च्यारूमेर सरणाटो। घर में सगलाई गैरी नींद में सूता हा कै कीं खुड़को सुणीज्यो। वकील साब री स्वान-निद्रा ही सो वै जागग्या। उणां झट रोसणी की वी। अब चोर घबरीजग्यो।
वकील साब चोर नै थावस देवतां कहयो--देख तू घबरीज मत। अठीनै म्हारे कनै
आय नै बैठ जा! दूजो मारग नीं देखर चोर वकील साब रै कनै आय नै बैठग्यो। वकील साब उणनै समझावतां थका बोल्या--मोट्यार आदमी है, औ चोरी रो सूगलो धंधो क्यूं करै है? म्हारो कैवणो मानै तो ओ नपावट धंधो छोड़ दै। थारी जिंदगी सुधर जावैला अर म्हूं थनै पुलिस में ई नीं देवंला।
चोर वकील साबरा पग पकड़तो बोल्यो--अबे जीवतों ई ओ धंधो नीं करूं।
चोर ऊठने जावण लाग्यो तो वकील साब उणनै बिठावतां कहयो--जावै कठै है? म्हैं थनै सलाह दीवी जिणरो मैणतानो बीस रुपिया होवै। सो निकाल बीस रुपिया, पछै भलांई जाय सकै है तूं।
चोर झट बीस रुपिया निकाल कर वकील साब रै नजर किया, और उण दिन पछै कोई वकील रै घरै चोरी करण रो हाथपाणी ले लियो।
तो तू यहां आ फंसी! और यहां तो एक ही फीस है कि ला निकाल, दे तेरा मन मुझे। दे दे अपना मन। और तो कुछ देने की जरूरत नहीं। दे दे अपना ज्ञान, क्योंकि यह सब ज्ञान जो तेरे पास है बिल्कुल थोथा है। थोथे ज्ञान से

छुटकारा हो जाए तो सच्चे ज्ञान का अवतरण होता है। इसके पहले कि सच्चा ज्ञान आए, व्यक्ति को अज्ञान की सरल अवस्था बना लेनी पड़ती है।
सुकरात ने कहा हैः मैं इतना ही जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता हूं।
और उपनिषद का बड़ा प्यारा वचन है कि अज्ञानी तो अंधकार में भटकते हैं लेकिन ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। अज्ञानी का अंधकार तो मिट सकता है, क्योंकि छोटा अंधकार है; ज्ञानी का अंधकार महा अंधकार है, उसको मिटाने का बड़ा उपाय करने पर भी मिटेगा इसका भरोसा नहीं।
कृष्णा पंजाबी, तू अपना ज्ञान छोड़। मगर तू तो उलटे मुझसे ज्ञान मांगने आई है। तू कहती है, मुझे ज्ञान दें। ऐसे ही मांग-मांग कर तो तूने बहुत-सा ज्ञान इकट्ठा कर लिया है, अभी तेरा मन नहीं भरा ज्ञान से? मैं तुझे देता हूं अज्ञान। और अज्ञान ही निर्मल होता है। ज्ञान तो निर्मल होता नहीं। ज्ञान तो चालबाज है। ज्ञान तो गणित है। ज्ञान तो होशियारी है। ज्ञान तो दुकानदारी है। ज्ञान तू मुझे दे दे, अज्ञान तू मुझसे ले ले। मैं तो अज्ञानी हूं। सुकरात ने कहा न कि मुझे इतना ही पता है कि मुझे कुछ भी पता नहीं। मैं तुझसे कहता हूं, मुझे तो उतना भी पता नहीं है। सुकरात को कुछ तो पता है। थोड़ा ज्ञान बाकी है। उसी ने अटका लिया सुकरात को। इसलिए सुकरात को मैं परम बुद्ध नहीं कह सकता; बस पहुंचते-पहुंचते अटक गया, आखिरी सीमा पर जाकर रुक गया। एक कदम और। इतना ही कहा कि मैं इतना ही जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। मगर इतना जानता हूं, यह भी काफी जानना हो गया। यही काफी अड़चन हो गई।
मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं और यहां मैं यही सिखा रहा हूं कि तुम भी कुछ न जानो। जान-जान कर तो बहुत जन्मों से तुमने देख लिया, क्या जान पाए? थोड़ा अज्ञान का मजा भी ले लो। कौन जाने जान कर जो नहीं मिला, न जान कर मिल जाए। यह प्रयोग भी कर लो।
तो मैं अज्ञान देता हूं और उस अज्ञान को ही मैंने ध्यान का नाम दिया है। मेरा अपना हिसाब है। मेरा बड़ा अटपटा गणित है। अज्ञान को ही मैं ध्यान कहता हूं। ज्ञान से छूट जाओ, अज्ञान की अवस्था को बिल्कुल थिर हो जाने दो। बस उतना ही तुम कर सकते हो। उतना ही तुम्हारे हाथ में है। शेष परमात्मा का प्रसाद है। फिर प्रसाद उतरता है।

दूसरा प्रश्नः आप जब आदर्श जोड़ों का जिक्र करते हैं, तो हम कुंवारों
के दिल को कुछ-कुछ होता है। हम क्या करें?

कृष्णतीर्थ भारती, भैया संयम रखो। होने दो कुछ-कुछ। ध्यान ही न दो, क्योंकि ध्यान दिया कि मुश्किल में फंसे।
एक युवक ने अपनी जान जोखिम में डाल कर एक सुंदर कुंवारी युवती को समुद्र में डूबने से बचाया। लड़की के बाप ने कृतज्ञतापूर्ण स्वर में कहा, शाबाश नौजवान, तुम्हारे दुस्साहस का मैं शुक्रिया किस तरह अदा करूं? तुमने सचमुच एक बड़ा खतरा मोल लिया।
वह युवक बात काट कर बोला, खतरा तो कोई मोल नहीं लिया, क्योंकि मैं पहले
से ही विवाहित हूं।
कृष्णतीर्थ, मैं लाख कहूं आदर्श जोड़ों की बात, तुम चक्कर में पड़ना मत। मैं तो कई उलटी-सीधी बातें कहता हूं। मेरी सब बातों में पड़ना ही मत। और जब ऐसी बातें कहूं तो बिल्कुल चौंक गए, सुने ही मत, कान में अंगुली डाल ली। एक पत्नी अपने पति के लिए रेडीमेड शर्ट खरीदने गई। सेल्समैन ने पूछा, उनके गले का नाप क्या है? पत्नी सोच में पड़ गई, फिर सोच कर कहने लगी, सही साइज तो मुझे याद नहीं, बस इतना याद है कि जब मैं उसे गर्दन से पकड़ती हूं तो उसकी पूरी गर्दन मेरे हाथ में आ जाती है।
तुम भैया, थोड़े सावधान रहना।
शॉपेनहार ने कहा हैः यह दुनिया बड़ी अजीब है। यहां हर वह चीज जो आपको पसंद है, अनैतिक है, गैर-कानूनी है, असामाजिक है या फिर शादीशुदा है।

मगर मैं तुमसे कहता हूंः यह अच्छा ही है कि हर चीज जो तुम चाहते हो वह अनैतिक है, गैर-कानूनी है, असामाजिक है और शादीशुदा है, नहीं तो तुम फंस जाओ।
यह तो मैं तुम्हारी पहचान के लिए आदर्श जोड़ों वगैरह का जिक्र कर देता हूं। अब तुमको फांस लिया न! तुम्हारे भीतर का पता लगा लिया। तुम छिपे बैठे थे, बिल्कुल संन्यासी बने हुए, कृष्णतीर्थ भारती। तुमको कोई भी देखता गैरिक वस्त्र में, कैसे भोले-भाले, दाढ़ी वगैरह बढ़ाए बैठे हैं! लोग समझते संत-महात्मा हैं। आदर्श जोड़ों का जिक्र क्या किया कि तुम जाल में फंस गए। ये तो जाल हैं जो मैं फेंकता हूं तरकीबों से। इसमें फांस लेता हूं लोगों को।
ढब्बू जी अपने मित्र चंदूलाल से कह रहे थे कि विवाह मैं इसलिए नहीं करना चाहता, क्योंकि मुझे स्त्रियों से बहुत डर लगता है।
चंदूलाल ने उसे समझाया और कहा, यह बात है तब तो तुम तुरंत विवाह कर डालो। मैं तुम्हें अनुभव से कहता हूं, क्योंकि विवाह के बाद एक ही स्त्री का भय रह जाता है।
अफसर बोला, देखो, हमें एक ऐसा चौकीदार चाहिए जो तंदुरुस्त हो, चुस्त चालाक चौकन्ना हो, जरूरत पड़ने पर लोगों को धमकी भी दे सके और जिसे देख कर आदमी में दहशत दौड़ जाए, कंपकंपी आ जाए, बुखार चढ़ जाए। यदि तुम में ऐसे गुण हों तो तुम्हें यह नौकरी मिलेगी अन्यथा नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन बोला, हुजूर, मुझमें तो ऐसे गुण नहीं मगर मेरी बीबी में ये सभी गुण हैं। मैं अभी लेकर उसे आता हूं। अरे किसी और की क्या, तुम भी देखोगे तो एकदम कंपकंपी छूट जाएगी।
कृष्णतीर्थ, तुम सौभाग्यशाली हो जो अभी तक बचे हो। आदर्श जोड़ों वगैरह
के चक्कर में मत पड़ना।
ढब्बू जी ने अपने मित्र नसरुद्दीन को बताया कि हमारे यहां सभी काम आपस में बांट कर किए जाते हैं। तो नसरुद्दीन ने पूछा, वह कैसे?
ढब्बू जी बोले, इस उदाहरण से समझिए। कल शाम की ही बात है। मेरी पत्नी
ने चाय पीने की इच्छा की, मैंने चाय बना दी, उसने चाय पी ली, और फिर मैंने बर्तन साफ कर दिए। बस काम आपस में बंट गया। आधा-आधा। पहले उसने चाय पीने की इच्छा की, एक काम उसने कर दिया। मैंने चाय बना दी, दूसरा मैंने कर दिया। उसने चाय पी ली, तीसरा उसने कर दिया। मैंने बर्तन साफ कर दिए, चौथा मैंने कर दिया। काम भी बंट गया।
इसको कहते हैं आदर्श जोड़ा! राम मिलाई जोड़ी, कोई अंधा कोई कोढ़ी! आदर्श जोड़ा बड़ी कठिन चीज है। आदर्श जोड़े के लिए कई गुण होने चाहिए, जो बहुत मुश्किल हैं। जैसे पति को बहरा होना चाहिए, अगर आदर्श जोड़ा चाहिए, कि पत्नी कुछ भी अंट-शंट बके, वह सुने ही नहीं। और पत्नी को अंधा होना चाहिए, कि पति यहां-वहां देखे, इस स्त्री को देखे उस स्त्री को देखे, आंखें मिचकाए, हाथ मटकाए, पत्नी को कुछ दिखाई ही न पड़े। पत्नी हो अंधी और पति हो बहरा, तब कहीं आदर्श जोड़ा बनता है। आदर्श जोड़ा बड़ी कठिन चीज है। बहुत ही असंभव। यह दुर्घटना कभी-कभी घटती है।
मटकानाथ ब्रह्मचारी ने ढब्बू जी को समझाते हुए कहा, बेटा, अपनी पत्नी
से लड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि पति-पत्नी गृहस्थी रूपी गाड़ी के दो पहियों के समान हैं।
ढब्बू जी बोले, गुरुदेव, यह बात तो ठीक है, परंतु जब एक पहिया साइकिल
का हो और दूसरा ट्रैक्टर का, तो आप ही बताइए गाड़ी कैसे चलेगी?
और बहुत मुश्किल है कि दोनों पहिए साइकिल के हों कि दोनों ट्रैक्टर
के हों; होता ही नहीं ऐसा। ज्योतिषी नहीं होने देते। मां-बाप नहीं होने देते। समाज नहीं होने देता। ये तो ऐसी जोड़ियां मिलवा देते हैं कि एक साइकिल का चक्का और एक ट्रैक्टर का। अब जो दुर्गति होने वाली है वह तुम समझ ही सकते हो।
एक भलै आदमी रै पड़ोस में एक लड़ोकड़ी लुगाई रैवती। आदत सूं लाचार होवण
रै कारण वा नित-रोज लड़ाई करणनै त्यार रैवती। भलो आदमी पण उण सूं आंती आयोड़ो हो। एक दिन दिनूगै इज वा उण पड़ोसी सूं आय भिड़ी अर मूडै में आवै ज्यूं

बोलण लागी--तू नीच है, तू नालायक है, तू रागस है, म्हारे तो इसो घर-धणी व्है तो म्हूं उणरै चार रै प्याले में जहर नाख देवती।
पड़ोसी ठीमरपणै सूं बोल्यो--अर म्हारै थां जिसी लुगाई व्हैती तो म्हूं
वा चाय गटगट करतो पी लेवतो।
और क्या करोगे!
कृष्णतीर्थ भारती, सावधान! समय रहते सावधान! फिर पाछै पछताय होत का जब चिड़िया चुग गई खेत! एक दफा पत्नी मिल गई तो फिर बहुत मुश्किल मामला है। जब तक नहीं मिली, परमात्मा का धन्यवाद दो। हालांकि ज्यादा देर बच नहीं सकोगे, तुम्हारे ढंग से ऐसा मालूम पड़ता है। और मेरे पास आकर अगर न बच सके तो इस दुनिया में फिर कहीं भी नहीं बच सकते हो। मेरे पास यही तो सबसे बड़ी सुविधा है कि यहां स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से बिल्कुल मुक्त हो जाते हैं। इतनी स्त्रियां हैं, इतने पुरुष हैं और इतने खेल देखते हैं कि रोज परमात्मा को धन्यवाद देते हैं कि अहा, क्या बचाया! इस बाई से बचा दिया, उस बाई से बचा दिया! नहीं तो इस संसार में कितने जाल हैं। इतने जाल तुम्हें कहीं इकट्ठे एक जगह दिखाई पड़ेंगे नहीं। तो यहां अगर अनुभव नहीं हो पाया तो समझो तुम फिर जनम-जनम तक आवागमन में भटकोगे। फिर भवसागर पार होना बहुत मुश्किल है। आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
तीसरा प्रवचन

आत्म-श्रद्धा की कीमिया

पहला प्रश्नः वर्षों से आप जो समझा रहे हैं और जो कुछ भी मैं समझ सका, उसे ही दूसरों को समझाने में मैंने अब तक समय बिताया। लेकिन पीछे मुड़ कर देखता हूं तो पाता हूं कि असल में वह सब तो खुद को ही समझाना था। अब यह समझ ही बोझिल हुई जा रही है। अब इस समझ को ढोना नहीं, खोना चाहता हूं। अब पीना चाहता हूं परमात्मा को। अब जीना चाहता हूं भगवत्ता को। अब शिष्य की तरह नहीं, अब तो भक्त को ही स्वीकार करें।

अजित सरस्वती, एक पुरानी अरबी कहावत है कि इस दुनिया में किसी भी बात
को ठीक से समझना हो तो सबसे सुगम उपाय है उसे दूसरों को समझाना। शिक्षक होते ही व्यक्ति समझने में समर्थ हो पाता है। इस कहावत के पीछे बड़ा राज है। जब तुम दूसरे को समझा रहे होते हो, तब एक तटस्थता होती है, एक साक्षी- भाव होता है। जब तुम दूसरे को समझा रहे होते हो, तब तुम्हारा तर्क शुद्ध होता है, भावना से मुक्त होता है, तुम्हारी दृष्टि वैज्ञानिक होती है, गणित में धार होती है। जब तुम दूसरे को समझा रहे होते हो तो दूसरा ऐसे ही तो समझने को राजी नहीं हो जाएगा; हजार तर्क करेगा, विरोध करेगा, इनकार करेगा। उसके सारे इनकारों को खंडित करना होगा, उसके सारे तर्कों को तोड़ना होगा, उसके विचार के जाल को छांटना होगा। इस सारी प्रक्रिया में तुम्हें अपनी तो सुध ही न रह जाएगी; तुम यह तो भूल ही जाओगे कि मेरी भी कोई समस्या है। तुम तो समाधान होकर प्रकट हो जाओगे। और अगर तुम सफल हो गए दूसरे को समझाने में तो एक आत्म-विश्वास जगेगा, एक आस्था आएगी अपने पर, एक श्रद्धा उमगेगी।
और आत्म-श्रद्धा बड़ी कीमिया है। सबसे बड़ी कठिनाई सत्य के मार्ग पर यही है कि लोगों को अपने पर श्रद्धा नहीं है। खुद पर भरोसा ही नहीं आता कि मैं भी ठीक हो सकता हूं। इसके पीछे कारण है; क्योंकि बचपन से ही प्रत्येक को कहा गया है कि तुम और ठीक! तुम कभी ठीक नहीं हो सकते। महावीर ठीक हैं, बुद्ध ठीक हैं, कृष्ण ठीक हैं, क्राइस्ट ठीक हैं--तुम ठीक! प्रत्येक की निंदा की गई है। प्रत्येक को कहा गया है कुछ और बनो। किसी को भी नहीं कहा गया है कि तुम वही बनो जो तुम हो। प्रत्येक को उसके केंद्र से च्युत करने की कोशिश की गई है। समाज के न्यस्त स्वार्थ इसके बिना जी नहीं सकते। प्रत्येक की प्रतिभा को हजार तरह के कोहरे में ढांक दिया गया है। प्रत्येक की चेतना पर धूल की परतों पर परतें जमा दी गई हैं। और सबसे आसान जो तरकीब है--किसी की प्रतिभा पर चोट करने की, किसी की आत्मा को घावों से भर देने की--वह है, उसे आत्म-निंदा से भर देना--तुम गलत हो।
बच्चा जो भी करता है, मां-बाप कहते हैं गलत। जो भी करे वही गलत है। स्वभावतः बच्चे की श्रद्धा अपने पर डांवाडोल होने लगती है, संदेह जगने लगता है। मां-बाप का इसमें हित है, क्योंकि बच्चे को अगर अपने पर भरोसा हो तो मां-बाप की आज्ञा नहीं मानेगा। और मां-बाप को इससे प्रयोजन नहीं है कि प्रतिभा बचे कि जाए; मां-बाप का मजा इसमें है कि बच्चे आज्ञाकारी हों, क्योंकि बच्चे आज्ञाकारी हों तो मां-बाप का अहंकार प्रफुल्लित होता है। चाहे इस आज्ञाकारिता में बच्चे गोबर-गणेश हो जाएं--हो ही जाते हैं। प्रतिभाशाली बच्चों को कोई मां-बाप पसंद नहीं करते। प्रतिभाशाली बच्चा मां-बाप के लिए एक प्रश्नवाचक चिह्न बन जाता है। वह यूं ही नहीं मान लेता। वह तर्क करेगा, विमर्श करेगा, विवाद करेगा, हजार प्रश्न उठाएगा। और मां- बाप की सामर्थ्य क्या है, कितनी है? उनको उनके मां-बाप मिटा गए हैं। पीढ़ी- दर-पीढ़ी यह रोग चलता है। क्योंकि उनके मां-बाप का मजा यह था कि बच्चे आज्ञाकारी हों। और आज्ञाकारी बच्चे को तो अनिवार्य रूप से अपनी प्रतिभा को एक तरफ हटा कर रख देना होगा। उसे मां-बाप पर भरोसा करना चाहिए। जिनको न ईश्वर का पता है, वे समझा रहे हैं कि ईश्वर है। जिन्हें आत्मा की कोई अनुभूति नहीं, वे बच्चों को बता रहे हैं कि आत्मा है। स्वर्ग और नर्क हैं।

पाप और पुण्य हैं। कर्म का सिद्धांत है। जिन्हें कुछ भी पता नहीं है वे इतने सिद्धांतों को थोप रहे हैं बच्चों पर। थोप पाने में सफल हो सकते हैं सिर्फ अगर बच्चे की प्रतिभा को पहले हटा दिया जाए। इसलिए शुरू से ही बच्चे की प्रतिभा को मिटाने की चेष्टा शुरू हो जाती है।
जिनको हम समझते हैं कि हमारे मंगल के लिए हैं, हमारे हित के लिए हैं--
और वे भी सोचते हैं यही कि मंगल और हित के लिए ही वे कार्य कर रहे हैं! कौन मां-बाप सोचते हैं कि बच्चों का अहित हो रहा है या अहित वे कर सकते हैं? असंभव। और मैं उनकी नीयत पर शक नहीं करता हूं। उनकी नीयत बिल्कुल ठीक है। मगर उनकी विधि बिल्कुल गलत है। नीयत अच्छी होने से क्या होता है? सवाल है तुम क्या कर रहे हो?
फिर जो मां-बाप आधार रखते हैं बच्चे के लिए उन्हीं आधारों पर पूरा समाज जीवन का भवन निर्माण करता है। नेतागण नहीं चाहते कि लोगों में बुद्धि हो, प्रतिभा हो। क्योंकि प्रतिभा हो तो इन प्रतिभा-शून्य लोगों को कौन नेता माने! अगर लोगों के पास अपनी आंखें हों तो अंधों के पीछे कौन चले! और नानक कहते हैंः अंधा अंधा ठेलिया। अंधे अंधों को ठेल रहे हैं। जरूरी है कि लोगों की आंखों में अंधेरा भर दिया जाए, तो नेताओं की चांदी है। नहीं तो बुद्धुओं की इस जमात के पीछे कौन चलेगा? कौन इन्हें मत देगा? इनका हित यही है कि लोगों के पास आंख न हो, देखने की क्षमता न हो, सोचने की कला न हो, उनके पैर डगमगा रहे हों; वे अपने पैरों पर खड़े न हो सकते हों तो नेताओं की बैसाखियां मांगने को मजबूर हो जाएंगे। मांगनी ही पड़ेंगी। अपनी आंख नहीं तो किसी के चश्मे पर निर्भर होना पड़ेगा।
लोगों को अंधा बनाने का पूरा आयोजन राजनीति करती है। और वही काम जो नेता बाहर के जगत में करता है, धर्मगुरु भीतर के जगत में करता है। इसलिए पुरोहित में और राजनेता में पुराना समझौता है, साजिश है। पंडित और पुरोहित और सत्ताधिकारी हमेशा साथ रहे हैं। उन्होंने एक-दूसरे को सहयोग दिया है, क्योंकि दोनों का हित इसी में हैः राजनेता तुम्हें बाहर से अंधा बनाए और धर्मगुरु तुम्हें भीतर से अंधा बनाए। धर्मगुरुओं ने कैसी पोप-लीला फैला रखी है कि अगर धर्मगुरुओं की सारी लीला को समझने की कोशिश की जाए तो तुम चौंक जाओगे कि मनुष्य-जाति के साथ कैसा अनाचार हुआ है!
कल मैं स्वामी निखिलानंद की विवेकानंद पर लिखी हुई किताब देख रहा था। निखिलानंद विवेकानंद के शिष्य हैं, विवेकानंद की जीवन-कथा लिखी। विवेकानंद से किसी ने पूछा कि आप किस स्वर्णयुग की बातें कर रहे हैं? कौन-सा था वह स्वर्णयुग? तो जानते हो विवेकानंद ने स्वर्णयुग की क्या परिभाषा की! स्वर्णयुग की परिभाषा उन्होंने कीः जब पांच ब्राह्मण मिल कर एक पूरी की पूरी गाय को हड़प जाते थे, वह था स्वर्णयुग।
विवेकानंद खुद मांसाहारी थे और विवेकानंद गलत नहीं कह रहे थे। हिंदू धर्म मांसाहारियों का धर्म है। आज भला लाख बकवास करते हों कि गऊ-हत्या नहीं होनी चाहिए, लेकिन सदियों से इनके पंडित और पुरोहित यज्ञों में गऊओं की हत्या करते रहे। गऊओं की ही नहीं, घोड़ों की, और पशुओं की; और पशुओं की ही नहीं, आदमी की भी! जैसे गौमेध-यज्ञ होते थे वैसे ही नरमेध-यज्ञ भी होते थे जिनमें आदमियों की बलि चढ़ा दी जाती थी।
और वेद और ब्राह्मण-ग्रंथ कहते हैं कि इससे बड़ा कोई पुण्य नहीं है कि यज्ञ में गऊ की आहुति दी जाए। इसके दो लाभ हैं। जो गऊ की आहुति देता है उसका स्वर्ग निश्चित है और जिस गऊ की आहुति दी जाती है उसका गोलोक निश्चित है, वह भी बैकुंठ जाएगी। देने वाला भी स्वर्ग जाएगा, मारी गई गऊ भी स्वर्ग जाएगी। और फिर विवरण है कि गऊ के अंगों को किस तरह बांटा जाए, किस-किसको बांटा जाए। जिनको बांटा जाता है वे सब ब्राह्मण पंडित-पुरोहित हैं। किसको सिर मिले, किसको हृदय मिले, किसको टांग मिले--कोई चूक नहीं की, पूरा हिसाब बांट दिया है, किसको क्या मिलना चाहिए। आज यही पंडित-पुरोहित गऊ-हत्या नहीं होनी चाहिए इसका आंदोलन चलाते हैं, क्योंकि अब इसमें ज्यादा लाभ है कि गऊ-हत्या न हो। अब इसी के नाम पर जनता को विमूढ़ित किया जा सकता है। तब उसमें लाभ था। लाभ से प्रयोजन है। आम खाने हैं, कोई गुठलियां तो गिननी नहीं।

तुम्हारे शास्त्र इस तरह के अनाचारों से भरे हैं कि अगर उनको उठा कर देखा जाए तो तुम भरोसा न कर सकोगे कि इनको धर्मशास्त्र कहें या अधर्मशास्त्र कहें। लेकिन पंडितों-पुरोहितों और सत्ताधिकारियों के बीच पुरानी साजिश चल रही है। इन दोनों ने मिल कर आदमी को खूब चूसा है। और आदमी को चूसना हो, उसका शोषण करना हो तो सबसे पहला काम है उसे डगमगा दो, उसके पैरों को कंपा दो, उसके आत्म-विश्वास को खंडित कर दो। तो आदमी को समझाया गया हैः परमात्मा पर भरोसा करो अपने पर नहीं। और जो अपने पर ही भरोसा नहीं करता वह क्या खाक परमात्मा पर भरोसा करेगा? जो अपने पर भरोसा नहीं करता वह अपने भरोसे पर कैसे भरोसा करेगा? यह थोड़ा सोचो तो! जिसे अपने पर श्रद्धा नहीं है, उसे अपनी श्रद्धा पर कैसे श्रद्धा होगी? बीज ही गलत हो गए, तो अब इन गलत बीजों से ठीक-ठीक फूल और ठीक-ठीक फल कैसे आ सकते हैं?
प्रत्येक बच्चे को मां-बाप, शिक्षक, पंडित-पुरोहित, राजनेता उसके केंद्र से च्युत करने में लगे हैं--हटाओ, उसकी जड़ों को उखाड़ दो, ताकि वह जिंदगी भर डरता रहे, घबड़ाता रहे, भयभीत रहे। जितना भयभीत रहे उतना ही अच्छा है। तो नर्क का डर बिठाओ उसके प्राणों में, स्वर्ग का लोभ बिठाओ उसके प्राणों में। और यह सारी मनुष्यता इन्हीं लोगों ने निर्मित की है। इसलिए अजित, प्रत्येक व्यक्ति यहां पैदा तो होता है बड़ी आत्म-श्रद्धा लेकर, लेकिन जल्दी ही उसकी आत्म-श्रद्धा पोंछ दी जाती है। चंपा से कहा जाता है चमेली हो जाओ, चमेली से कहा जाता है गुलाब हो जाओ, गुलाब से कहा जाता है कमल हो जाओ। किसी को भी सुविधा नहीं है स्वयं होने की--कुछ और हो जाओ। और हैरानी की बात यह है कि इस पृथ्वी पर जितने सुंदर फूल खिले, वे तभी खिले जब उन्होंने अनुकरण छोड़ दिया।
जीसस यहूदी परिवार में पैदा हुए, यहूदी वातावरण में पैदा हुए, लेकिन यहूदी नहीं थे; यहूदी होते तो यहूदी सूली न लगाते। बगावत की, विद्रोह किया। किस बात से बगावत की? इसी बात से बगावत की कि दूसरे का अनुकरण नहीं करेंगे, अपने ढंग से जीएंगे, अपने रंग में जीएंगे, अपना छंद खोजेंगे, अपना गीत गाएंगे। क्यों गाएं किसी और का गीत? क्यों उधार जीएं? क्यों बासा जीवन अंगीकार करें? क्यों किसी और के वस्त्र पहनें? यही कसूर था जीसस का कि वे यहूदियों के संप्रदाय, परंपरा, संस्कारों से अपने को मुक्त कर लिए। स्वतंत्र व्यक्ति को समाज कभी क्षमा नहीं कर पाता। विद्रोही को समाज
हर तरह से सजा देता है, हर तरह से सूली पर लटकाता है। और यह भी ख्याल रखना कि जीसस ईसाई भी नहीं थे। ईसाई तो हो ही कैसे सकते थे? अभी ईसाई संप्रदाय तो पैदा ही न हुआ था। अभी तो पोप का कोई आगमन न हुआ था। अभी तो ईसाई पादरी और पुरोहितों का जाल नहीं फैला था। यहूदी थे नहीं जिनका कि जाल था और ईसाई तो हो कैसे सकते हैं, अभी तो ईसाइयों को आने में समय था। फिर जीसस कौन थे? जीसस सिर्फ जीसस थे--न यहूदी, न ईसाई।
बुद्ध कौन थे? हिंदू घर में पैदा हुए थे मगर हिंदू नहीं थे। हिंदू होते तो हिंदुओं ने उन्हें वही सम्मान दिया होता जो शंकराचार्य को दिया है। और मजा यह है कि शंकराचार्य जो भी कहते हैं सब उधार है। सौ में निन्यानबे प्रतिशत तो बुद्ध से ही उधार लिया है। रामानुज ने ठीक कहा है कि शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध हैं, छिपे हुए बौद्ध हैं। मगर भाषा हिंदू धर्म की है, विचार तो बुद्ध के हैं। लेकिन वस्त्र पहना दिए हैं शास्त्रों के--हिंदू शास्त्रों के। सिर्फ शब्दों का हेर-फेर है। लेकिन शंकराचार्य को सम्मान मिला, क्योंकि शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य किया, उपनिषदों पर टीकाएं लिखीं, गीता की व्याख्या की और खूब प्रशंसा की, खूब स्तुति की। बुद्ध ने ईमानदारी से जैसी बात थी वैसी कही; जो गलत था उसे गलत कहा, जो ठीक था उसे ठीक कहा। और शास्त्रों में निन्यानबे प्रतिशत तो गलत है।
तो बुद्ध हिंदू नहीं थे। हिंदू घर में पैदा हुए थे। संस्कार हिंदुओं
के डाले गए थे, लेकिन वे उस जाल में फंसे नहीं। उन्होंने जाल तोड़ दिया, जंजीरें गिरा दीं। वे कारागृह के बाहर हो गए। और जाहिर रहे कि बौद्ध तो हो ही नहीं सकते बुद्ध, अभी बौद्धों के आने में तो देर थी। अभी अनुयायी तो पैदा होंगे, मंदिर बनेंगे, प्रतिमाएं बनेंगी, शास्त्र बनेंगे, पंडित-

32

पुरोहित आएंगे। अभी समय था। फिर बुद्ध कौन थे? बुद्ध सिर्फ बुद्ध थे--किसी समाज के अंग नहीं, किसी संस्कार परंपरा के हिस्से नहीं।
यही सत्य है उन सारे लोगों के संबंध में जिनके जीवन से यह पृथ्वी सुवासित हुई है; जो इस पृथ्वी के नमक हैं; जिनके कारण यहां जिंदगी में थोड़ा स्वाद है; जिनके कारण कुछ दीए जले हैं और कुछ रोशनी हुई है।
अजित सरस्वती, मुझसे तुम जो समझते हो उसे जब तक तुम औरों से न कहोगे वह तुम्हें ही साफ न हो पाएगा। औरों से कहोगे तभी तुम्हें साफ हो पाएगा। औरों से कहने में ही साफ हो पाएगा। उसमें निखार आएगा। जैसे कि कोई आईने के सामने खड़ा हो तभी अपने चेहरे को देख सकता है। आईने के सामने खड़ा न हो तो चेहरे को कैसे देखेगा? तुमने मुझसे सुना, जब तुम किसी से कहोगे तो तुम आईने के सामने खड़े होओगे, दूसरा तुम्हारे लिए आईना बन जाएगा। उससे कहते समय ही तुम्हें समझ में आएगा कि तुम समझे भी या नहीं समझे। अगर उसे समझा पाए तो समझे, अगर उसे नहीं समझा पाए तो क्या खाक समझे!
इसलिए यह बात ठीक ही है। यह तुम्हारा अनुभव ठीक ही है कि तुम कहते हो, "जब मैं पीछे मुड़ कर देखता हूं तो पाता हूं कि असल में वह सब तो खुद को ही समझाना था।"
लेकिन इसमें कोई कसूर नहीं। इसमें कुछ अपराध नहीं। यह बिल्कुल सम्यक है। मुझसे तुम जो पाओ, जो तुम्हारे हृदय में गूंज उठे, उस गूंज को तुम समझ ही तब पाओगे जब तुम किसी और के हृदय में वही गूंज उठाने में सफल हो जाओ। मैं तुम्हारे हृदय की वीणा के तार छेडूं, उन्हें तुम तभी सुन पाओगे जब तुम किसी और की वीणा के तार छेड़ दोगे। तब तुम्हें भरोसा आएगा, तुम्हारे पैरों में बल आएगा, तुम्हें जड़ें मिलेंगी। तब तुम्हें लगेगा कि नहीं, मैं समझा तो ठीक ही समझा। तुम पर आत्म-श्रद्धा का पुनः अवतरण होगा। जो छीन ली गई है, जो समाज की साजिश में खो गई है, मैं तुम्हें उसे वापस देना चाहता हूं। मेरे संन्यासी मेरे अनुयायी नहीं हैं। मेरे संन्यासी मेरे प्रेमी हैं, मेरे मित्र हैं, मेरे अनुयायी नहीं। मेरे संन्यासी मेरे सहयात्री हैं; मेरे पीछे चलने वाले नहीं हैं, मेरे साथ चलने वाले हैं, मेरे संगी- साथी हैं। मेरे संन्यासी, और तुमने जो अब तक संप्रदाय देखे हैं, उस भांति के लोग नहीं हैं। जीसस के साथ जो लोग चले थे, थोड़े-से लोग, वे जीसस के अनुयायी नहीं थे, उनके प्रेमी थे। जो लोग बुद्ध के साथ चले थे वे भी उनके प्रेमी थे। जब भी कोई जीवंत चेतना इस पृथ्वी पर चलती है तो उसके अनुयायी नहीं होते, उसके मित्र होते हैं, संगी होते हैं, साथी होते हैं, सहयात्री होते हैं। जब बुद्ध, महावीर, जरथुस्त्र, लाओत्सु जैसे लोग विराट में लीन हो जाते हैं तो सिर्फ समय के तट पर रेत पर उनके छूट गए पदचिह्नों को पकड़ कर फिर मंदिर बनते हैं, अनुयायी खड़े होते हैं, संप्रदाय निर्मित होते हैं। अभी तो मैं जिंदा हूं। इसलिए जो मेरे साथ अभी हैं बस उनको ही लाभ मिल सकता है। मेरे पीछे तो बात वही हो जाएगी जो सदा होती रही है, उससे अन्यथा होने वाली नहीं है। एस धम्मो सनंतनो। कुछ किया नहीं जा सकता। कोई उपाय नहीं है। पंडित-पुरोहित आएगा ही आएगा। वह राह ही देख रहा है। वह प्रतीक्षा ही कर रहा है किनारे पर खड़ा हुआ कि उसे मौका मिल जाए। वह अनुयायी पैदा करेगा।
मेरे साथ तुम हो तो तुम्हें जो भी समझ में आ रहा है, जब तुम मेरे पास बैठे हो, तब तुम्हारे हृदय में जरूर तार छिड़ते हैं, स्वर बजता है--मद्धिम-मद्धिम, इतना मद्धिम कि तुम उसे पकड़ना चाहो तो एकदम पकड़ न पाओगे। जब तुम किसी को समझाओगे तब वही मद्धिम स्वर प्रकट होगा, अभिव्यक्त होगा। तुम्हें दूसरे से कहने के लिए शब्द खोजने पड़ेंगे। और वे शब्द ही तुम्हें पहली बार बताएंगे कि तुम समझ पाए या नहीं; उन शब्दों में समाया शून्य ही तुम्हें बताएगा कि तुम्हारे भीतर कुछ उतरा या नहीं, कोई बूंद तुम्हारे गले के भीतर गई या नहीं। दूसरे की आंखों में जब तुम देखोगे चमक, सन्नाटा, स्वीकार, श्रद्धा, तब दूसरा तुम्हारे लिए दर्पण बन गया।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि जो भी तुम समझते हो मुझसे, जरूर दूसरे को समझाओ। यह समय को गंवाना नहीं है। यह सत्य के अन्वेषण में अनिवार्य प्रक्रिया है। जीसस ने कहा है अपने शिष्यों से कि चढ़ जाओ मकानों की

मुंडेरों पर और जोर से चिल्लाओ, क्योंकि लोग बहरे हैं, सुनेंगे नहीं। मगर चिल्लाए जाओ। हजार से कहोगे तो एक तो सुनेगा। हजार सुनेंगे तो एक तो समझेगा। हजार समझेंगे तो एक तो चलेगा।
अगर तुम एक को भी सत्य की दिशा में गतिमान कर पाए तो इसका अंतिम परिणाम यह होगा कि तुम्हें अपने पर भरोसा आ जाएगा कि तुम ठीक मार्ग पर हो। अगर किसी का दीया तुम्हारी बातों से जल गया तो साफ हो जाएगा कि तुम्हारा दीया भीतर जल चुका है। दूसरा हमेशा दर्पण का काम करता है। इसलिए ऐसा कभी भूल कर मत सोचना कि दूसरे को समझाने में जो समय गया वह व्यर्थ गया।
तुम कहते हो, "अब यह समझ ही बोझिल हुई जा रही है।"
वह शुभ है। समझ तो शुरुआत है। समझ के पार जाना है। सत्य समझ के बहुत पार है। लेकिन समझ की सीढ़ियां बनानी होंगी। समझ की सीढ़ियों के बिना तुम समझ के पार भी न जा सकोगे। हां, समझ पर रुकना मत, अटकना मत। सीढ़ियों को जकड़ कर बैठ मत जाना। सीढ़ियां पड़ाव नहीं हैं, ठहराव नहीं हैं। मंजिल तो बिल्कुल नहीं हैं। अगर थोड़ी-बहुत देर विश्राम करने को भी रुको तो सावधान, क्योंकि खतरा यह है कि कहीं उसी विश्राम को तुम मंजिल न समझ लो। और हर ऊपर की सीढ़ी मंजिल जैसी मालूम होगी, क्योंकि तुम्हें मंजिल का तो पता नहीं है। इसलिए हर ऊपर की सीढ़ी पहली सीढ़ी से तो गहरी होगी, ऊंची होगी, सारगर्भित होगी, रसपूर्ण होगी, आनंद की तरंगें उठेंगी, कुछ फूल खिलेंगे, कुछ गंध उड़ेगी, कुछ दीप जलेंगे, कुछ रोशनी होगी। मगर ध्यान रहे, बढ़ते जाना है, बढ़ते जाना है। उपनिषद का बहुमूल्य एक सूत्र है कि बढ़ते रहो, बढ़ते रहो। कहीं भी रुकना मत, कहीं भी ठहरना मत। उस समय तक बढ़ते रहो जब तक कि मार्ग शेष रहे। जरा भी लगे कि अभी और आगे बढ़ा जा सकता है तो ठहरना मत। ठहरने का मन बहुत बार होगा। बहुत बार लगेगा कि आ गई मंजिल, क्योंकि मन तो रुक जाना चाहता है। जहां भी मौका मिल जाए, वहीं रुक जाना चाहता है। मन की तो एक ही आकांक्षा है कि बस यहीं ठहर जाओ। मन अलाल है, आलस्य से भरा है।
यह है सूत्रः
चरैवेति। चरैवेति।।
आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः।।
चरैवेति। चरैवेति।।
"चलते रहो! चलते रहो! बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े हुए का सौभाग्य खड़ा हो जाता है। पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता रहता है, और चलने वाले का सौभाग्य चलने लगता है। चरैवेति। चरैवेति।। चलते रहो! चलते रहो!" उस समय तक चलते रहना है जब तक चलने को जरा-सा भी अवकाश रहे। हां, जब रास्ता ही समाप्त हो जाए तब तो क्या करोगे! जब चलने को ही जगह न बचे, जब अंतिम पड़ाव आ जाए, जिसके आगे कोई मार्ग न हो, जैसे गौरीशंकर पर कोई चढ़ जाए, तो जब गौरीशंकर के शिखर पर पहुंच जाएगा तो आगे कोई मार्ग नहीं। अब तो उतार है, अब चढ़ाव नहीं। जब ऊंचाई का वैसा शिखर आ जाए कि उसके आगे कदम उठाने का अर्थ उतार हो, तब रुक जाना। लेकिन तब तक चलते चलना है।
समझ तो रोज-रोज बोझिल होती जाएगी। अगर कभी तुम पहाड़ की यात्रा पर गए
हो तो यह तुम्हें अनुभव हुआ होगा। जितनी ऊंचाई पर बढ़ोगे उतनी ही चीजें भारी मालूम होने लगती हैं। जरा-सा झोला भी कंधे पर लटकाया हो, नाश्ता साथ लिया हो कि थर्मस लटका रखी हो, वह भी भारी होने लगती है। कैमरा भी भारी होने लगता है। सब छोड़ देना पड़ता है। जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती है वैसे-वैसे तुम्हें निर्भार होना होगा। समझ भी बोझिल हो जाती है।
यह स्मरण रहे कि जो आज उपयोगी है वह जरूरी नहीं कि कल भी उपयोगी हो। बीमार के लिए औषधि उपयोगी है, लेकिन स्वस्थ के लिए खतरनाक है। जब स्वस्थ हो जाओ तो औषधि छोड़ देनी है। इस पार से उस पार जाना हो तो नाव उपयोगी है, लेकिन उस पार पहुंच जाओ तो फिर नाव छोड़नी पड़ेगी। फिर नाव को सिर पर लेकर मत घूमने लगना, नहीं तो बोझिल तो हो ही जाएगी।
तुम कहते हो, "अब यह समझ ही बोझिल हुई जा रही है।"
अच्छा हो रहा है, शुभ लक्षण है। इस बात का लक्षण है कि ऊंचाई बढ़ रही है। इसलिए समझ बोझिल हो रही है। शब्द मात्र भी बोझ हो जाता है। शून्य

निर्भार है। शब्द में थोड़ा भार तो होगा। सिद्धांत में और भी ज्यादा भार होगा। शास्त्र तो बहुत भारी होता है। इसलिए शास्त्रों को पकड़ कर जो बैठ गए हैं उनके लिए पंख नहीं मिल सकते। वे आकाश में कभी उड़ न पाएंगे। यह नीला आकाश और इसकी विराटता उनके लिए नहीं है।
आईना टूट गया, अक्स भी टूटा होगा
किसने सोचा था ये अंजामे-तमन्ना होगा
सब टूट जाता है; आईने भी टूट जाते हैं, अक्स भी टूट जाते हैं।
किसने सोचा था ये अंजामे-तमन्ना होगा
अभिलाषा का, अभीप्सा का यह अंतिम परिणाम होगा, यह किसने सोचा था? शून्य होने को कौन चलता है? लोग तो पूर्ण होने को चलते हैं, क्योंकि पूर्ण की भाषा अहंकार को प्रीतिकर लगती है कि मैं और पूर्ण हो जाऊं। मगर सत्य बात पूछते होओ तो पूर्ण होने की बात तो सिर्फ निमित्त मात्र है। चूंकि तुम पूर्ण होना चाहते हो, इसलिए सदगुरु पूर्ण की बात करते हैं, लेकिन वे जानते हैं कि पूर्ण होने की जो विधि तुम्हें देंगे उसमें तुम शून्य हो जाओगे। और शून्य हो जाओगे तभी तुम जानोगे कि शून्य होने में ही तृप्ति है, पूर्ण होने में नहीं; या यूं कहो कि शून्य होने में ही पूर्ण होना है, और कोई पूर्णता नहीं है।
आईना टूट गया, अक्स भी टूटा होगा
किसने सोचा था ये अंजामे-तमन्ना होगा
रात उमड़ी ही चली आती है तूफां की तरह
बुझ गई दर्द की कंदील भी, अब क्या होगा
सदियों-सदियों से, जन्मों-जन्मों से तुम दर्द की कंदील लिए हुए चल रहे हो। लोग कहते जरूर हैं कि हमें दुख से छूटना है, लेकिन मुश्किल से मुझे कोई दिखाई पड़ता है जो दुख से सच में छूटना चाहता है। दुख को लोग छाती से लगाए हुए हैं--संपदा की भांति। और उसका कारण क्या है? कारण यह है कि दुख के सिवाय कुछ और तो तुम्हारे पास नहीं है। और यह भी छूट गया तो बिल्कुल खाली हाथ रह जाओगे। लोग कहते हैंः ना-कुछ से तो जो कुछ है वही भला। दुख ही सही, दर्द ही सही, नर्क ही सही--कुछ तो है!
रात उमड़ी ही चली आती है तूफां की तरह
बुझ गई दर्द की कंदील भी, अब क्या होगा
तेजतर वक्त की रफ्तार हुई जाती है
दम-बखुद शाम कि पैगामे-सहर क्या होगा
और जैसे-जैसे मनुष्य विकसित हो रहा है वैसे-वैसे समय की रफ्तार तेज होती जा रही है।
तेजतर वक्त की रफ्तार हुई जाती है
दम-बखुद शाम कि पैगामे-सहर क्या होगा
अभी तो शाम ही है और दम तक घुटा जा रहा है। दम साधे हुए बैठे हैं। किसी तरह अपने को सम्हाले बैठे हैं। और डर भी लग रहा है कि जब शाम से ही यह हाल है तो सुबह का संदेश क्या होगा, कौन जाने! सुबह कैसी होगी, कौन जाने!
तेजतर वक्त की रफ्तार हुई जाती है
दम-बखुद शाम कि पैगामे-सहर क्या होगा
मुस्कुराते हुए जख्मों के हसीं फूलों परबे
नियाजी को तिरी प्यार तो आया होगा
तेरी महफिल न सही, दर्द की महफिल होगी
जिंदगी के लिए कोई तो सहारा होगा
तुम पूछते हो अजित सरस्वती, "जीना है भगवत्ता को, जीना है परमात्मा को।"
जरूर जीना है, मगर कठिनाई यह है कि हम दर्द को किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं पकड़े हैं। वह छूट जाए तो परमात्मा अभी मिल जाए। एक दर्द छोड़ते हैं तो दूसरा दर्द पकड़ लेते हैं।
तेरी महफिल न सही, दर्द की महफिल होगी
जिंदगी के लिए कोई तो सहारा होगा
दर्द भी लोगों के लिए सहारा है।

फिक्र टूटे हुए ख्वाबों से हरारत लेगी
चलो कोई फिक्र नहीं, टूटे हुए ख्वाबों से ही थोड़ी-सी गर्मी तो मिलेगी! फिक्र टूटे हुए ख्वाबों से हरारत लेगी
दिल पे बीते हुए अय्याम का साया होगा
चलो न सही कोई भविष्य, लेकिन जो बीत गए दिन उनकी छाया ही बहुत है; उनकी सुरक्षा ही बहुत है।
कट रही हैं बस एक उम्मीद पे राहें "ताबां"
बेठिकानों का भी कोई तो ठिकाना होगा
बस उम्मीद पर जीए जाते हैं। उम्मीद, आशा। सब सपने हैं। भगवत्ता तो अभी उपलब्ध हो जाए, इस क्षण, ठीक इसी क्षण! मगर हमारी अड़चन यह है कि हम दुख को नहीं छोड़ पा रहे हैं। हम दुख में जीने के बहुत आदी हो गए हैं।

आईना टूट गया, अक्स भी टूटा होगा
किसने सोचा था ये अंजामे-तमन्ना होगा
रात उमड़ी ही चली आती है तूफां की तरह
बुझ गई दर्द की कंदील भी, अब क्या होगा
तेजतर वक्त की रफ्तार हुई जाती है
दम-बखुद शाम कि पैगामे-सहर क्या होगा मुस्कुराते हुए जख्मों के हसीं फूलों परबे नियाजी को तिरी प्यार तो आया होगा
तेरी महफिल न सही, दर्द की महफिल होगी
जिंदगी के लिए कोई तो सहारा होगा
फिक्र टूटे हुए ख्वाबों से हरारत लेगी
दिल पे बीते हुए अय्याम का साया होगा
कट रही हैं बस एक उम्मीद पे राहें "ताबां"
बेठिकानों का भी कोई तो ठिकाना होगा
बस उम्मीद पर जीए जाते हैं, आशा पर जीए जाते हैं।
ध्यान रहे अजित, परमात्मा को पीना है, भगवत्ता को जीना है--इसे उम्मीद
न बनाना, इसे आशा न बनाना, इसे कामना न बनाना, इसे प्रार्थना न बनाना। सिर्फ दुख को छोड़ दो, सिर्फ सपनों को छोड़ दो। और भगवत्ता तो तुम्हारा स्वरूप है, उसे जीने की कोई अड़चन नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि हम भगवत्ता को क्यों नहीं जी रहे हैं! कठिनाई यह नहीं है कि भगवत्ता को कैसे जीएं; कठिनाई, आश्चर्य, चमत्कार, जो भी कहो, यह है कि हमने कैसे भगवत्ता को भुला दिया है--जो हमारे प्राणों का प्राण है। जो हमारे भीतर दीया जल ही रहा है सदियों से, सदा से, अनंत काल से, उसे हम कैसे विस्मरण कर दिए हैं! बस स्मरण की बात है। और स्मरण अभी आ जाए, यह दुख छूटे।
इसलिए दुख को किसी भी रूप में बचाना मत। हम नए-नए दुख बना लेते हैं। जैसे उदाहरण के लिए "भगवत्ता को जीना" यह नया दुख बन सकता है, कि अभी तक भगवान नहीं मिला। मोक्ष पाना है, अभी तक मोक्ष नहीं मिला। निर्वाण कैसे होगा? यह जिंदगी बीती जाती है और निर्वाण का कुछ पता नहीं चल रहा है, कहीं यूं ही खाली हाथ समय न चला जाए! यह नया दुख हो गया।
मेरी सारी चेष्टा यही है कि तुम्हें सजग करूं इस बात के प्रति कि कुछ पाना नहीं है। जो पाना है वह मिला है और पाने की उम्मीद में ही चूका जा रहा है।
तुम कहते हो अजित, "अब शिष्य की तरह नहीं, अब तो भक्त को ही स्वीकार करें।"
मेरी तरफ से तो कब अड़चन है? अड़चन तो जब भी है तुम्हारी तरफ से है। मेरी तरफ से तो तुम भक्त की तरह ही स्वीकृत हो। तुम मानो या न मानो। मैं तुम्हारे मानने न मानने की फिक्र थोड़े ही करता हूं। मेरी तरफ से तो तुम भक्त की तरह ही स्वीकृत हो। तुम कहते हो, शिष्य हूं, तो मैं कहता हूं चलो कोई बात नहीं। धीरे-धीरे समझ जाओगे कि हो तो भक्त ही। शिष्य का मतलब ऐसे ही जैसे चदरिया ओढ़े बैठे हैं और हो तो भीतर नंगे ही, चदरिया ही ओढ़ ली तो क्या फर्क पड़ता है? आदमी तो नंगा ही है, चाहे चादर ओढ़े, चाहे कंबल ओढ़े, चाहे सूट-

36

पैंट पहने, चाहे टाई बांधे, कुछ भी करे। मगर सब कपड़ों के भीतर आदमी नग्न है। यूं ही भक्ति है। तुम कितने ही आवरण ऊपर से ओढ़ लो, भीतर तो भक्त मौजूद ही है।

किसको पड़ी है, कौन बंटाए किसी का गम
अपनी सलीब आप उठाए हुए हैं हम
इस दौरे-कमखुलूस में क्या गुफ्तगू का लुत्फ
अलफाज के हुजूम में घुटने लगा है दम
कैसे दिलों का रब्त बने मसलहत का रब्त
अब दाद का भरम है, न बेदाद का भरम
हर लम्हा हयात का मांगे खुलूसे-शौक जुल्फों के पेचो-खम हों कि राहों के पेचो-खम एक ऐसी रहगुजर भी है, हर रहगुजर से दूरबह
के हैं लाख बार जहां वक्त के कदम
कमबख्त उनके रहम के काबिल है जिंदगी
किस्मत में जिनकी बादाफरावां है प्यास कम
"ताबां" है जिंदगी की हमें हर अदा अजीज
महरूमियों का रंज न बर्बादियों का गम
कुछ थोड़े-से वस्त्रों को गिराने की बात है। हम हजार बार दरवाजे पर पहुंच-पहुंच कर लौट आते हैं।
एक ऐसी रहगुजर भी है, हर रहगुजर से दूरबह
के हैं लाख बार जहां वक्त के कदम
बहुत बार हम द्वार पर जाते हैं और लौट आते हैं। हाथ में द्वार की सांकल भी ले लेते हैं, बजाते-बजाते रुक जाते हैं। शायद डर जाते हैं। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैं परमात्मा को खोजता रहा, खोजता रहा, खोजता रहा। और खोजते-खोजते कभी वह उस तारे के पास दिखाई पड़ता, कभी उस तारे के पास दिखाई पड़ता। जब तक दूर-दूर दिखाई पड़ता रहा मैं खोजता रहा। खोज में बड़ा आनंद था। अब मिला अब मिला; बड़ी आशा थी, बड़ी उम्मीद थी।
और फिर एक दिन सारी आशाओं पर पानी फिर गया और सारी उम्मीदें मिट गईं, क्योंकि मैं उसके दरवाजे पर पहुंच गया, जहां तख्ती लगी थी कि यही उसका मकान है। छाती ठिठकी, मन घबड़ाया। अब तक तो खोज थी, अब क्या होगा? आगे क्या करूंगा? पहले तो चढ़ गया सीढ़ियां। पुरानी धुन थी। हाथ में सांकल भी ले ली द्वार की। बजाने को ही था कि मन ने कहा, जरा सोच ले। क्या कर रहा है? परिणाम का पहले विचार कर ले। तूने द्वार खटखटाया, काश द्वार खुल गया, फिर? काश परमात्मा सामने आ गया, फिर? काश उसने आलिंगन में ले लिया, फिर? फिर किसको खोजेगा? फिर सब खतम। फिर न कोई खोज है, न कोई दौड़ है, न कोई उम्मीद है, न कोई आशा है, न दूर तारों के पास परमात्मा की झलक है। और जी ऐसा घबड़ाया... स्वभावतः घबड़ा जाएगा। तुम खुद ही सोचो, तुम होते उस जगह।
तो रवींद्रनाथ ने कहा कि मैंने चुपचाप सांकल छोड़ दी कि कहीं भूल से बज
न जाए। आहिस्ता से छोड़ दी। जूते उतार कर हाथ में ले लिए कि सीढ़ियां उतरूं, कहीं आवाज हो जाए और कहीं वह दरवाजा खोल ही दे और कहे, कहां जा रहे हो, अब आ ही जाओ! तो फिर भागते भी न बनेगा। आखिर लाज-संकोच भी कोई चीज है, शिष्टाचार भी कोई चीज है! और फिर जूते हाथ में लेकर सीढ़ियों से उतर कर जो भागा हूं सो पीछे लौट कर नहीं देखा। जितने दूर निकल सकता था निकल गया।
अब फिर जूते पहन लिए हैं। अब फिर उसको खोज रहा हूं। दूर तारों के पास उसकी झलक दिखाई पड़ती है और चित्त आह्लादित होता है। फिर उम्मीद बनने लगी है। फिर उम्मीद में नए अंकुर आने लगे हैं। फिर आशा में नए फूल खिले, फिर कल्पना के नए दीए जले, फिर सपनों और ख्वाब के नए ताने-बाने बुने, फिर मजा आने लगा है। फिर गीत गुनगुनाने लगा हूं। फिर मस्ती है चाल में। फिर खोज के इरादे हैं। कुछ करके दिखाने का रस है। हालांकि अब मुझे पता है कि उसका घर कहां है। इसलिए उस घर को छोड़ कर और सब जगह खोजता हूं।
यह गीत बड़ा अर्थपूर्ण है और बड़े अनुभव से भरा हुआ है।

तुम कहते हो अजित, "अब शिष्य की तरह नहीं, अब तो भक्त को ही स्वीकार करें।"
मेरी तरफ से तो कब से स्वीकार किया, तुम मानते ही नहीं। तुम अभी भी कहे
जा रहे हो कि नहीं, आप तो भक्त की तरह स्वीकार करें! मैं तो स्वीकार ही किए हूं। मैं तो जब भी किसी को संन्यास दे रहा हूं तो मैं तुम्हारी अंतिम संभावना पर ही ध्यान रखे हुए हूं। तुम ही छिटक-छिटक जाते हो। मैं तो जब तुम्हारे गले में संन्यास की माला डालता हूं तो परमात्मा के गले में ही डाल रहा हूं। मेरी तरफ से तो कोई कमी नहीं है। मगर तुम्हारा भी ध्यान रखना पड़ता है कि तुम अगर कहते हो मैं तो अभी विद्यार्थी हूं, तो मैं कहता हूं चलो ठीक, कुछ तो हो। कहते हो शिष्य हूं, तो मैं कहता हूं चलो यही ठीक। कुछ तो आगे बढ़े। अब तुम कहते हो, भक्त होना चाहता हूं, भक्त की तरह स्वीकार करें। और भी ठीक। रही मेरी तरफ से अगर तुम पूछो तो मैंने सदा उसी तरह स्वीकार किया है। संन्यास दे ही उसको रहा हूं जिसके भीतर, चाहे बीज में ही सही, भक्त होने की संभावना पड़ी है।
और भक्त के बाद फिर क्या शेष रह जाता है? भक्त के बाद अगला कदम भगवान
का है। जो भक्त हुआ, अब देर नहीं, जल्दी ही भगवत्ता अवतरित हो जाएगी। भक्त होने का अर्थ है घड़ा खाली है, स्वच्छ है; अब जब भी मेघ से वर्षा होगी अमृत झरेगा, घड़ा भर जाएगा। भक्त है शून्य होना, निर्मल होना, प्रेम-मग्न होना। और जो भक्त है उसके द्वार पर देर-अबेर परमात्मा दस्तक देगा ही। जब भी हमारी भक्ति परिपूर्ण होगी, हमारा शून्य पूरा होगा, बेशर्त होगा, उसी क्षण परमात्मा उतर आता है। वसंत आ जाता है, मधुमास आ जाता है--और ऐसा मधुमास जो आता है तो फिर कभी जाता नहीं!

दूसरा प्रश्नः आप सिंधियों का ऐसा मजाक क्यों उड़ा रहे हैं? क्या उनमें कोई खूबियां नहीं हैं?

मेलाराम असरानी,
साईं, बड़ी खूबियां हैं! कहावत है कि अगर सिंधी आदमी और सांप रास्ते पर मिल जाएं तो पहले सिंधी आदमी को मारना। अरे सांप का काटा तो बच जाए, सिंधी का काटा तुमने कभी सुना है बचा हो? असंभव।
बड़ी खूबियां हैं। खूबियां ही खूबियां हैं। मजाक यूं ही थोड़े उड़ा रहा हूं। खूबियां हैं, तभी उड़ा रहा हूं। जिनकी खूबियां हैं उन्हीं की चर्चा करता हूं। जिनमें कुछ भी खूबियां नहीं उनकी क्या खाक चर्चा करो! सिंधी तो पहुंचे हुए साईं हैं!
अब कल ही मैंने तुमसे कहा न--दादा चेनानी! यह उनका पुराना नाम है, अब तो
वे स्वामी अरूप कृष्ण! मैंने उनसे कहा कि साईं, कब तक पापड़ बेलोगे? पापड़ ही बेलते थे, आधुनिक ढंग के पापड़। आलू-चिप्स की फैक्ट्री चलाते थे। यह भी पक्का नहीं कि आलू भी असली कि नकली! सिंधी आलू का क्या भरोसा! मगर हिम्मतवर आदमी हैं। उन्होंने कहा, अच्छी बात। तो अब क्या करना है? मैंने कहा, अब भरम जाल फैलाओ, भरम-ज्ञान फैलाओ। भरम-ज्ञान फैलाने लगे। तो वह पापड़ बेलना बंद कर दिया उन्होंने, अब सच में ही साईं हो गए। पहले नाममात्र के साईं थे। अब तुम्हें सत्संग करना हो तो इधर-उधर जाने की कोई जरूरत नहीं, कि दादा झामनदास का सत्संग करने जा रहे हैं! एक से एक साईं यहां मौजूद हैं--सब रंग के, सब ढंग के।
स्वामी दयाल भारती हैं। उसने भी पूछा है कि आपने सब सिंधी साइयों की बात की, मुझे भूल ही गए! अरे मैं भी यहीं हूं! लिखा है, मां बित सिंधी आहियां दादा साईं। मुंखे छा भुलिजी विया तव्हां? दादा साईं मैं भी तो सिंधी हूं, क्या आप मुझे भूल गए?
अरे भूला नहीं, याद हो तुम भी। सिर्फ राह देख रहा था जब मौका आए...
(इतने में बुद्धाहाल की छत पर बंदरों के कूदने की आवाजें तथा पक्षियों का शोरगुल। सब हंसते हैं। ओशो हंसते हुए प्रवचन जारी रखते हैं।) देखा, मौका जब आता है... ।

सीता मैया ने लिखा है। लिखा है, मैंने तीन-चार दिन पहले मां से यह बात कही कि सब पर तो बोलते हैं, पर सिंधियों पर जाने क्यों नहीं बोलते! माना कि सिंधी दाल में नमक के बराबर हैं, फिर भी हैं तो। और जाने कैसे आपने सुन लिया और दूसरे ही दिन आपने सिंधियों को भी याद किया और तीन दिनों से रोज ही याद कर रहे हैं। यह सिर्फ एक दिन की बात नहीं है, मेरे साथ तो कितनी बार यह घटित हो चुका है। प्रभु, आप एक जगह बैठे-बैठे सब कुछ कैसे जान लेते हैं, सुन लेते हैं?
सीता मैया, इसीलिए तो एक जगह बैठा रहता हूं कि इधर-उधर जाओ, इस बीच चूक जाओ कुछ, न सुन पाओ। एक ही जगह बैठा रहता हूं, ताकि कुछ चूक न जाए। सुन ली मैंने तेरी पुकार। मैंने कहा कि ठीक, बात तो ठीक तू कह रही है। मगर एक बात तूने गलत लिखी है कि माना कि सिंधी दाल में नमक के बराबर हैं, फिर भी हैं तो--यह बात गलत है। सिंधी अगर दाल में नमक के बराबर भी हों तो दाल नमक के बराबर हो जाती है और सिंधी दाल के बराबर हो जाते हैं। मौका भर उन्हें मिल जाए कहीं प्रवेश का, फिर वे कब्जा पूरा करते हैं।
उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन वालों ने एक ऐसी गोली बनाई है जिससे मोटापे
की बीमारी दूर करना बाएं हाथ का खेल हो गया है। मेरी एक संन्यासिनी है-- प्रीति। तुम उसके पुराने नाम से परिचित हो--प्रीति गांगुली; अशोक कुमार की लड़की है, अभिनेत्री है। अभी यहां चार-पांच दिन से थी, कोई उसे पहचाना ही नहीं। क्योंकि पहले वह इतनी वजनी थी, इतनी मोटी थी कि हमारी जरीन है, तीन चढ़ जाएं अकेली प्रीति पर। तरु वगैरह तो पासंग में समझो। वह बिल्कुल दुबली हो गई है। हालांकि फिल्म बनाने वाले बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, क्योंकि उसको पार्ट ही मिलता था मोटेपन के कारण। वह कई फिल्मों में काम कर रही थी, अब वे फिल्म वाले बड़ी मुश्किल में पड़े हैं कि अब करें क्या। क्योंकि आधा पार्ट कर चुकी है, आधी फिल्म बन चुकी है और अब उसको फिल्म में लेने से लगता है कि वह कोई और ही है। अब तो बिल्कुल हीरोइन मालूम होती है, अब वह पुराना टुनटुन वाला रूप गया। उसने यही उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन वालों ने जो गोली बनाई, इसका उपयोग किया।
खूब विज्ञापन होता है इस गोली का। सिर्फ एक गोली के उपयोग से आधा किलो वजन प्रतिदिन कम कीजिए। यह आश्चर्यजनक दवा की गोली पांच सौ रुपए में आती है। साथ ही गोली का प्रयोग किस प्रकार करें, इसका सचित्र वर्णन करने वाली पुस्तिका मुफ्त में मिलती है। पुस्तिका में लिखा है कि गोली को सामने जमीन पर रख कर खड़े हो जाइए और झुक-झुक कर सुबह-शाम बीस-बीस बार स्पर्श करिए। दूसरी विधि हैः गोली को एक धागे से बांध कर छत से इस प्रकार लटकाइए कि वह आपके सिर से पांच फीट ऊपर रहे, उसे उचक-उचक कर छूने का दिन में दस बार प्रयास कीजिए। तीसरी विधिः ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर गोली को बाएं हाथ में रख कर एक मील तक जाइए, फिर दाहिनी मुट्ठी में बंद करके एक मील और आगे तक जाइए। फिर गोली को जेब में रख कर घर लौट आइए। इसी प्रक्रिया को शाम के वक्त भी दोहराने से दो गुना लाभ होता है। चौथी विधि है कि खाना खाने से पहले जमीन पर एक दो इंच चौड़ा और दो इंच लंबा कागज का टुकड़ा रखिए। फिर उससे दस फीट दूर खड़े होकर गोली को इस तरह उछालिए कि गोली कागज पर जाकर गिरे। यदि गोली कागज के इस तरफ रह जाए तो उस दिन उपवास करिए। यदि गोली कागज के उस पार निकल जाए तो सिर्फ एक प्लेट दलिया मात्र ही उस दिन खाइए। और यदि सौभाग्य से गोली कागज पर जाकर ही रुक जाए तो चार बार ईश्वर का स्मरण करिए और गोली को फिर से उछालिए।
और तुम कह रहे हो कि सिंधियों में क्या खूबियां हैं! अरे खूबियां ही खूबियां हैं! अब यह गोली देख रहे हो! दुनिया भर के चिकित्साशास्त्री परेशान हैं कि कोई दवा खोजें कि आदमी का मोटापा कैसे कम हो। और इन्होंने एक ऐसी गोली खोजी कि एक गोली से सारी दुनिया का मोटापा कम कर दें; एक खरीद लाओ गोली, घर भर के काम आए। सुबह बाप साध रहा है, फिर मां साध रही है, फिर बहन साध रही है, फिर चाचा-चाची, जो भी साधना हो सब साधें। एक गोली काफी है। और एक जनम में साधो, दो जनम में साधो, तीन जनम में साधो, एक गोली काफी है।
इसको कहते हैं खोज।

कल झामनदास मिलने आए थे। एकदम गमगीन सूरत, सूरत पर बिल्कुल बारह बजे, सिर झुकाए, दाढ़ी-मूंछें बढ़ाए। मैंने पूछा, झामन, क्या बात है साईं? तुम तो बिल्कुल ही बदले-बदले नजर आ रहे हो! क्या कोई मुसीबत का पहाड़ ऊपर आ गिरा? उन्होंने दार्शनिक अंदाज में कहा, मुझ अकेले पर नहीं इस सारे देश पर मुसीबत आ पड़ी है, और अभी और आने वाली है। उन्नीस सौ अस्सी का यह वर्ष देश के लिए अत्यंत खतरनाक सिद्ध हुआ है। एक के बाद एक भारत मां के सुपुत्र विदा होते जा रहे हैं। यह दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? महापुरुषों की मृत्यु हो रही है।
मैंने पूछा, साईं, जरा विस्तार से कहो। तुम्हारा तात्पर्य क्या है?
उनकी आंखों में आंसू छलक आए। रूमाल से पोंछते हुए दुखी स्वर में बोले,
यह उन्नीस सौ अस्सी का साल भूतपूर्व राष्ट्रपति वी.वी.गिरी को खा गया। संजय गांधी विमान-दुर्घटना में असमय काल-ग्रसित हुए। फिर महान गायक मोहम्मद रफी का देहावसान हुआ। और अभी दो दिन से मुझे भी कुछ सर्दी-जुकाम महसूस हो रहा है। पता नहीं ईश्वर की क्या मर्जी है!
देख रहे हो! और तुम कहते हो कि सिंधियों में खूबी क्या! अरे खूबियां ही खूबियां हैं।
झामनदास की पत्नी एक दिन उनके आफिस पहुंच गई। देखा कि आफिस की टाइपिस्ट लड़की साईं की गोद में बैठी है, और दोनों में खूब घुट-घुट कर बातचीत चल रही है। जैसे ही पत्नी को देखा, झट साईं ने उस लड़की को धकाते हुए कहा, हट, कमबख्त कहीं की! कितनी बार कहा कि यदि दफ्तर में कुर्सियों की कमी है, तो इसका यह मतलब नहीं है कि मेरी गोद में चढ़-चढ़ कर बैठो। चल उतर! यह बदतमीजी मुझे जरा भी पसंद नहीं आती।
साईं की बीबी बोली, अच्छा तो यह बात है कि आपके आफिस में कुर्सियों की कमी है!
साईं ने कहा, तुम ठीक कहती हो। मगर यह तो बताओ कि तुम इस समय अनायास यहां कैसे आ गईं!
जवाब मिला, पहले तुम यह बताओ कि तुम अभी-अभी क्या कर रहे थे! शर्म नहीं आती तुम्हें? जरा सोचो, क्या सरकार तुम्हें इसी काम के लिए पैसे देती है? साईं बोले, अरे इसमें शर्म की भला कौन-सी बात है? यह काम तो मैं मुफ्त में ही कर देता हूं।
तुम पूछ रहे हो कि "आप सिंधियों का ऐसा मजाक क्यों उड़ा रहे हैं? क्या उनमें कोई खूबियां नहीं?"
मेलाराम असरानी, खूबियां ही खूबियां हैं। इतनी खूबियां हैं कि अगर तुम कहो तो मैं उड़ाता ही रहूं उनका मजाक। मगर फिर दूसरे नाराज हो जाएंगे। यह बड़े अदभुत लोगों की जमात है! अगर मैं कुछ दिन मारवाड़ियों को भूल जाता हूं, फौरन मुझे कोई लिख देता है, मारवाड़ी ही कोई लिख देता है कि क्या बात है, मारवाड़ियों को बिल्कुल भूल गए!
यह मस्त लोगों की जमात है। सिक्खों को भूल जाता हूं, कोई सरदार जी लिख देते हैं, क्या बात है, सरदार विचित्तर सिंह का क्या हुआ? अहमक अहमदाबादी की कुछ दिन से चर्चा नहीं की, प्रश्न आ गया है। कोई गुजराती सज्जन पूछ रहे हैं कि आप अहमक अहमदाबादी की बिल्कुल बात नहीं कर रहे हैं?
उस दिन अमृत प्रिया ने प्रश्न पूछा था कि ये सत्यानंद, ये सहजानंद, ये सूत्तर-मूत्तर की ही बात करते रहते हैं! एक सज्जन को बहुत गुस्सा आ गया। उन्होंने लिखा कि ये सूत्तर के साथ मूत्तर जोड़ दिया, यह बात ठीक नहीं है। कारण उन्होंने जो बताया वह यह कि मूत्तर शब्द सुन कर मुझे मूत्तर जी भाई देसाई की याद आ गई।
अजीब मस्त लोगों की जमात है यह! यहां कोई रोते-धोते धार्मिक लोग इकट्ठे नहीं हुए हैं। अब कोई गुजराती कहे--मूत्तर जी भाई देसाई! अब वे तो बेचारे भूत-प्रेत हो गए, अब छोड़ो भी उनको, जाने भी दो! मगर मैं छोडूं भी तो छोड़ने नहीं देते। मुझे भी याद आई थी, कोई तुम्हीं को याद आई थी? अरे जब साफ सूत्तर-मूत्तर की बात हो रही है तो कैसे मूत्तर जी भाई देसाई को कोई भूल सकता है? कम से कम मैं तो नहीं भूल सकता। मगर मैं चुप्पी साध गया, संयम साध गया। हालांकि संयम में मेरा भरोसा नहीं है, मगर कभी-कभी साध जाता हूं कि

अरे जाने भी दो। भूत-प्रेत हो चुके, अब इनकी क्या चर्चा करना! मगर कोई दुष्ट गुजराती छेड़ ही दिया बात।
अब मेलाराम असरानी, खुद ही छेड़ दिए।
मेलाराम, तुम कब तक मेलाराम बने रहोगे? अरे रामजी, अब संन्यासी बनो! बहुत हो चुका मेलाराम, अब मैं तुमको शुद्ध राम बनाऊं। क्या मेलाराम? आजकल शुद्ध राम तो कहीं मिलते नहीं। यहां कई आते हैं, कोई बुलाकी राम, कोई मेलाराम, तरह-तरह के राम आते हैं! रामजी तो बिल्कुल लापता ही हो गए। तुम तो अब संन्यास ले डालो मेलाराम। शुद्ध राम का तुम्हें नाम दूंगा। अब असली में साईं होने का समय आ गया।
और सब सिंधी छिपे हुए साईं हैं। उघाड़ना है बस। जरा चादर ओढ़े बैठे हैं, चादर सरकाई कि साईं प्रकट हुए। खूबियां तो बहुत हैं। और तुम कहो तो फिर उनकी चर्चा जारी रखी जाए। जैसी तुम्हारी मर्जी। कल लिख कर भेज देना।
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
चौथा प्रवचन

संन्यास यानी नया जन्म

पहला प्रश्नः गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यव्रबीच्छ्रुतिः।।
श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेतत्
तत्संशयो नात्र ततः समस्तम्।
श्रुत्या विरोधे ने भवेत्प्रमाणं
अवेदनर्थाय विना प्रमाणम्।।
श्रुति में कहा गया है कि गुरु ही साक्षात हरि हैं, कोई अन्य नहीं।
श्रुति का कथन निस्संदेह परमार्थ रूप ही है। श्रुति का विरोधी होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है। जो अप्रमाण होगा वह अनर्थकारी होगा।
ब्रह्मविद्या उपनिषद के इस सुभाषित की व्याख्या करने की कृपा करें।

सत्यानंद, श्रुति का अर्थ होता है, जो सुना। जो सुना वह सत्य कभी नहीं होता। जो देखा वही सत्य होता है। जो जाना वही सत्य होता है। अनुभव के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है। श्रुति भी प्रमाण नहीं है।
लेकिन शास्त्र स्वयं के ही प्रचार में संलग्न रहते हैं। प्रत्येक शास्त्र भय भी देता है कि अगर मुझे न माना तो नर्क; लोभ भी देता है कि अगर मुझे माना तो स्वर्ग। और लोग इन्हीं भय और इन्हीं प्रलोभनों के बीच शास्त्रों को स्वीकार करते हैं। वह स्वीकृति वासना की स्वीकृति है। उस स्वीकृति में कोई आत्म-साक्षात का संबंध नहीं है।
यह सूत्र चाहे ब्रह्मविद्या उपनिषद का हो चाहे किसी और उपनिषद का-- मूलतः गलत है।
गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यव्रबीच्छ्रुतिः।
"श्रुति कहती है कि गुरु ही साक्षात हरि हैं, कोई अन्य नहीं।"
श्रुति लाख कहे, इससे क्या होता है? निश्चित ही श्रुति कहेगी कि गुरु
ही ब्रह्म और गुरु कहेंगे कि श्रुति ही प्रमाण। ऐसी साजिश है। श्रुति गुरुओं को कहेगी ये हरिरूप और गुरु कहेंगे कि श्रुति में जो है वही सत्य और जो श्रुति में नहीं है वह असत्य। मगर कौन-सी श्रुति? श्रुतियां तो बहुत हैं। जिन्होंने बुद्ध से सुना है वह भी श्रुति है। लेकिन बुद्ध तो कुछ और कहते हैं। कहते हैंः अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद बनो, क्योंकि कहीं और कोई रोशनी नहीं है। सिवाय तुम्हारे भीतर, सिवाय तुम्हारी आत्मा के, कहीं और प्रकाश नहीं है। बुद्ध तो कहते हैंः मेरी मत मानना। जब तक न जानो स्वयं तब तक किसी की भी न मानना। तुम ही प्रमाण हो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है। और सब प्रमाण धंधेबाजों के हाथ में पड़ जाते हैं, धोखेबाजों और बेईमानों के हाथ में पड़ जाते हैं। और सब प्रमाण शोषण का आधार बन जाते हैं। सिर्फ एक ही है उपाय कि तुम शोषण से बच सको और वह है कि तुम्हारे भीतर की ज्योति आविष्कृत हो।
तो बुद्ध ने कहा हैः मैं बुद्ध हूं, इसलिए मत मानना; मेरी बात प्रीतिकर लगती है, इसलिए मत मानना। मेरी बात शास्त्रों के अनुकूल है, इसलिए मत मानना। फिर किसलिए मानना? तब तक मानना ही नहीं जब तक तुम स्वयं इसके गवाह न हो जाओ।
यह भी श्रुति है। श्रुति का अर्थ होता है--जो सुना गया। इसलिए प्रत्येक बौद्ध शास्त्र शुरू होता है, ऐसा मैंने सुना है, इस वचन से। बुद्ध के सारे शब्द आनंद ने संगृहीत किए हैं। और आनंद बहुत ईमानदार है इस अर्थों में। ईमानदारी उसकी पहले ही वचन से शुरू हो जाती है। वह कहता है, ऐसा बुद्ध ने कहा है, यह मेरा दावा नहीं। ऐसा मैंने सुना है। उन्होंने क्या कहा था वही जानें। उन्होंने जो कहा था उसे जानने की मेरी क्या सामर्थ्य थी। वे तो बोलते थे किसी दूर स्वर्ण-शिखर से, प्रकाशोज्ज्वल गौरीशंकर से। मैं सुनता था छुपा अपनी अंधेरी गुफा में। गहन अंधकार से मैंने सुना है। उन्होंने अनंत प्रकाश से कहा है। अब प्रकाश की भाषा अंधेरे की भाषा नहीं है। प्रकाश की बात अंधेरा समझेगा तो कैसे समझेगा?

इसलिए आनंद बहुत निष्ठापूर्वक, बहुत ईमानदारी से कहता है, ऐसा मैंने सुना है। उन्होंने कहा या नहीं, वही जानें। मैंने अपने बहरेपन में ऐसा सुना। मैंने अपने अंधेपन में ऐसा सुना। ऐसा समझा। जितनी मेरी समझ थी, जितनी मेरी औकात थी, जितनी मेरी बिसात थी, उतना मैं समझ पाया। मेरी बुद्धि जितनी थी। मेरे पास ध्यान तो न था, समाधि तो न थी। मैं गवाह तो न था उनके सत्य का। मैं यह तो न कह सकता था कि हां, यह सही है क्योंकि मैंने भी ऐसा देखा है। इसलिए इतना ही कह सकता हूं कि जैसा मैंने सुना है वह संगृहीत कर देता हूं।
प्रत्येक बौद्ध शास्त्र इसी वचन से शुरू होता है--ऐसा मैंने सुना है। बुद्ध विचरण करते थे वैशाली में, ऐसा मैंने सुना उन्हें कहते। बुद्ध जंगल में ठहरे थे, ऐसा मैंने उन्हें कहते सुना। बुद्ध नदी-तट पर रुके थे, ऐसा मैंने उन्हें कहते सुना।
श्रुति, लेकिन कौन-सी श्रुति? महावीर को भी सुना है। जीसस को भी सुना
है लोगों ने। मोहम्मद को भी सुना है। जिन्होंने सुना है उन्होंने लिखा है। और सुनने वाले और बोलने वाले में बहुत फर्क है, जमीन-आसमान का फर्क है। कहां आकाश के तारे और कहां जमीन पर पड़े हुए पत्थर! आकाश के तारे बोलते हैं, जमीन पर पड़े पत्थर सुनते हैं। फिर व्याख्या होती है। फिर विवाद उठते हैं। फिर तरह-तरह की टीकाएं होती हैं, अनुवाद होते हैं, शब्दों और तर्कों का जाल फैलता है। न तो बुद्ध ने कुछ लिखा, न जीसस ने कुछ लिखा, न महावीर ने कुछ लिखा। बोले। जिन्होंने सुना उन्होंने लिखा। श्रुति का इतना ही अर्थ होता है।
शास्त्रों के लिए दो शब्दों का हम प्रयोग करते हैं--एक श्रुति और एक स्मृति। श्रुति कहते हैं उस शास्त्र को जिसे सीधा-सीधा सुना हो। बुद्ध ने कहा और आनंद ने सुना, सामने-आमने, बुद्ध के पास बैठ कर सुना--तो श्रुति। फिर आनंद ने किसी से कहा और उसने सुना, तब बात और बिगड़ गई। तब स्मृति। तब तो मात्र स्मृति रह गई, क्योंकि आनंद के पास आते तक ही वह पूर्णता न रह गई थी, वह सौंदर्य न रह गया था, वह सत्य न रह गया था। अब आनंद से जब बात और किसी के पास गई, हाथों से हाथ, हाथों से हाथ चली, तो जैसे करेंसी के नोट हाथों से चलते-चलते गंदे होते जाते हैं, ऐसे ही शब्द भी एक अंधेरे से दूसरे अंधेरे के हाथ में पड़ते हैं, एक अंधे से दूसरे अंधे के हाथ में पड़ते हैं, तो गंदे होते चले जाते हैं। उनमें धूल इकट्ठी होती जाती है। उनमें व्यर्थ का बोझ बढ़ता चला जाता है। उनमें सार तो खो जाता है, असार सघन हो जाता है। तब स्मृति। और शास्त्रों के लिए ये दो ही शब्द हैं--श्रुति और स्मृति। इन शब्दों से ही जाहिर है कि भरोसा मत कर लेना। यहां रुक मत जाना, अटक मत जाना।
यह सूत्र कहता हैः गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यव्रबीच्छ्रुतिः। ऐसा श्रुति कहती है। श्रुति में कहा गया है कि गुरु ही साक्षात हरि हैं। यह कोई श्रुतियों से समझने की बात है? यह तो किसी गुरु के प्रेम में पड़
कर जानने की बात है। यह तो मामला प्रेम का है। सहज आसिकी नाहिं! लेकिन प्रेम जुआरी, शराबी, दीवाने का काम है, दुकानदार का नहीं। दुकानदार तो श्रुतियों और स्मृतियों को लिए बैठे रहते हैं। होशियार हैं। शास्त्र क्या बिगाड़ लेंगे तुम्हारा? शास्त्र तुम्हारे हाथ में हैं, तुम शास्त्रों के हाथ में तो नहीं। यह तो थोड़े-से साहसी लोगों ने हिम्मत करके धर्म के दीए को नहीं बुझने दिया है। साहसी व्यक्ति शास्त्रों में नहीं तलाशते; वहां तो सिर्फ कूड़ा-करकट है--सदियों का कूड़ा-करकट है। साहसी व्यक्ति तो किसी जीवंत बुद्ध में खोजते हैं, किसी जीवित बुद्ध से नाता बनाते हैं। और नाता तो एक ही हो सकता है--प्रीति का, समर्पण का, समग्रता का।
श्रुति क्या कहेगी कि गुरु ही साक्षात हरि है! और श्रुति ने कहा इसलिए तुमने माना, तो क्या खाक तुम जानोगे! ऐसा तुम्हारा हृदय कहे कि गुरु ही साक्षात हरि है। श्रुति नहीं, हृदय बोले, तुम्हारे प्राणों की वीणा झंकृत हो, तुम्हारी आत्मा की बांसुरी बजे। किसी के सान्निध्य में तुम्हारे भीतर उपनिषद घटे, तो ब्रह्मविद्या उपनिषद। किताबों में क्या रखा है!

और श्रुति स्वयं कहती है--श्रुति का कथन है कि निस्संदेह श्रुति परमार्थ रूप है।
अब यह तुम देखते हो! यह मजा देखते हो! लेकिन चूंकि सदियों से सुना है, तुम्हें इस पर हंसी भी नहीं आती।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन बाजार में जाकर घोषणा कर दी--ढोल बजा कर, डुंडी पीट कर। भीड़ इकट्ठी हो गई। कहा कि सुन लो भाई, मेरी पत्नी से ज्यादा सुंदर इस पृथ्वी पर और कोई स्त्री नहीं है; न कभी थी, न कभी होगी। लोग थोड़े चौंके कि हद हो गई। मुल्ला से पूछा, तुमसे कहा किसने? क्योंकि सभी को पता है कि मुल्ला ने एक बदशक्ल स्त्री से विवाह किया है। असल में जिसको कोई पति न मिलता था वही तो इन सज्जन को पति मानने को राजी हुई। जो थक गई थी, हार गई थी... । और मुल्ला नसरुद्दीन भी भली-भांति जानता है, क्योंकि लोगों ने पहले जब उससे पूछा था कि तूने क्यों इस बदशक्ल स्त्री से शादी की, तो उसने कहा, बदशक्ल स्त्री में बड़े गुण होते हैं। एक तो यह, तुम उस पर निष्ठा रख सकते हो। कभी धोखा नहीं देगी। अरे धोखा देगी कैसे? तुम बेफिक्र रह सकते हो। तीर्थ-यात्रा पर जाओ, हाजी बनो, कोई फिक्र नहीं। तुम जब घर आओगे, पत्नी सदा निष्ठावान होगी, पतिव्रता होगी।
यह खुद ही मुल्ला लोगों से कह चुका था। मुसलमानों में रिवाज है कि जब विवाह करने के बाद पत्नी पहली दफा लाई जाए, तो वह पूछती है अपने पति से कि मैं किसके सामने अपना बुर्का उघाड़ सकती हूं और किसके सामने नहीं। मुल्ला ने कहा, बाई, मुझे छोड़ कर तू सबके समाने उघाड़। बस मुझे भर बचा। ऐसे भी मैं दिन भर आऊंगा नहीं, रात में ही आऊंगा। और बिजली मैं लगवाने वाला नहीं हूं। जब से तुझे देखा है तब से बिजली की कोई जरूरत ही नहीं घर में। मोमबत्ती से ही काम चला लेंगे। ऐसे ही मैं देर से आऊंगा। मेरे सामने भर तू बुर्का मत उघाड़ना। और जिसके सामने उघाड़ना हो, दिल खोल कर उघाड़। कोई भय मत रख।
ये सब बातें लोगों को पता थीं तो उन्होंने पूछा, मुल्ला, आज तुम्हें
हो क्या गया? डुंडी पीट रहे हो, होश में हो कि ज्यादा अफीम खा गए हो? किसने तुम्हें कहा?
मुल्ला ने कहा, अरे किसने कहा! मेरी पत्नी ने खुद कहा है। अब उसकी तो मानना ही पड़ेगी, झंझट कौन करे!
तुम्हें हंसी आती है पत्नी ने खुद कहा इस बात पर। लेकिन तुम्हें आश्चर्य नहीं होता शास्त्रों पर? शास्त्र खुद क्या कह रहे हैं?
"श्रुति का कथन निस्संदेह परमार्थ रूप है।"
श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेतत्।
कैसी जालसाजी है! श्रुति स्वयं कहती है कि श्रुति के वचन परमार्थ रूप हैं। परम अर्थ का होता है अनुभव से प्रयोजन। परमार्थ तो सिर्फ अनुभव का नाम हैः परम अर्थ को जान लेना, जीवन के परम अर्थ को पहचान लेना, स्वाद ले लेना। श्रुति में कहां से परमार्थ होगा? और श्रुति में अगर परमार्थ हो तो बहुत सस्ता हो जाए। फिर तो तोते भी रट ले सकते हैं, आसानी से रट ले सकते हैं। क्या अड़चन है?
कुरान को याद करने वाले लोग हैं जो पूरी कुरान याद किए बैठे हैं, लेकिन इससे मोहम्मद नहीं हो गए हैं और कभी नहीं हो पाएंगे। जब तक यह कुरान उनकी छाती पर सवार रहेगी, मोहम्मद न हो पाएंगे। मोहम्मद की छाती पर तो कोई किताब सवार न थी, इसलिए कुरान संभव हो पाई। बौद्धों में बौद्ध भिक्षु हैं जो धम्मपद को कंठस्थ किए हैं। इनको कभी बुद्ध समझ में न आएंगे। यह धम्मपद ही बाधा बन जाएगा।
और कितने हिंदू हैं जो रोज गीता का पाठ कर रहे हैं! और क्या खाक समझ रहे हैं! रोज गीता का पाठ करते हैं सदियों से--न हन्यते हन्यमाने शरीरे। यह आत्मा मरती नहीं, चाहे शरीर काट डाला जाए, छिन्न-भिन्न कर दिया जाए। नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकाः। न तो शस्त्रों से काटी जा सकती है आत्मा और न अग्नि में जलाई जा सकती है। इसको रट रहे हैं हजारों सालों से। और बाईस सौ साल तक गुलाम रहे। हैरानी की बात है! गीता को कंठस्थ करने वाले लोग जो जानते हैं आत्मा अमर है, इनको कोई गुलाम बना सकता है? गुलाम बनाने वाला क्या कर सकता है! बहुत से बहुत शरीर को काट डालेगा। और हमें तो पता ही

था कि शरीर के कटने से हम नहीं कटते हैं। अगर गीता यह देश जानता था तो कट जाता, मर जाता, मगर गुलाम नहीं होता।
मगर ये बातें हैं। यूं तो कांटा चुभ जाए तो तकलीफ होती है, फोड़ा हो जाए
तो तकलीफ होती है, जरा सी बीमारी आ जाए तो घबड़ाहट होती है; मौत का नाम सुनते ही हाथ-पैर कंपने लगते हैं, बुखार चढ़ आता है। और जब बुखार चढ़ आता है तो सन्निपात में वही पुरानी गीता याद है--न हन्यते हन्यमाने शरीरे। सन्निपात में बक रहे हैं, गीता दोहरा रहे हैं कि आत्मा अमर है। मगर तुम लाख दोहराओ, तुम्हारे शब्दों में ही तुम्हारे झूठ की अभिव्यक्ति हो जाती है।
सुनो अवधूत उपनिषद के ये वचन--
धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमन्जसा वेदिम्।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानंदो विभाति मे स्पष्टम्।।
धन्योऽहं धन्योऽहं दुःख सांसारिकं न विक्षेऽद्य।
धन्योऽहं धन्योऽहं स्वस्याज्ञानं पलायितं क्वापि।।
धन्योऽहं धन्योऽहं कर्तव्यं मे न विद्यते किंचत्।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य संपन्नम्।।
धन्योऽहं धन्योऽहं तृप्तेर्मे कोपमा भवेल्लोके।
धन्योऽहं धन्योऽहं धन्योधन्य पुनः पुनर्धन्यः।।
अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढ़म।
अस्य पुण्यस्य समत्तेरहो वयमहं वयम्।।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम्।
अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः।।
"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; अपने नित्य आत्मा को अनायास ही जानता हूं। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं, ब्रह्मानंद मुझे स्पष्ट प्रकाशित करता है। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; अब मैं संसार का दुख नहीं देखता हूं। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मेरा अज्ञान कभी का नष्ट हो चुका है। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मुझे कुछ भी करना नहीं है। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; जो कुछ प्राप्त करना है वह मैंने यहीं प्राप्त कर लिया है। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मेरी तृप्ति की लोक में कोई उपमा नहीं है। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मैं बारंबार धन्य हूं, धन्य हूं! अहो पुण्य! अहो पुण्य! इस पुण्य की संपत्ति फली है, दृढ़ फली है। अहो हम! अहो हम! अहो ज्ञान! अहो ज्ञान! अहो सुख! अहो शास्त्र! अहो शास्त्र! अहो गुरु! अहो गुरु!"
अब इन वचनों को जरा ध्यानपूर्वक सुनो। लगता है कोई सन्निपात में है। बुखार एक सौ सात, एक सौ आठ, एक सौ नौ डिग्री के करीब है। बस जरा ही देर और है और प्रत्येक शब्द विपरीत की घोषणा कर रहा है। इसमें क्या धन्यता है, अगर आत्मा अनायास ही जानी जाती है? आत्मा निश्चित ही अनायास जानी जाती है, बिना प्रयास के जानी जाती है, मगर फिर धन्यता का क्या सवाल है? जो चीज प्रयास करके पाई जाती है उसमें धन्यता हो सकती है। जैसे कोई चांद पर पहुंच गया, इसमें धन्यता है; कोई गौरीशंकर पर चढ़ गया, इसमें धन्यता है। लेकिन आत्मा जो कि उपलब्ध ही है, न कहीं आना है न कहीं जाना है, न कुछ करना है, जो तुम्हारे भीतर मौजूद ही है, जो तुम ही हो--इसमें धन्यता की क्या बात है? धन्यता बता रही है कि अनायास सिर्फ उधार शब्द है।
यह अवधूत उपनिषद कहता हैः "मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; अपने नित्य आत्मा को अनायास ही जानता हूं।"
नित्य आत्मा! क्या आत्मा भी अनित्य होती है, जो उसमें नित्य शब्द को जोड़ना पड़ रहा है? जैसे तुम अपनी पत्नी से कहो कि तू ही मेरी सच्ची पत्नी है, तो वह फौरन तुम्हारी गर्दन पकड़ लेगी कि तो फिर झूठी कौन है और? तो मतलब कोई और भी है, मेरे अलावा भी कोई और है? आत्मा अर्थात नित्यता। इसमें नित्य आत्मा जोड़ने की बात क्या है? नित्य आत्मा जोड़ने की बात इसलिए है कि पता तो कुछ भी नहीं है, शास्त्र कंठस्थ हो गए हैं तोतों की तरह। और यह बिल्कुल तोतों की तरह दोहराई जा रही है बात--
"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; ब्रह्मानंद मुझे स्पष्ट प्रकाशित करता है।"

तो इसमें धन्य होने की क्या बात है? ब्रह्मानंद तो सारे जगत को ही प्रकाशित कर रहा है, कोई तुम्हीं को थोड़े ही। हां, तुम्हीं को करता होता और सारे जगत को अंधेरे में रखता होता तो धन्यता की बात थी। जब सभी पर बरस रहा है और सभी के भीतर बसा है और सभी के घटों में भरा है, तो इसमें धन्यता की क्या बात है? विशिष्टता की तो कोई बात ही नहीं है।
"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; अब मैं संसार का दुख नहीं देखता हूं।"
अभी भी देखते हो। नहीं तो यह बात ही क्यों उठा रहे हो? जैसे कोई आदमी कहे कि मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मुझे भूत-प्रेत बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ते। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब हुआ भूत-प्रेत दिखाई पड़ते हैं। आदमी बड़ा अजीब है। उसके मन का विश्लेषण ठीक से करोगे तो बहुत चकित होओगे। यह किसको समझा रहा है कि मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं कि मुझे दुख बिल्कुल दिखाई ही नहीं पड़ता। जब है ही नहीं तो दिखाई कैसे पड़ेगा?
मगर है और दिखाई भी पड़ता है। यह झुठला रहा है। यह अपने को समझा रहा है
कि नहीं है, कहीं कोई दुख नहीं है। अरे संसार में आनंद ही आनंद भरा है! सब जगह परमात्मा ही परमात्मा मौजूद है! यह अपने को समझा रहा है। यह एक तरह का आत्म-सम्मोहन पैदा कर रहा है--दोहराए जाओ; दोहराए जाओ।
"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मेरा अज्ञान कभी का नष्ट हो चुका है।"
इसका अर्थ है कि कभी अज्ञान था। जिसने परमात्मा को जाना है वह यह भी जानता है कि अज्ञान कभी था ही नहीं, वह मेरी भ्रांति थी। जिसने परमात्मा को नहीं जाना है वही कह सकता है कि मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। अज्ञान तो है ही नहीं। अज्ञान तो अंधेरा जैसा है, कभी था ही नहीं। जैसे अंधेरा रोशनी का अभाव है, ऐसा अज्ञान सिर्फ ज्ञान का सोया होना है। ज्ञान जग गया और पाया कि अरे, मैं व्यर्थ ही अज्ञान की बातों में पड़ा था!
बुद्ध को जब पहली दफा बुद्धत्व की किरण उतरी तो उन्होंने कहाः मैं चकित हुआ! चकित हुआ, यह बात समझ में आती है। आश्चर्यचकित हुआ कि जो अज्ञान कभी था ही नहीं उसने मुझे कितना परेशान किया! कहां-कहां नहीं भटका! किन-किन रास्तों पर नहीं खोजा! किन-किन द्वारों पर दस्तक नहीं दी--उसके लिए, जो मेरे भीतर था!
बुद्ध ने यह नहीं कहा कि मैंने बुद्धत्व पा लिया है। बुद्ध ने यही कहा
कि मैंने इतना ही जाना कि मैं सदा से बुद्ध था। आश्चर्य होता है मुझे कि कैसे भूल गया था! यह बड़ी और बात है। और यह कहना कि "मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मेरा अज्ञान कभी का नष्ट हो चुका है। मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मुझे कुछ भी नहीं करना है।"
अभी भी कुछ करने की इच्छा है। है कोई इरादा। अभी इरादा मिटा नहीं। समझा रहा है यह आदमी, क्योंकि इसने श्रुतियां पढ़ ली होंगी।
"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; जो कुछ प्राप्त करना है वह मैंने यहीं प्राप्त कर लिया है।"
प्राप्त तो कुछ भी नहीं करना है। जब अनायास घटना घटती है तो प्राप्त क्या करना है? प्राप्तव्य क्या है? प्राप्त है ही। प्राप्त था ही। तुम विस्मृत कर बैठे थे। स्मरण कर लिया। जैसे खीसे में तो रुपए रखे थे और तुम भूल गए थे। फिर खीसे में हाथ डाला और हैरानी से पाया कि अरे मैं सोचता था कि खीसे में रुपए नहीं हैं, रुपए तो हैं! एकदम से क्या चिल्लाओगे कि मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं, कि अरे मेरे खीसे में रुपए हैं, मैंने पा लिए! उलटे तुम यही कहोगे कि बड़ी हैरानी की बात है, मैं भूल कैसे गया था! धन्य तो मैं था, लेकिन मैं भूल कैसे गया था? अब धन्य होने का क्या कहना है? सुरति आ गई, स्मृति आ गई।
"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मेरी तृप्ति की लोक में कोई उपमा नहीं है।"
अभी भी भाषा वासना की है--तृप्ति की कोई उपमा नहीं है, अद्वितीय मेरी तृप्ति है, ऐसी किसी की तृप्ति नहीं है। अभी भी वही प्रतिद्वंद्विता, वही स्पर्धा, वही दौड़, वही तुलना।
"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं; मैं बारंबार धन्य हूं!"

देखते हो, इतनी बार कह कर भी अभी चित्त को शांति नहीं मिली। कितनी बार
तो कह चुके मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं! वही-वही तो कह रहे हो। मगर नहीं, अभी भी दिल माना नहीं तो अब वे कहते हैं--
"मैं बारंबार धन्य हूं, धन्य हूं! अहो पुण्य, अहो पुण्य! इस पुण्य की संपत्ति फली है, दृढ़ फली है।"
अभी कच्चा है मन। अभी समझा रहे हैं अपने को कि बिल्कुल पक्की फल गई है,
अब कभी छूटेगी नहीं। अब तो पक ही गई, अब तो पा ही लिया। अब कभी खोऊंगा नहीं। ये सब भ्रांतियां हैं!
"अहो हम! अहो हम! अहो ज्ञान! अहो ज्ञान! अहो सुख! अहो शास्त्र! अहो शास्त्र! अहो गुरु! अहो गुरु!"
और किस चीज को सन्निपात कहोगे? यह है अवधूत उपनिषद, इसका नाम होना चाहिए, सन्निपात उपनिषद। अपने ही गुणगान से शास्त्र भरे हुए हैं। "श्रुति का कथन निस्संदेह परमार्थ रूप है। श्रुति का विरोधी होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है।"
तत्संशयो नात्र ततः समस्तम्।
इससे ज्यादा झूठी और कोई बात नहीं हो सकती। श्रुति का विरोधी होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है। श्रुति कोई प्रमाण है? प्रमाण तो अनुभव है, अनुभूति है, श्रुति नहीं। प्रमाण तो समाधि है, श्रुति नहीं। शब्द नहीं, शून्यता प्रमाण है। निर्विचार चैतन्य प्रमाण है। ध्यान प्रमाण है। लेकिन श्रुति कह रही है कि श्रुति का विरोधी होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है। और सब श्रुतियां एक-दूसरे की विरोधी हैं। किसकी मानो? किसकी सुनो?
उपनिषद कहते हैंः आत्मा है, परमात्मा है। महावीर कहते हैंः कोई परमात्मा नहीं, सिर्फ आत्मा है। और बुद्ध कहते हैंः न कोई आत्मा है न कोई परमात्मा है। किसकी मानो? सभी प्यारे लोग हैं। अगर श्रुति प्रमाण है तो कुरान की मानो कि बाइबिल की मानो कि तालमुद की मानो कि जरथुस्त्र की मानो, किसकी मानो? अगर श्रुति प्रमाण है तो तुम पागल हो जाओगे, क्योंकि श्रुतियां तो अनंत हैं। उपनिषद भी एक सौ आठ हैं। किस उपनिषद की मानोगे? उन उपनिषदों में बहुत विरोधाभास हैं; एक-दूसरे के विपरीत वचन हैं। वेद चार हैं, उनमें से किसकी मानोगे? उनमें बहुत विरोधाभास है। अगर मानने चले किसी को तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे। जानने चलो, मानने की चिंता ही छोड़ो। सत्यानंद, मैं श्रुति का पक्षपाती नहीं हूं, न स्मृति का। मैं शास्त्र-विरोधी हूं। मैं तो अनुभूति का पक्षपाती हूं। तुम्हारा अनुभव ही बस एकमात्र प्रमाण है।
और देखते हो तरकीब, यह ब्रह्मविद्या उपनिषद कहता है कि "श्रुति का विरोधी होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है। और जो अप्रमाण होगा वह अनर्थकारी होगा।"
डरवाया कि सावधान, अनर्थ में पड़ पाओगे! मुश्किल खड़ी हो जाएगी।
कल मैंने मेलाराम असरानी को कहा था कि अब कब तक मेलाराम बने रहोगे, अरे मेला में तो बहुत झमेला है, अब राम ही रह जाओ! तो उन्होंने क्या लिखा है? उन्होंने लिखाः कल आपने कहा कि मुझे मेलाराम असरानी से शुद्ध राम बनाएंगे और संन्यास के लिए आपने निमंत्रण भी दिया। मैंने बरसों पहले दादा लेखराज द्वारा स्थापित ईश्वरीय विश्वविद्यालय में ब्रह्माकुमार के रूप में दीक्षा ली थी और तब से मैं सहज राजयोग की साधना करता हूं। और अगर मैं अब आप से संन्यास लेकर यह साधना छोड़ दूं तो ब्रह्माकुमारियों के अनुसार आने वाली प्रलय में नष्ट हो जाऊंगा। आने वाले पांच-दस वर्षों में प्रलय सुनिश्चित है। अभी संगम युग चल रहा है, जिसमें जो लोग ईश्वरीय विश्वविद्यालय में दीक्षित होकर पवित्र जीवन जीएंगे उनकी आत्मा का परम ब्रह्म से संगम होगा और वे परम धाम बैकुंठ में परम पद पाएंगे। मुझे आपके विचार बहुत क्रांतिकारी लगते हैं और आप भी भगवतस्वरूप लगते हैं, लेकिन आपके संन्यासियों का जीवन मुझे पवित्र नहीं लगता है। इसलिए मैं आपसे संन्यास लेने में आश्वस्त नहीं हो सकता कि मैं आने वाली इस प्रलय से बच कर बैकुंठ में परम पद पा सकूंगा।

अब बेचारे मेलाराम असरानी कैसे लोभ में पड़े हैं! कैसा डराया उन्हें!
और मजा यह है कि हमारी मूढ़ता का कोई अंत नहीं है। यह पांच-दस वर्षों में प्रलय सुनिश्चित है, यह कम से कम बीस वर्ष तो मुझे सुनते हो गए। ये पांच-दस वर्ष आगे ही बढ़ते चले जाते हैं! तुम्हें भी सुनते हो गए होंगे। दादा लेखराज भी खतम हो गए और वे पांच-दस वर्ष खतम नहीं होते। मगर सिंधी गुरु क्या तरकीब लगा गए! दादा लेखराज सिंधियों को फंसा गए। और सिंधी हैं पक्के दुकानदार। उनको डरा गए वे कि देखो ख्याल रखना, प्रलय सुनिश्चित है, पांच-दस वर्षों में होने वाली है। क्योंकि ज्यादा देर की कहें तो सिंधी कहेगा कि अरे अभी बहुत समय है, तब तक तो कुछ और कमाई कर लूं। पांच-दस वर्ष का ही मामला है! ... घबड़ा दिया।
और यह कोई नई तरकीब नहीं है, यह बहुत पुरानी तरकीब है, बहुत पुरानी तरकीब है। पुराने से पुराने ग्रंथ में इस बात का उल्लेख है कि बस अब थोड़े ही दिन में प्रलय होने वाली है। जो ईसा के प्रथम शिष्य थे, जो उनके संवाद-वाहक बने, वे लोगों से कहते फिरते थे कि अब देर नहीं है। दो हजार साल पहले। यही बात। यही दादा लेखराज की बात कि अब ज्यादा देर नहीं है, प्रलय होने वाली है, कयामत का दिन आने वाला है। जो जीसस के साथ नहीं होंगे वे अनंत काल तक नर्कों में सड़ेंगे। अभी समय है, सावधान! जीसस के साथ हो लो। क्यों? क्योंकि कयामत के दिन, जब प्रलय होगी, तो ईश्वर जीसस को लेकर खड़ा होगा और कहेगा कि चुन लो, अपनी भेड़ें चुन लो। जो तुम्हारे मानने वाले हैं उनको बचा लो, बाकी को तो नर्क में जाना है। उस वक्त तुम बहुत मुश्किल में पड़ोगे, अगर जीसस को नहीं माना। उस वक्त जीसस अपनी भेड़ों को चुन लेंगे और अपनी भेड़ों को बचा लेंगे। और बाकी गए, गिरे अनंत नर्क में, जहां से फिर कभी कोई छुटकारा नहीं है। अनंत काल, ख्याल रखना। कोई ऐसा भी नहीं कि एक साल, दो साल, तीन साल, दस साल, छूटेंगे कभी तो छूट जाएंगे। नहीं, अनंत काल तक। फिर छुटकारा है ही नहीं।
कैसा घबड़ा दिया होगा लोगों को दो हजार साल पहले। और दो हजार साल बीत गए, कयामत अभी तक नहीं आई। और बातें वे ऐसी कर रहे थे कि बस अब आई तब आई, आई ही रखी है। अब ज्यादा देर नहीं है। और यह बहुत पुरानी तरकीब है। यह सदियों से इसका उपयोग किया जा रहा है। और फिर भी अजीब आदमी है कि इन्हीं बातों को, इन्हीं जालसाजियों को फिर स्वीकार करने को राजी हो जाता है। कैसे-कैसे... ! आदिवासियों के एक गांव में मैं ठहरा था। बस्तर में आदिवासियों को ईसाई बनाया जाता है, काफी ईसाई बना लिए गए हैं। मुझे कुछ एतराज नहीं है; क्योंकि वे हिंदू थे तो मूढ़ थे, ईसाई हैं तो मूढ़ हैं। मूढ़ता तो कुछ बदली नहीं है। मूढ़ता तो कुछ मिटती नहीं है। तो मूढ़ इस भीड़ में भेड़ों के साथ रहे कि उस भीड़ में रहे और भेड़ों के साथ रहे, क्या फर्क पड़ता है? मूढ़ता तो वही की वही है। मगर किस तरकीब से उन गरीब आदिवासियों को ईसाई बनाया जा रहा है! एक ईसाई पादरी उनको समझा रहा था। उसने एक राम की प्रतिमा बना रखी थी और जीसस की, बिल्कुल एक जैसी। और उनको समझा रहा था कि देखो, यह बाल्टी भरी रखी है, इसमें मैं दोनों को डालता हूं। तुम देख लो। जो डूब जाएगा उसके साथ रहे तो तुम भी डूबोगे। जो तैरेगा वही तुमको भी तिराएगा।
और बात बिल्कुल साफ थी। सारे आदिवासी उत्सुक होकर बैठ गए कि भई यह देखने वाली बात है, इससे सब सिद्ध ही हुआ जा रहा है। प्रमाण सामने है आंख के। दोनों मूर्तियां पादरी ने छोड़ दीं पानी में। रामजी तो एकदम डुबकी मार गए। जैसे रास्ता ही देख रहे थे कि गोता मारें! गोता मारा और निकले ही नहीं। और जीसस तैरने लगे। जीसस की मूर्ति बनाई थी लकड़ी की और राम की मूर्ति बनाई थी लोहे की। उस पर खूब... रंग एक-सा कर दिया था दोनों पर, पुताई एक-सी कर दी थी, ऊपर से एक जैसी लगती थीं।
एक शिकारी, जो बस्तर शिकार करने आया था, मेरा परिचित व्यक्ति था। मैं जिस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था वहीं वे प्रोफेसर थे। और उनका शौक एक ही था--शिकार। उसने यह हरकत देखी। वह समझ गया फौरन कि यह क्या जालसाजी है। उसने कहा कि ठहरो, इससे कुछ तय नहीं होता। क्योंकि हमारे शास्त्रों में तो अग्नि-परीक्षा लिखी है, जल-परीक्षा लिखी ही नहीं। आदिवासियों ने कहा, यह बात भी सच है। अरे सीता मैया भी जब आई थीं तो कोई जल-परीक्षा हुई थी? अरे

अग्नि-परीक्षा हुई थी! पादरी घबड़ाया कि यह बड़ा उपद्रव हो गया। यह दुष्ट कहां से आ गया और! भागने की भी कोशिश पादरी ने की, लेकिन आदिवासियों ने कहा, भैया अब ठहरो, अग्नि-परीक्षा और हो जाए। यह बेचारा ठीक ही कह रहा है, क्योंकि हमारे शास्त्रों में अग्नि-परीक्षा का उल्लेख है। सो आग जलाई गई। अब पादरी बैठा है उदास कि अब फंस गए। अब भाग भी नहीं सकते। और जीसस और रामचंद्र जी को अग्नि में उतार दिया। रामचंद्र जी तो बाहर आ गए अग्नि से, जीसस खाक हो गए। सो आदिवासियों ने कहा, भैया, अच्छा बचा लिया हमें। अगर आज अग्नि-परीक्षा न होती तो हम सब ईसाई हुए जा रहे थे।
मगर ये आदिवासियों में और मेलाराम असरानी तुम में कुछ फर्क है? तुम पढ़े-लिखे आदमी होओगे, मगर कुछ भेद है? वही बुद्धि। वही जड़बुद्धि। पांच-दस वर्ष तुम कहते हो। और तुम कह रहे हो साथ में कि मैंने वर्षों पहले दादा लेखराज द्वारा स्थापित ईश्वरीय विश्वविद्यालय में दीक्षा ली थी।
दादा लेखराज को मरे कितने साल हो गए, यह बताओ। पांच-दस साल से तो ज्यादा हो गए न। ये पांच-दस साल तो तुम खुद ही कह रहे हो कई सालों से। ये पांच-दस साल कब खतम होंगे? ये कभी खतम होने वाले नहीं हैं। मगर डर और भय। और सिंधी हो तुम, सो सिंधी को तो ये ही दो चीजें काफी प्रभावित करती हैं--एक तो डर, और डर से भी ज्यादा लोभ।
अब तुम कह रहे हो कि "ब्रह्माकुमारियों के अनुसार आने वाली प्रलय में, अगर साधना छोड़ दूंगा तो नष्ट हो जाऊंगा। आने वाले पांच-दस वर्षों में प्रलय सुनिश्चित है।"
क्या तुम खाक साधना कर रहे हो राजयोग की--सहज राजयोग की? सहज राजयोग
की साधना करो और इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातों में भरोसा करो, ये दोनों बातें साथ चल सकती हैं? सहज राजयोगी तो समाधिस्थ हो जाएगा। उसकी तो प्रलय हो गई। मन गया, प्रलय हो गई। और जहां मन गया वहीं बैकुंठ है। बैकुंठ अभी है। कोई सारा संसार मिटेगा तब मेलाराम असरानी, तुम बैकुंठ जाओगे! तुम्हारे बैकुंठ के लिए सारे संसार को मिटाओगे? जरा सोचो तो! बड़ा महंगा सौदा करवा रहे हो! मतलब जिनको अभी बैकुंठ नहीं जाना, उनको भी! अपने बाल-बच्चों से, पत्नी से ही पूछो कि पांच-दस साल में बैकुंठ चलना है? किसी को बैकुंठ नहीं जाना है। अरे मजबूरी में जाना पड़े, वह बात और है, मगर जाना कौन चाहता है? तुम भी नहीं जाना चाहते। इसीलिए तो ब्रह्माकुमारियां तारीख तय नहीं करतीं। उनसे तारीख ही तय करवा लो, एक दफा निपटारा हो जाए। पांच ही दस साल का मामला है। तारीख तय कर लो कि किस तारीख, किस महीने में, किस साल में? और ऐसे लोग मूढ़ हैं कि यह भी करवाया गया, फिर भी मूढ़ता नहीं जाती।
ईसाइयों में एक संप्रदाय हैः जिहोवा के साक्षी। इन्होंने कई दफा घोषणा कर चुके हैं ये तारीखों की तक। इन्होंने अठारह सौ अस्सी में एक जनवरी को प्रलय हो जाएगी--आज से सौ साल पहले, अभी जनवरी आती है, करीब सौ साल एक जनवरी को पूरे होंगे--एक जनवरी अठारह सौ अस्सी में महाप्रलय होने वाली है, इसकी घोषणा कर दी। और उनके मानने वालों ने देखा कि जब महाप्रलय ही होने वाली है तो लोगों ने मकान बेच दिए, जमीनें बेच दीं। अरे लोगों ने कहा, गुलछर्रे कर लो जो भी करना है, अब एक जनवरी आ ही रही है। इसके आगे तो कुछ बचना नहीं है। जिसको जो करना था उसने कर लिया। और जिहोवा के मानने वाले एक पर्वत पर इकट्ठे हुए। क्योंकि सारा जगत तो डूब जाएगा, उस पर्वत पर--पवित्र पर्वत पर--जो रहेंगे उनको परमात्मा बैकुंठ ले जाएगा।
एक तारीख भी आ गई, सुबह भी हो गई। लोग इधर-उधर देख रहे कि प्रलय कहीं दिखाई नहीं पड़ रही। लाखों लोग इकट्ठे पर्वत पर। आखिर धीरे-धीरे खुस-फुस हुई कि बात क्या है अभी तक... दोपहर भी हो गई, शाम भी होने लगी। दो तारीख भी आ गई। फिर लोगों में सनसनी हुई कि अब फंसे। सब बरबाद करके आ गए। फिर लौट आए-- फिर उसी दुनिया में, फिर कमाई-धमाई फिर शुरू कर दी।
मगर मजा यह है कि आदमी की मूढ़ता की कोई सीमा नहीं। वे ही पंडित-पुजारी
जो इनको पहाड़ ले गए थे, जिन्होंने सब इनसे दान करवा दिया था--दान क्या, खुद ही को करवा लिया था दान--इन्होंने यह भी न सोचा कि जब एक जनवरी को सब नष्ट ही होने वाला है तो ये दान किसलिए इकट्ठा कर रहे हैं? हम से तो ले रहे हैं कि एक जनवरी को सब नष्ट ही हो जाएगा, अरे अब दे ही दो। अब भगवान के नाम पर

दान कर दो, जो दान करेगा उसको अनंत गुना मिलेगा। तो ये क्या करेंगे दान लेकर? यह किसी ने भी न सोचा। और वे पंडित-पुजारी फिर समझाने लगे कि थोड़ी तारीख में हमारी भूल हो गई, फिर दस साल बाद यह होगा। फिर दस साल बाद लोग इकट्ठे हो गए। आदमी की प्रतिभा तो ऐसी क्षीण हुई जंग खा गई है।
अब तुम अगर सहज राजयोग की साधना करते हो तो यहां क्या कर रहे हो? यहां कैसे आए? अगर सहज योग से तुम्हें कुछ मिल रहा है तो यहां किसलिए आए हो? अपना बैकुंठ गंवाना है? क्योंकि अगर वहां पता भी चल गया कि तुम यहां आए थे तो कोई दादा लेखराज वगैरह साथ न दे पाएंगे। क्योंकि मैं कहूंगा, यह भेड़ मेरी है। न रही हो संन्यासी, मगर आधी मेरी है। आधी को बैकुंठ जाने दो, आधी को तो नरक ले जाऊंगा। वहां मेलाराम असरानी, आधे-आधे कटोगे। रामजी को मैं ले जाऊंगा, मेला को वहीं छोड़ जाऊंगा। वैसे तुम्हारी मर्जी। रामजी वाले हिस्से को मैं नहीं छोड़ने वाला। वह तो उस पर कब्जा मेरा है। इस दरवाजे के जो भीतर आया, एक दफा उसको मैंने पहचान लिया कि यह भेड़ अपनी है, फिर कोई दादा लेखराज वगैरह काम नहीं आने वाले। तुमसे कहे देता हूं। आधे तो फंस ही गए, अब पूरे ही फंस जाओ, अब क्या झंझट?
और तुम कहते हो कि जो ईश्वरीय विश्वविद्यालय में दीक्षित होकर पवित्र नहीं होंगे उनकी बड़ी मुश्किल होगी। जो पवित्र होंगे, उनकी आत्मा का परम ब्रह्म से संगम होगा और वे परम धाम बैकुंठ में परम पद पाएंगे।
देखते हो, परम-परम चल रहा है! धन्य ही धन्य हो रहा है! कैसा लोभ चढ़ा हुआ
है छाती पर! जरा परम ब्रह्म से संगम होगा, इतने से तृप्ति नहीं है--परम धाम! उससे भी मन राजी नहीं मानता। सिंधी मन! बैकुंठ, उससे भी राजी नहीं। फिर परम पद! तो दादा लेखराज कहां बैठेंगे? जब परम पद पर तुम बैठ जाओगे तो दादा लेखराज एक धक्का नहीं देंगे, कि क्यों रे मेलाराम असरानी, कमबख्त; मैंने ही दीक्षा दी और परम पद पर तू बैठ रहा है! बामुश्किल तो हम बैठ पाए। किसी तरह परमात्मा को सरकाया। और अब तू आ गया! अरे परम पद पर कितने आदमी चढ़ोगे? परम पद पर तो एक ही बैठ सकेगा--कि कई बैठे हैं, पूरा मेला, पूरा झमेला?
मगर सिंधी हो, तुम भी क्या करो!
दादा साईं बुधरमल को सिनेमा हाल के बाहर पेशाब करने के आरोप में पकड़
कर मजिस्ट्रेट साहब के पास पेश किया गया। मजिस्ट्रेट भी था सिंधी, पहुंचा हुआ सिंधी। साईं बुधरमल पर उसने एक सौ रुपया जुर्माना किया। बुधरमल बोले, माई-बाप, यह तो अन्याय हो जाएगा। इतनी-सी गलती के लिए इतना भारी जुर्माना! मजिस्ट्रेट बोले, बरी साईं, यह कोई ऐरे-गैरे का पेशाब थोड़े ही था, सेठ बुधरमल का पेशाब था!
यह सुनते ही सेठ बुधरमल ने जल्दी से जुर्माना भर दिया। अरे जब परम पद
का मामला आ गया, सेठ बुधरमल का पेशाब!
तुम भी कैसी बातों में पड़े हो!
जब कोई आदमी किसी स्त्री के साथ बलात्कार करता है तो साधारण भाषा में कहा जाता है कि उसने उस स्त्री की इज्जत लूट ली। मारवाड़ियों में मामला अलग ही है। यदि स्त्री के साथ कोई बलात्कार कर ले और उसके पैसे-जेवर आदि न छीने तो मारवाड़ी लोग कहते हैं कि चलो कोई बात नहीं, बलात्कार किया सो किया, अरे अपना क्या गया, कम से कम इज्जत तो नहीं लूटी! इज्जत बच गई, यही क्या कम है! सिंधी लोग और भी पहुंचे हुए हैं। एक दिन झामनदास ने आकर बताया कि कल रात एक अजनबी महिला ने उनकी इज्जत लूट ली। मैंने पूछा, झामनदास, क्या कहते? न कभी ऐसी बात कानों सुनी न आंखों देखी कि किसी स्त्री ने तुम्हारी इज्जत लूट ली! क्या कहते हो! तुम्हारा मतलब? झामनदास बोले, मैं तो उसके साथ बलात्कार करने में लगा था और उस दुष्ट ने मेरी पाकेट मार ली। हद हो गई कलियुग की भी! अब तो मनुष्य-जाति पर से मेरा बिल्कुल भरोसा उठ गया है।
अब ये मेलाराम असरानी, ये परम पद पाने के पीछे पड़े हैं! और इस डर से कि कहीं परम पद न चूक जाए, संन्यास लेने में घबड़ा रहे हैं। और भी एक डर है कि मुझे आपके विचार बहुत क्रांतिकारी लगते हैं, आप भी भगवतस्वरूप लगते हैं। यह भी डर के मारे कह रहे होंगे कि भैया कौन झंझट ले! विचार तो क्रांतिकारी लग रहे हैं, खतरनाक मालूम होते हैं, मगर मान ही लेना ठीक कि हैं भगवतस्वरूप! अरे पता नहीं आखिर में कौन जीते--दादा लेखराज जीतें... । यह

आदमी भी उपद्रवी मालूम होता है। कहीं दादा लेखराज को चारों खाने चित कर दे, फिर! तो होशियार आदमी सभी को सम्हाल कर रखता है कि आप भी भगवतस्वरूप हैं, कि अरे मौका अगर आ गया तो कह दूंगा कि याद रखना, मैंने कहा था कि आप भी भगवतस्वरूप हैं! और अगर दादा लेखराज जीतने लगे तो साफ कह दूंगा, मैंने तो पहले ही कहा था कि इनके विचार क्रांतिकारी हैं, अपने को जंचते नहीं। लेकिन कहते हैं कि "आपके संन्यासियों का जीवन मुझे पवित्र नहीं लगता है।"
अरे तुम्हें संन्यासियों के जीवन से क्या फिक्र? इनको कोई बैकुंठ थोड़े ही जाना है। ये तो यहीं बैकुंठ में हैं। तुम जब बैकुंठ जाओगे और पाओगे कि दादा लेखराज के आस-पास उर्वशी और मेनका नाच रही हैं तो तुम्हें उनका जीवन भी पवित्र नहीं लगेगा, कि अरे ये दादा लेखराज क्या कर रहे हैं! अरे साईं, यह क्या कर रहे! ये उर्वशी बाई को गोदी में बिठाए बैठे हो! यह तो कोई ब्रह्मकुमारी भी नहीं। यह कर क्या रहे हो! दादा होकर यह क्या कर रहे हो!
मेरे संन्यासी तो बैकुंठ में हैं। इनको कहीं जाना नहीं। ये तो परम पद
पर विराजमान हैं। इनको मैं कोई प्रलोभन नहीं दे रहा हूं। और इनको तो मैंने साफ कह दिया है कि अगर मेरे साथ रहे तो नरक की तैयारी रखना। करेंगे क्या खाक स्वर्ग में जाकर? धूल उड़ रही है वहां। मरे मुर्दा साधु-संत वहां पहुंच गए हैं बहुत पहले ही से। कोई धूनी रमाए बैठा है, कोई झाड़ से उलटा लटका है। जटा-जूट तो देखो उनके इतने बढ़ गए हैं कि उनको तुम खोजने जाओ तो मिलें ही न, कि साईं कहां हैं, जटा-जूट इतने बढ़ गए हैं अनंत काल में! कोई भूखा ही मर रहा है। इस सर्कस में कहां इनको मेरे संन्यासियों को ले जाना? इन सबको तो मैंने नरक ले जाने का विचार किया है। नरक में कुछ करने को है, कुछ काम है। और इतने लोग... अधिक लोग तो बेचारे नरक ही गए होंगे, उन सबका उद्धार भी तो करना है कि नहीं? शैतान को भी संन्यास देना है कि नहीं?
तो इन्हें तो कोई चिंता नहीं है। मेरे साथ जो हैं, वे मेरे साथ नरक भी जाने को राजी हैं। परम पद वगैरह की मैं कोई बात ही नहीं करता। क्योंकि मैं तो उसी को ध्यानी मानता हूं कि अगर वह नरक में भी हो तो वहां भी परम पद पर हो। नरक में भी हो तो उसके आस-पास स्वर्ग घटित हो। और तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी अगर ये स्वर्ग में भी होंगे तो इन्होंने कभी का उसको नर्क बना दिया होगा। इनकी शकलें तो देखो! इनके ढंग-ढौर तो देखो! ये जहां इकट्ठे हो जाएंगे वहीं मातम छा जाएगा। स्वर्ग में बिल्कुल मातमी हालत होगी। कोई महात्मा चरखा चला रहे हैं। अब ये मोरारजी भाई देसाई भी बैकुंठ में रहेंगे, ये जीवन-जल ही पी रहे हैं। इन सबको इनकी तपश्चर्या का फल तो मिलेगा! अरे जिंदगी भर जीवन-जल पीया तो किसलिए पीया? कायकू पीया? अमृत की आशा में पीया; कि परलोक में अमृत मिलेगा। इनको मिलेगा अमृत।
मेरे संन्यासियों को तो स्वर्ग से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि मैं कहता हूं स्वर्ग कोई भूगोल नहीं है और स्वर्ग कोई स्थान नहीं है-- चैतन्य की अवस्था है। तुम चाहो तो यहीं स्वर्ग में हो सकते हो। जब यहीं हो सकते हो तो कल पर क्यों टालना? नौ-पांच-दस साल के लिए क्यों टाल रहे हो, मेलाराम असरानी? मेरा संन्यास लो और प्रलय हुई। प्रलय का मतलब क्या होता है--तुम खतम! तुम गए, तुम मिटे, तुम समाप्त हुए। और उसी मिटने से, उसी राख से, उसी मृत्यु से, उसी सूली से एक नए जीवन का आविर्भाव होता है, एक नया अंकुरण होता है।
मैं किसी को नैतिकता नहीं सिखा रहा हूं, सिर्फ आनंद सिखा रहा हूं। मेरे लिए आनंद ही एकमात्र पवित्रता है। और इसलिए तुम्हें अड़चन लगती होगी कि आपके संन्यासियों का जीवन मुझे पवित्र नहीं लगता। तुम्हारी पवित्र की परिभाषा क्या है? तुम पवित्र से क्या अर्थ लेते हो? तुमने पवित्रता की कोई धारणा बना ली होगी। अपनी-अपनी धारणाएं हैं। उन धारणाओं के हिसाब से आदमी पवित्रता मानता है।
श्री राजशेखर नंबियार ने पूछा है, सुना है आप भोजन में शाकाहार को तरजीह देते हैं। लेकिन पुराने शास्त्र कहते हैं कि जीव ही जीव का आहार है।

और आप जानते हैं कि मछली मछली को निगलती है। क्या इस पर कुछ कहने की कृपा करेंगे?
अब इनको शाकाहार में अड़चन मालूम हो रही है! क्योंकि ये कहते हैं, "शास्त्र कहते हैं कि जीव ही जीव का आहार है।"
शास्त्र जरूर मगरमच्छों ने लिखे होंगे। छोटी मछलियों से तो पूछो कि छोटी मछलियां क्या कहती हैं! ये बड़े मच्छों ने लिखे होंगे। मगरमच्छ! ऋषि- मुनि! क्या-क्या गजब की बातें कह गए! मगर बेचारी छोटी मछली से तो पूछो। आदमी अजीब है। अगर तुम शेर को मारो तो इसको कहते हैं--शिकार, क्रीड़ा, खेल। अरे लीला कर रहे हैं! और शेर तुम्हें खा जाए तो दुर्घटना। क्यों भाई, क्या गड़बड़ हो गई? अरे जीव तो जीव का आहार है। शेरों से तो पूछो, सिंहों से पूछो। अगर जीव जीव का आहार है तो आदमी को खाने दो, मजे से खाने दो, बेचारे कोई बुरा नहीं कर रहे हैं। और अगर जीव जीव का आहार है तो आदमी आदमी को खाए, इसमें अड़चन क्या है? फिर तो जो आदमखोर हैं वे सच्चे पवित्र लोग हैं। जब जीव जीव का आहार है और मछली मछली को खा रही है, तो आदमी आदमी को खा रहा है। अरे बड़ा आदमी छोटे को खा जाए, और क्या? बूढ़ा बच्चे को खा जाए, और क्या करोगे! कि बड़ा नेता है तो चमचे को ही खा जाए। जो मिल जाए उसको खा जाए, जो जिसके कब्जे में आ जाए।
अब राजशेखर नंबियार को शाकाहार में विरोध मालूम पड़ता है। और इसमें कुछ हैरानी की बात नहीं है, क्योंकि हिंदू धर्म कोई शाकाहारी धर्म नहीं है। यह शुद्ध मांसाहारियों का धर्म है। वह तो महावीर और बुद्ध की इतनी छाप पड़ी गहरी कि ब्राह्मण संकोच से भर गए। लेकिन जहां महावीर और बुद्ध की छाप पड़ी वहीं ब्राह्मण संकोच से भरे--सिर्फ उत्तर भारत में। कश्मीरी ब्राह्मण तो मजे से मांसाहार करता है। इसलिए जवाहरलाल नेहरू को मांसाहार में कोई अड़चन न थी--कश्मीरी ब्राह्मण। शुद्ध आहार कर रहे हैं, शास्त्रीय आहार।
और देखते हो, महात्मा गांधी अहिंसा की जिंदगी भर बकवास करते रहे और जब अपना उत्तराधिकारी चुना तो जवाहरलाल को चुना। तब जरा भी ख्याल न रखा कि एक मांसाहारी को चुन रहे हैं, शुद्ध मांसाहारी को। फिर फिक्र छोड़ दी। फिर गई सब अहिंसा वगैरह, एक तरफ हटा कर रख दी। कसौटियां तो तब होती हैं जब समय आते हैं।
दक्षिण भारत के ब्राह्मण भी मांसाहारी हैं, क्योंकि महावीर और बुद्ध
की छाप वहां भी नहीं पड़ी। बंगाल के ब्राह्मण भी मांसाहारी हैं, क्योंकि वहां भी बुद्ध और महावीर की छाप नहीं पड़ी। बुद्ध और महावीर की छाप तो सिर्फ उत्तर प्रदेश पर पड़ी। तो जो उत्तर भारत है वह बुद्ध और महावीर के कारण संकोच से भर गया। उत्तर भारत का ब्राह्मण संकोच करने लगा कि अगर मैं मांसाहार करूं तो महावीर और बुद्ध की प्रतिमा और भी निखर कर प्रकट होगी। क्योंकि लोग कहेंगे कि अरे, तुम मांसाहारी, तुम्हें इतनी भी समझ नहीं? फिर बुद्ध और महावीर ही सच्चे भगवान हैं। इस बेचैनी में, इस परेशानी में उत्तर भारत के ब्राह्मण को मांसाहार छोड़ना पड़ा। परेशानी में छोड़ा है। रामकृष्ण परमहंस मछलियां खाते रहे, विवेकानंद मांसाहारी बने रहे। कोई अड़चन न थी। राजशेखर नंबियार केरल से हैं, तो केरल में तो कोई अड़चन नहीं है, बुद्ध और महावीर से बहुत दूर पड़ गया, सबसे दूर पड़ गया केरल।
मैं शाकाहार को तरजीह देता हूं, निश्चित ही तरजीह देता हूं। क्योंकि
जो शास्त्र कहते हैं कि जीव जीव का आहार है वे शास्त्र गलत लोगों ने लिखे होंगे। वे शास्त्र बेईमानों ने लिखे होंगे। वे उन्होंने लिखे होंगे जो हिंसा को तरजीह देना चाहते थे, जो मांस की लोलुपता नहीं छोड़ पाते थे। और यह सच है कि मांस स्वादिष्ट होता है, ऐसा मांसाहारियों का कहना है। श्रुति है, मैंने चखा नहीं। मगर श्रुति प्रमाण है! और श्रुति के विपरीत जो है वह तो प्रमाण है ही नहीं! ऐसा मैंने सुना। मेरे पास बहुत-से मांसाहारी हैं। मेरे पास तो नब्बे प्रतिशत मांसाहारी हैं। मेरे भोजन ही जो बनाते हैं वे भी मांसाहारी हैं।
विवेक मुझसे कहती है कि मांसाहार स्वादिष्ट होता है, लेकिन अब मैं कल्पना भी नहीं कर सकती कि कैसे इतने दिन तक मांसाहार करती रही! कभी सोचा ही नहीं, कभी विचार ही न उठा। पश्चिम में मांसाहारी घर में कोई पैदा होता

है, बचपन से ही मांसाहार शुरू कर देता है; जैसे हम शाकाहार शुरू करते हैं, वह मांसाहार शुरू करता है। सवाल ही नहीं उठता। यह तो उसे यहां आकर... अब वह कहती है कि मुझे अगर मांसाहार करना पड़े तो असंभव। वमन हो जाएगा। देखते ही से वमन हो जाएगा। क्योंकि यह बात ही सोचने जैसी नहीं है कि आदमी और जीवन को नष्ट करे, अपने स्वाद के लिए।
और अगर स्वाद की ही बात हो तो फिर बड़ी मुश्किल हो जाएगी। ईदी अमीन बच्चों का मांस खाता रहा, क्योंकि जब ईदी अमीन भागा अपनी राजधानी को छोड़ कर तो उसके फ्रीज में छोटे बच्चों का मांस पाया गया। और उसकी राजधानी में रोज बच्चे चुराए जाते थे और ईदी अमीन की पुलिस जांच-पड़ताल करती थी कि बच्चे कहां गए। और बच्चे जाते थे ईदी अमीन के फ्रीज में। तो पकड़ें उनको कैसे? पकड़े कैसे जा सकते थे? राष्ट्रपति। लेकिन ईदी अमीन ने बाद में स्वीकार किया कि कोई कुछ भी कहे, लेकिन छोटे बच्चों का मांस जितना स्वादिष्ट होता है इतनी स्वादिष्ट चीज दुनिया में कोई और होती ही नहीं। श्रुति है तो ठीक ही होगी। अनुभवी आदमी है वह, वह ठीक कह रहा है। उसको मैं गलत भी नहीं कह सकता। स्वाद के लिहाज से वह ठीक ही कह रहा होगा। स्वाद के संबंध में मुझे एतराज भी नहीं है। मगर स्वाद के लिए क्या बच्चों को काटोगे? स्वाद के लिए क्या जानवरों को काटोगे? स्वाद का कितना मूल्य है? स्वाद है ही क्या? तुम्हारी जीभ पर थोड़े-से दाने हैं जो स्वाद को अनुभव करते हैं, जरा-सी सर्जरी से उनको अलग किया जा सकता है। एक जीभ की छोटी-सी पर्त चमड़ी की अलग कर दी जाए और सब स्वाद समाप्त हो जाएगा।
दूसरे महायुद्ध में यूं हुआ कि एक आदमी के इस तरह के घाव पहुंचे युद्ध में कि उसके गले और शरीर का संबंध टूट गया, भीतर से संबंध टूट गया। तो वह भोजन न कर सके। क्योंकि जो भोजन को ले जाने वालीशृंखला है वही टूट गई। तो पहली दफे यह प्रयोग किया गया कि उसके पेट में सीधी ही आपरेशन करके एक नली जोड़ दी गई--रबर की एक नली जोड़ दी गई। वह उसी में चाय डाल दे; कोकाकोला पिला दे। उसी नली में डाल दे, वह सीधा पेट में पहुंच जाए। मगर उसे मजा न आए। क्योंकि मजा कैसे आए? कोकाकोला तो पिला दे, मगर स्वाद तो मिले नहीं। उसने डाक्टरों से कहा कि इसमें कुछ मजा ही नहीं आता। मतलब स्वाद तो मुझे मिलता ही नहीं। तब एक तरकीब खोजी गई कि पहले वह कोकाकोला मुंह में ले, थोड़ा बुलबुलाए, फिर नली में बुलक दे, तो स्वाद भी ले ले और पेट में भी चला जाए। वह यही करता रहा जिंदगी भर, जब तक जिंदा रहा। उन्नीस सौ साठ तक वह आदमी जिंदा था। युद्ध के बाद कोई पंद्रह साल जिंदा रहा। वह यही करता रहा। पहले मुंह में बुलबुलाए।
अब तुमको लगेगी बड़ी हैरानी की बात कि यह भी क्या गधा-पच्चीसी है। मगर यही तुम कर रहे हो; नली भीतर है, उसकी बाहर थी। बस इतना ही फर्क है। आइसक्रीम पहले मुंह में ले, पहले मुंह में मजा ले ले स्वाद का और फिर अपनी नली में बुलक दे।
तुम भी यही कर रहे हो; गले के नीचे उतरने के बाद स्वाद का तुम्हें कुछ पता चलता है? जरा-सी जीभ पर स्वाद है। और जीभ भी पूरी हर चीज का स्वाद नहीं लेती, जीभ के भी अलग-अलग हिस्से हैं। कोई हिस्सा कड़वेपन का स्वाद लेता है, कोई हिस्सा मीठेपन का स्वाद लेता है, कोई हिस्सा नमकीन का स्वाद लेता है। अलग-अलग हिस्से हैं। इसलिए तुमने अगर ख्याल किया हो, जब तुम कड़वी दवा लेते हो, तो तुम उसे हमेशा--जानते होओ या न जानते होओ--हमेशा जीभ के मध्य में रखते हो। और एकदम से पानी पीकर उसको गटक जाते हो, क्योंकि जीभ का आखिरी हिस्सा कड़वेपन का स्वाद लेता है; वहां अगर छू गई वह गोली तो कड़वेपन का पता चलेगा, नहीं तो पता ही नहीं चलेगा। जहर पी जाओ, पता न चलेगा।
इतने-से स्वाद के लिए जीवन को नष्ट करोगे? और शास्त्रों की सहायता तो
हर चीज में ली जा सकती है। अब पुराने शास्त्र कहते हैं कि जीव ही जीव का आधार है, वही उनका आहार है। तो ऐसे शास्त्र शास्त्र नहीं हैं। ऐसे शास्त्र बेईमानों ने लिखे हैं। ऐसे शास्त्र उन्होंने लिखे हैं जो जीव का आहार करना चाहते हैं।
अगर ईदी अमीन शास्त्र लिखें तो वे लिखेंगे छोटे बच्चों का आहार, इसके बिना तो जीवन में स्वाद ही नहीं है, आनंद ही नहीं है। अरे जब स्वाद ही नहीं

है तो क्या जीवन में आनंद? तो क्या इनकी मान कर चलोगे, छोटे बच्चों की हत्या करोगे, क्या करोगे?
मगर जैसा जीवन तुम्हें प्यारा है, और पशुओं को भी प्यारा है। न तुम चाहोगे कि तुम्हारे ऊपर कोई भेड़िया हमला कर दे और खा जाए। तो तुम भी थोड़ा जो अपने साथ नहीं चाहते हो कि हो, वह दूसरों के साथ भी न करो।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः जो तुम नहीं चाहते कि दूसरे तुम्हारे साथ करें वह तुम उनके साथ भी न करो।
बस इतनी-सी ही तो बात है शाकाहार के पीछे, इतनी ही। मगर इतनी बात जीवन में क्रांति ले आती है।
"श्रुति में कहा गया है कि गुरु ही साक्षात हरि हैं और कोई अन्य नहीं। श्रुति का कथन निस्संदेह परमार्थ रूप है। श्रुति का विरोधी होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है। जो अप्रमाण होगा वह अनर्थकारी होगा।"
सत्यानंद, श्रुति तो सिर्फ श्रुति है, उसका कोई मूल्य नहीं है। अपना अनुभव चाहिए, वही प्रमाण है। और जब परमात्मा का अनुभव हो सकता है तो क्यों उधार बातें मानो? क्या जरूरत है उधार बातें मानने की? जब तुम आंख खोल कर देख सकते हो सौंदर्य को, तो क्यों आंखें बंद करे दूसरों की बातों को सुनते रहो? यही तो सदियों से तुम कर रहे हो, इसलिए वंचित रह गए हो। इसलिए तुम्हारी संवेदनशीलता धीरे-धीरे क्षीण हो गई है, अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है परमात्मा को अनुभव करने का। पर श्रुतियों से और शास्त्रों से मुक्त होना जरूरी है।

आखिरी प्रश्नः सिंधियों के संबंध में थोड़ी और जानकारी--सिंधी जो न करें सो थोड़ा। कल प्रवचन के बाद साईं अरूप कृष्ण ने अदृश्य वेफर बांटे और सब संन्यासी खाकर गदगद हुए। वेफर खाकर मैं आफिस पहुंची तो एकदूसरे सिंधी साईं सेवकराम का पत्र मिला, जिसने आपको लिखा हैः कृपया संभोग से समाधि वी.पी.पी. द्वारा भेजें।
आप कहते हैं तो मानना पड़ेगा कि कृष्ण को कोई सिंधी बाई नहीं मिली थी।
लगता है सिंधी माइयां आपके इंतजार में थीं, अचानक कहां से प्रकट हो गई हैं, समझ में नहीं आता। आप ही समझाने की कृपा करें।
थोड़ा लिखा ज्यादा समझना।

धर्म ज्योति उर्फ पुष्पा पंजाबी, बाई, थोड़ा न भी लिखती तो बहुत समझता।
कोरा कागज भी भेजती तो बहुत समझता। अरे इतना ही तूने कष्ट किया, यह क्या कम है! साईं अरूप कृष्ण ने जब अदृश्य वेफर बांटे और संन्यासी गदगद हुए, तो तू खाली कागज भेज देती और मैं समझता और गदगद होता।
और अब जब ये साईं सेवकराम ने लिखा है कि संभोग से समाधि वी.पी.पी. द्वारा भेजें, तो भेजनी पड़ेगी। साईं अरूप कृष्ण से पूछ। अदृश्य वेफर जब बंट सकते हैं तो वी.पी.पी. से संभोग के द्वारा समाधि क्यों नहीं भेजी जा सकती? कोई तरकीब खोजनी ही पड़ेगी।
भारत की गरीब जनता के लिए यू. एस. ए. वालों ने--यू. एस. ए. वाले अर्थात उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन वाले--उन्होंने एक नए रेडियो का आविष्कार किया है, जिसकी कीमत, मात्र सौ रुपया है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे चलाने के लिए बिजली या बैटरी की जरूरत नहीं पड़ती। शायद आपको विश्वास न आए, मगर यह सौ प्रतिशत सच है। गलत सिद्ध करने वाले को दस हजार रुपए इनाम। रेडियो अगर न चले तो दोगुने दाम की वापसी की गारंटी। आज ही आर्डर कीजिए।
चंदूलाल मारवाड़ी ने देखा विज्ञापन, तत्काल एक रेडियो का आर्डर किया। खूबसूरत पैकिंग में बंद रेडियो जैसा दिखने वाला एक गत्ते का डिब्बा आया, जिसमें नीचे चार पहिए लगे थे और सामने एक डोरी बंधी थी; लिखा था कि डोर को पकड़ कर खींचिए, यदि रेडियो न चले तो दोगुने दाम वापस। बच्चा, बूढ़ा कोई भी चला सकता है। गलत सिद्ध करने वाले को दस हजार रुपए इनाम।
धर्म ज्योति, बाई, अब तू तो खुद ही सिद्ध सिंधी है, सेवकराम की भी कुछ सेवा कर। भेज! वी.पी.पी. से कोई तरकीब निकाल।

और तू कहती है कि सिंधी जो न करें सो थोड़ा। सो अब कुछ करके दिखा। अब कल
तू देख रही थी, कल क्या हुआ! कल जब मैं सिंधियों पर बोला तो दो घटनाएं घटीं, दो चमत्कार हुए। पहले तो बंदर छत पर कूदे। बंदर बड़े खुश हुए। बंदर एकदम कहने लगे--धन्योऽहं, धन्योऽहं! मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं, बारंबार धन्य हूं! बंदर अर्थात वे लोग जो अगले जन्म में सिंधी होने का विचार कर रहे हैं। गदगद हो गए।
और दूसरी घटना घटी कि कोयल जोर से चीखी। कोयल खुश नहीं हुई। कोयल एकदम नाराज हुई। कोयल वह है जो पिछले जन्म में सिंधी रह चुकी है। उसने मुझे एकदम डांटा कि चुप रहो, ऐसी बातें मत समझाओ, मैं भोग चुकी हूं। भोग कर ही मेरी यह हालत हुई है।

नी सिंधीपन घोषित करता, कहते ऐसा ज्ञानी
ज्यों ब्रजलानी, सजनानी, चेनानी, असरानी
चेनानी, असरानी, जय हो लालकृष्ण अडवानी
कुंदनानी, घनश्यानी, छुट्टानी, परदानानी
नी से बनाओ नाम साईं के, खूब करो मनमानी
जैसे पीकदानी, चूहादानी, एवं मच्छरदानी
सजनानी अर्थात स्वामी राज सत्यार्थी, जबलपुर। कुंदनानी अर्थात स्वामी शिवम भारती, जबलपुर। छुट्टानी यानी स्वामी दयाल भारती। अडवानी तो तुम जानते ही हो कि कौन। चेनानी--स्वामी अरूप कृष्ण। घनश्यानी--स्वामी आनंद सरस्वती। और परदानानी यानी सीता मैया।
दादा चूहड़मल फूहड़मल से एक सिंधी बाई ने पूछा, दादा साईं, मुझे रात में अकेलेपन से बहुत घबड़ाहट होती है, मैं क्या करूं? लगता है कि कोई मेरे पलंग के नीचे छुपा बैठा है। इससे कैसे छुटकारा हो?
दादा बोले, इसमें घबराने की क्या बात है री बाई, अरे बिजली जला ली और बिजली के जलते ही तू अकेली नहीं रह जाएगी, घबड़ाहट अपने आप मिट जाएगी।
बाई ने पूछा, बिजली के जलते ही वहां कोई और आ जाएगा क्या?
दादा बोले, लो, इतनी-सी बात समझ नहीं आती। अरे बिजली के जलते ही मैं पलंग के नीचे से निकल आऊंगा। अंधेरे में निकलते मुझे भी डर लगता है। झामनदास ने एक नई राशन की दुकान खोली। राशन की दुकान में खूब भीड़ लगी। लोग एक-दूसरे को धक्कम-धक्का कर रहे थे। एक व्यक्ति लाइन में घुस जाने की कोशिश कर रहा था। दो-तीन बार कोशिश कर चुका था। जब चौथी बार गुस्से से लाइन में घुसा तो एक पहलवान ने उसे घूंसा मारा और उठा कर बाहर फेंक दिया। वह व्यक्ति बोला, तुम मुझे नहीं जानते, छोड़ दो, मैं तो जा रहा हूं, अब मुझे नहीं घुसना।
पहलवान ने कहा, जा-जा, तू क्या कर लेगा?
तभी वह व्यक्ति गुस्से में आकर बोला, क्या कर लूंगा, अरे अब राशन की दुकान नहीं खोलूंगा। मरो, जाओ, मरो। मैं झामनदास हूं।
सिंधी जो न करें थोड़ा, तू ठीक कहती है। और जानकारी तूने खूब दी! और तू कहती है कि कृष्ण को कोई सिंधी बाई नहीं मिली। मिल जाती तो कृष्ण संन्यासी हो गए होते। अर्जुन को न समझाते कि बेटा कहां भाग रहा है, खुद ही भाग गए होते, पहले ही भाग गए होते। सिंधी बाइयां अगर न हों तो संसार में संन्यास का कोई अर्थ ही नहीं है। क्या सार? यह तो सिंधी बाइयों का ही काम है, जो उन्होंने अच्छे-अच्छों को अखाड़े से भगा दिया।
और तू कहती है, "लगता है सिंधी माइयां आपके इंतजार में थीं, अचानक कहां
से प्रकट हो गईं, समझ में नहीं आता।"
बात सच है, मेरे ही इंतजार में थीं। मुझे कोई माई, मुझे कोई साईं, कोई नहीं भगा सकता। मुझे किसी से कोई डर ही नहीं है, क्योंकि मुझे बैकुंठ जाना नहीं है। सिंधी माइयों को खुद ही मैं नरक ले जाने की तैयारी कर रहा हूं कि आओ! जैसे कृष्णा पंजाबी को कितना बुलाया दो दिन कि चल बाई, आ जा; मगर अब चुप हो गई है। आज नहीं कुछ पूछा। देखा कि यह खतरे का मामला है, इसमें उलझना ठीक नहीं। वैसे पूछ रही थी कि तटस्थ कैसे होना इत्यादि-इत्यादि, अब शांत बैठी है, चुप्पी मारे, कि अपने को प्रकट न करना ही ठीक है।

कितना ही चुप्पी मार कर बैठ, अब भाग नहीं सकती। और कहीं भी भाग जा, मैं तेरा पीछा करूंगा। मैं उनमें से नहीं हूं कि मेरा कोई माइयां पीछा करें, मैं उनका पीछा करता हूं। मुझे भ्रष्ट तो किया ही नहीं जा सकता। मैं तो भ्रष्ट जहां तक आदमी हो सकता है वहीं पहुंच ही गया, पहले ही से। जीसस का वचन मान कर चलता हूं। जीसस ने कहाः अंतिम खड़े हो जाओ। सो मैं पहले ही वहीं खड़ा हो गया। मुझे क्या कोई वहां से... वहां से आगे कोई जगह ही नहीं है। कृष्ण को जैनियों ने सातवें नरक में भेज दिया। इसीलिए भेज सके कि कृष्ण चढ़ने की कोशिश कर रहे होंगे स्वर्ग में। मैं सातवें नरक में पहले ही से अड्डा जमाए बैठा हूं। मेरा जैन भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। अब कहां भेजोगे? अब तो कोई जगह भी नहीं है।
कहते हैं कि लाओत्सू जब कहीं जाता था किसी सभा वगैरह में तो हमेशा जहां लोग जूते उतारते थे वहीं बैठता था। कई दफा उससे लोगों ने कहा, अंदर आइए, ठीक जगह से बैठिए। आप और वहां बैठें? वह कहता कि नहीं, यहीं। क्योंकि यहां से मुझे कोई हटा नहीं सकता। कोई हटाना ही नहीं चाहेगा। और कहीं बैठूं तो शायद कोई हटाने आ जाए।
जीसस ने कहाः धन्य हैं वे जो अंतिम हैं, क्योंकि अब उन्हें और हटाया नहीं जा सकता।
तो मैं तो अंतिम हूं। अब मुझे कोई हटाने का उपाय नहीं है। तो मैं किसी
से क्या डरूं? सिंधी माई मेरा क्या बिगाड़ेगी? इसलिए सिंधी माइयां प्रकट हो रही हैं। और-और प्रकट होंगी, तू देखना अभी। अभी तो निमंत्रण भेज रहा हूं, धीरे-धीरे सब माइयां यहां आएंगी। ये सब ब्रह्माकुमारियां यहां आने वाली हैं, क्योंकि पांच-सात साल में कोई प्रलय होने वाली है?
मैं कहता हूं, अभी करवा दूं प्रलय, कहां की तुम बातों में पड़े हो, पांच-सात साल! इतनी क्या प्रतीक्षा करनी? संन्यास लिया कि प्रलय हुई। संन्यास यानी मृत्यु। और संन्यास यानी नया जन्म।
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
पांचवां प्रवचन

अब प्रेम के मंदिर हों

पहला प्रश्नः प्रेम यदि मनुष्य का स्वभाव है, तो उसे सहज ही होना चाहिए। तब संत पलटू क्यों कहते हैं कि सहज आसिकी नाहिं?

प्रेमानंद, प्रेम तो निश्चित ही स्वभाव है, स्वरूप है। हम उसे लेकर ही जन्मे हैं, हम उससे ही बने हैं। हमारा रोआं-रोआं, कण-कण, श्वास-श्वास, प्रेम के अतिरिक्त और किसी चीज से अनुप्राणित नहीं है। यह सारा अस्तित्व ही प्रेम का विस्तार है--या कहो परमात्मा का, क्योंकि प्रेम और परमात्मा एक ही सत्य के दो नाम हैं।
जीसस ने कहा हैः परमात्मा प्रेम है। जब उन्होंने यह कहा, आज से दो हजार साल पहले, तब बात बड़ी क्रांति की थी, महाक्रांति की थी। जीसस के पहले किसी ने कभी यह बात कही न थी। वस्तुतः परमात्मा के संबंध में ठीक इससे विपरीत बातें बहुत बार कही गई थीं।
जीसस जिस वातावरण में पैदा हुए थे--यहूदियों के--उनकी धारणा थी कि परमात्मा बड़ा कठोर है। तालमुद में यहूदियों का परमात्मा घोषणा करता है कि मुझसे ज्यादा ईर्ष्यालु और कोई भी नहीं। जो मेरी दुश्मनी करेगा, उसे मैं कभी क्षमा न करूंगा; मैं उसे विनष्ट कर दूंगा, जड़-मूल से नष्ट कर दूंगा। तालमुद का एक दूसरा सूत्र कहता है कि परमात्मा बहुत कड़वा है, मीठा नहीं है। परमात्मा से सावधान और सम्हल कर चलना; उसके नियम बहुत कठोर हैं। और जो चूका उस पर परमात्मा भयंकर आघात करता है।
उस वातावरण में जीसस की यह घोषणा कि परमात्मा प्रेम है, महत्वपूर्ण क्रांति थी; एक पड़ाव था मनुष्य की चेतना के इतिहास में। लेकिन अब वक्त आ गया है कि बात और थोड़ी गहरी की जाए। इसलिए मैं इतना ही नहीं कहता कि परमात्मा प्रेम है; मैं तो कहता हूंः प्रेम परमात्मा है। ऊपर से देखने पर तो दोनों एक जैसी बातें लगेंगी, मगर बस ऊपर से देखने पर, भीतर आमूल भेद पड़ गया। परमात्मा प्रेम है, इसका अर्थ हुआ कि परमात्मा का प्रेम एक गुण है, और भी गुण होंगे--ज्ञान होगा, प्रकाश होगा, सृजन की शक्ति होगी, और भी अनंत गुण होंगे; उनमें प्रेम भी एक गुण है। लेकिन मैं कहता हूंः प्रेम ही परमात्मा है। परमात्मा के और कोई गुण नहीं हैं, प्रेम में सब आ गया। प्रेम के बाहर कुछ भी बचता नहीं है।
इसलिए मेरे लिए प्रेम और परमात्मा पर्यायवाची हैं। प्रेम कहो या परमात्मा कहो, कुछ भेद नहीं है। और प्रेम कहना ज्यादा उचित है, क्योंकि परमात्मा के नाम से इतनी गंदगी हो चुकी है, परमात्मा के नाम से इतनी कीचड़ मच चुकी है, इतना उपद्रव, इतना खून-खराबा हो चुका है, इतनी लाशों से पट गई है पृथ्वी कि वह नाम भी लहूलुहान है। लाख उसे धोओ तो भी उसे साफ नहीं किया जा सकता। हिंदुओं ने, मुसलमानों ने, ईसाइयों ने बहुत विकृत कर दिया उस प्यारे शब्द को। लेकिन प्रेम शब्द अभी भी अछूता है; पुरोहित के हाथ में नहीं पड़ा है। पुरोहित के हाथ में जो पड़ा, गंदा हुआ। पुरोहित ने जिसे छुआ, सोना हो तो मिट्टी हो जाता है। प्रेम शब्द अभी भी पुरोहित से बहुत दूर है; अभी भी कवियों के हाथ में है--इसलिए सुमधुर है, सुंदर है, सुस्वादु है। मैं तो पसंद करूंगा कि अब प्रेम के ही मंदिर होने चाहिए, परमात्मा के नहीं। क्योंकि परमात्मा में पहली तो झंझट यह हैः कौन-सा परमात्मा? हिंदुओं का, ईसाइयों का, मुसलमानों का, सिक्खों का, जैनों का, यहूदियों का, पारसियों का--किसका परमात्मा? फिर हिंदुओं का भी कोई एक परमात्मा है! हिंदुओं में हजार पंथ हैं। हिंदुओं के तैंतीस करोड़ देवता हैं। कौन-सा परमात्मा? किसको चढ़ाओगे अर्चना? किसके चरणों में रखोगे फूल? कहां जलाओगे धूप? किसकी उतारोगे आरती? और किसी की भी आरती उतारो, मन में यह संदेह बना ही रहेगा कि पता नहीं जिस परमात्मा की मैं आरती उतार रहा हूं वह सच भी है या झूठ? क्योंकि इतने परमात्मा हैं, किसको मानो?

मनुष्य-जाति अगर धीरे-धीरे नास्तिक होती चली गई है तो उसका बुनियादी कारण यही है। उसका बुनियादी कारण वह नहीं है जो पुरोहित और पंडे और महात्मा और तुम्हारे साधु और तुम्हारे मुनि समझाते हैं। वे समझाते हैं कि नास्तिकों के कारण पृथ्वी धर्म-विहीन हो गई है। यह तो बड़े मजे की बात हुई। नास्तिक कहां से आ गए? नास्तिकों के कारण पृथ्वी धर्म-विहीन हो गई है। और पृथ्वी धर्म-विहीन है, इसलिए नास्तिक है। कैसा गोल चक्कर बनाते हैं! नास्तिक का अर्थ ही होता हैः धर्म-विहीन। यह आया कहां से? यह किसकी करतूत है? यह किसकी साजिश है? इतने धर्म होंगे तो आदमी नास्तिक हो ही जाएगा, क्योंकि आदमी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाएगा। चुनाव करना मुश्किल हो जाएगा, असंभव हो जाएगा, भ्रम पैदा होगा, भ्रांति पैदा होगी, हजार संदेह उठेंगे। उस सारी झंझट से बचने के लिए यही उचित है कि कोई परमात्मा नहीं है। यही ज्यादा आसान है। यही ज्यादा सुलझाव का रास्ता मालूम होता है।
इसलिए मैं तो चाहूंगा कि अब प्रेम के मंदिर हों। प्रेम की एक खूबी है
कि प्रेम न हिंदू होता, न मुसलमान होता, न ईसाई होता, न जैन होता; न हिंदुस्तानी, न पाकिस्तानी, न अफगानी। प्रेम तो बस प्रेम है। प्रेम बहुत विराट है, सभी को आत्मसात कर लेता है।
प्रेमानंद, प्रेम तो निश्चित ही स्वाभाविक है। लेकिन उस स्वभाव को प्रकट न होने दिया जाए, इसलिए बहुत-सी अड़चनें खड़ी की गई हैं। प्रेम तो स्वाभाविक है, लेकिन तुम स्वाभाविक नहीं हो। तुम अस्वाभाविक हो गए हो। प्रेम तो सीधा-साफ है, लेकिन तुम इरछे-तिरछे हो। तुम आड़े-टेढ़े हो गए हो। तुम्हें आड़ा-टेढ़ा किया गया है। हर बच्चे को बिगाड़ा जा रहा है। और वे ही बिगाड़ रहे हैं जिनको हम सोचते हैं कि हमारे हितेच्छु हैं। वे ही बिगाड़ रहे हैं जिनसे आशा होनी थी कि सुधारेंगे। जैसे ही तुमने अपने बच्चे को हिंदू बनाया, बिगाड़ा; जैन बनाया, बिगाड़ा; मुसलमान बनाया, बिगाड़ा। तुमने उसके ऊपर कुछ थोप दिया। उसकी स्वतंत्रता को तुमने सम्मान न दिया। तुमने उसे स्वयं खोजने का मौका न दिया। और सत्य तो स्वयं खोजो तो ही मिलता है, दूसरे के दिए नहीं मिलता। दूसरे तो जो भी देंगे वह असत्य ही होगा।
सत्य के संबंध में यह बुनियादी बात कभी न भूलनाः जो जानता है वह भी सत्य नहीं दे सकता। क्योंकि सत्य देने में ही झूठ हो जाता है। एक हाथ से दूसरे हाथ में गया कि व्यर्थ हुआ। जिसने जाना था उसके हाथ में हीरा था और जो नहीं जानता उसके हाथ में पड़ते ही पत्थर हो जाता है। सत्य कोई ऐसी चीज नहीं जिसका हस्तांतरण हो सके। तो सत्य तो कोई किसी को दे नहीं सकता, लेकिन झूठे विश्वास दिए जा सकते हैं।
सत्य विश्वास नहीं है, अनुभव है। सब विश्वास झूठे होते हैं। सब विश्वास अंधे होते हैं। और क्या है तुम्हारे जीवन का आधार? सिवाय विश्वासों के और कुछ भी नहीं। तुम्हारी बुनियाद के पत्थर क्या हैं? सिवाय विश्वास। कोई ईश्वर को मान रहा है, कोई स्वर्ग को मान रहा है, कोई नर्क को मान रहा है, कोई पाप-पुण्य के सिद्धांत को मान रहा है, कोई पुनर्जन्म को मान रहा है, कोई एक ही जीवन को मान रहा है। तुम्हारे पास कोई भी प्रमाण नहीं किसी बात का। लेकिन तुम माने चले जाते हो, खोजते नहीं। खोज के लिए सबसे बड़ी रुकावट हैः विश्वासी मन। और आश्चर्य तो यह है कि यही समझाया गया है कि विश्वासी मन ही धार्मिक है। और मैं तुमसे कहता हूं कि विश्वासी मन अधार्मिक है। फिर चाहे वह विश्वास नास्तिकता का हो, चाहे आस्तिकता का, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। विश्वास जहर है।
मानना मत, अगर जानना हो। जानने के लिए इतनी हिम्मत चाहिए--न मानने की हिम्मत। खाली रहने की हिम्मत। अपने को विश्वास के कचरे से नहीं भरेंगे, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। जीवन छिने तो छिन जाए, मगर अपनी आत्मा न बेचेंगे।
मगर छोटे-छोटे बच्चे इतने असहाय होते हैं कि उनके पास कोई उपाय नहीं होता। उन्हें तो मां-बाप के सहारे ही जीना होता है। जो मां-बाप बताएंगे वही करना होगा। करना ही होगा, क्योंकि मां-बाप के सिवाय उनकी कोई सुरक्षा नहीं है। मां-बाप जिस मंदिर में भेजेंगे वहां जाना होगा; जिस मूर्ति के सामने झुकाएंगे, झुकना होगा; जिस शास्त्र को रटवाएंगे, रटना होगा; जिस

महात्मा के चरणों में सिर झुकवाएंगे, झुकाना होगा। फिर धीरे-धीरे यह आदत का हिस्सा हो जाता है। युवा होते-होते बच्चा भूल ही जाता है कि मैं उन मंदिरों में झुक रहा हूं जो मैंने स्वयं नहीं चुने; जहां मैं अपनी आकांक्षा से, अभीप्सा से नहीं गया था। मैं उन मंदिरों में झुक रहा हूं जिन्होंने मुझे खींचा नहीं; मैं उन शास्त्रों को पढ़ रहा हूं जिन्हें दूसरों ने मुझे पकड़ा दिया है; मैं उधार जी रहा हूं। और यह उधार जीवन ही अस्वाभाविक जीवन है।
प्रेम तो स्वाभाविक है, प्रेमानंद। मगर तुम स्वाभाविक नहीं हो। तुम बिगाड़े गए हो, विकृत किए गए हो। तुम्हारे ऊपर बहुत-बहुत पर्दे डाले गए हैं। तुम्हारी आंखों पर बहुत धूल जमाई गई है। तुम्हारे दर्पण को स्वच्छ नहीं रहने दिया गया है। उस पर बहुत लिखावटें कर दी गई हैं। फिर इतने से ही आश्वस्त नहीं हो गया है समाज। समाज ने तुम्हें घृणा भी सिखाई है--विधायक रूप से घृणा सिखाई है। समाज ने पूरा उपाय किया है कि तुम्हारे जीवन से कहीं से भी प्रेम का झरना न फूट सके; सब द्वार-दरवाजे, संधें बंद कर दी हैं; सब तरफ चट्टानें अटका दी हैं। हरेक को घृणा का पाठ पढ़ाया जा रहा है और ऐसे ढंग से पढ़ाया जाता है कि लगता है प्रेम का पाठ है।
बच्चों को कहा जाता हैः यह तुम्हारी मातृभूमि है, इसे प्रेम करो। यूं
तो बात प्रेम की कही जा रही है, मगर बड़ी जालसाजी की है। राष्ट्र को प्रेम करो। धर्म को प्रेम करो। शास्त्र को प्रेम करो। अपनी परंपरा को प्रेम करो। अपनी जाति को, अपने गौरव को, अपने पुरखों को, इनको प्रेम करो। लेकिन इस सबके पीछे घृणा छिपी है। अपने पुरखों को प्रेम करो, मतलब दूसरों के पुरखों को क्या करोगे? अपने देश को प्रेम करो तो दूसरे देशों को क्या करोगे? अपनी जाति को प्रेम करो तो दूसरी जातियों को क्या करोगे? अपने धर्म को प्रेम करो तो फिर दूसरे धर्मों के साथ क्या संबंध होगा तुम्हारा? घृणा ही बची फिर तुम्हारे पास। सबके लिए घृणा बची। तुम्हारे प्रेम को खूब संकुचित कर दिया गया।
और प्रेम के साथ एक कठिनाई हैः संकुचित होते ही मर जाता है। विराट होते ही जीता है। जितना विराट हो उतना ही सप्राण होता है। जितना संकीर्ण हो उतना ही मर जाता है। प्रेम को आकाश चाहिए--खुला आकाश, तारों से भरा आकाश! इससे कम में काम नहीं चलेगा। इससे कम में राजी मत होना, नहीं तो प्रेम मर जाएगा, सिकुड़ जाएगा। और तुम्हारे प्रेम को मार डाला गया है। और इस जालसाजी से मारा गया है, ऐसी साजिश है कि तुम पकड़ भी नहीं पाते, क्योंकि प्रेम के नाम पर ही सारी बात चल रही है। कौन कहेगा इसको बुरा कि भारत देश को प्रेम करो? लेकिन भारत देश के प्रेम में फिर पाकिस्तान के साथ घृणा आ गई, फिर चीन के साथ घृणा आ गई, फिर अमरीका और जर्मनी और जापान के साथ घृणा आ गई। प्रेम संकुचित हो गया। और जब प्रेम संकुचित होना शुरू होता है, मरना शुरू होता है, तो मरता ही चला जाता है।
जीवन का और भी एक नियम ख्याल रखनाः जीवन गति है। अगर फैलो तो फैलता चला जाता है, अगर सिकुड़ो तो सिकुड़ता चला जाता है। रुकाव नहीं है जिंदगी में। ठहराव नहीं है जिंदगी में।
बहुत बड़े वैज्ञानिक एडिंग्टन ने कहा है कि विज्ञान की जीवन भर की खोज
के बाद मैं एक नतीजे पर पहुंचा हूं कि भाषा में कुछ शब्द हैं जिनका यथार्थ से कोई संबंध नहीं। उन्हीं एक शब्दों में रेस्ट, ठहराव शब्द है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है, यह शब्द झूठा है। बच्चा जवान हो रहा है, जवान बूढ़ा हो रहा है। हमारी भाषा में संज्ञाएं बहुत हैं; नहीं होनी चाहिए, क्रियाएं ही होनी चाहिए। क्योंकि जीवन क्रिया है, संज्ञा नहीं।
जब तुम कहते हो वृक्ष है, तो तुम गलत बात कहते हो। वृक्ष हो रहा है। वृक्ष क्रिया है, संज्ञा नहीं। क्योंकि ठहरा नहीं है। जितनी देर में तुम बोले, कुछ सूखे पत्ते गिर गए, हवा का एक झोंका गुजर गया। कुछ नए अंकुर फूट गए। वसंत की लहर आ गई, कोई कली खिल गई, फूल बन गई। कोई फूल बिखरने लगा, एक पंखुड़ी टूटी और जमीन में मिल गई। वृक्ष हो रहा है, गतिमान है। जैसे नदी बह रही है। तुम भी हो रहे हो, प्रतिपल हो रहे हो। एक क्षण को भी कोई ठहराव नहीं है। जो आगे न बढ़ेगा उसे पीछे हटना पड़ेगा।

इसलिए ख्याल रखना, यह तो भूल कर भी मत सोचना कि अगर आगे न बढ़े तो कोई हर्ज नहीं, अपनी जगह पर अड़े रहेंगे। ऐसा होता ही नहीं। नियम नहीं है। ऐसा जीवन का धर्म नहीं है। आगे न बढ़े तो पीछे हटोगे। अगर पीछे हटने से बचना हो तो आगे बढ़ो। चरैवेति! चरैवेति! चले चलो, चले चलो। रुको मत। रुके कि मरे। रुके कि सड़े।
तो जो चीज सिकुड़ती है, फिर सिकुड़ने लगती है, और सिकुड़ने लगती है। तुमने अगर कहा कि मैं भारत को प्रेम करता हूं तो कितनी देर भारत को प्रेम करोगे? वह सिकुड़ने लगेगा। फिर भारत में भी सवाल उठेगा कि पंजाबी हो कि गुजराती हो कि मराठी हो कि हिंदी हो कि तमिल हो कि तेलगू हो कि बंगाली हो-- सिकुड़ा। फिर महाराष्ट्र में भी रुकेगा थोड़े ही, सिकुड़ेगा--ब्राह्मण हो कि शूद्र हो। और सिकुड़ा। फिर ब्राह्मण में भी देशस्थ हो कि कोकणस्थ। और सिकुड़ा। सिकुड़ता ही जाएगा। एक दफे सिकुड़ने की प्रक्रिया तुमने शुरू कर दी तो रुकने वाली नहीं है। और आखिर में तुम पाओगे सिकुड़ते-सिकुड़ते-सिकुड़ते सिर्फ तुम्हारा अहंकार ही बचा। और अहंकार प्रेम का दुश्मन है।
अहंकार जहर है प्रेम के लिए। और हमारा तथाकथित सारा प्रेम अहंकार पर
ही आ जाता है। भारत को प्रेम करोगे तो इसमें हिंदू को प्रेम करोगे कि मुसलमान को कि ईसाई को कि पारसी को, जैन को, किसको प्रेम करोगे? अगर जैन हो तो जैन को प्रेम करोगे, हिंदू को कैसे करोगे! जैन शास्त्र कहते हैं, सावधान! दूसरों के शास्त्र कुशास्त्र हैं। अब कुशास्त्र को तो कैसे प्रेम करोगे? दूसरों के देव कुदेव हैं। तो कुदेवों को तो कैसे प्रेम करोगे? और दूसरों के गुरु कुगुरु हैं। तो कुगुरुओं को तो कैसे प्रेम करोगे?
मगर बात वहीं थोड़े ही रुकेगी। फिर जैनों में भी श्वेतांबर हैं और दिगंबर हैं। फिर श्वेतांबर में भी तेरापंथी हैं और स्थानकवासी हैं और पता नहीं और कितने-कितने गच्छ और गच्छों में भी छोटे गच्छ... । टूटती ही जाती है बात, बिखरती ही जाती है बात और हर तरफ से बिखर कर आखिर में अहंकार पर आ जाती है। बस आखिर में तुम्हीं बचते हो--अपने को प्रेम करो। और अपने को प्रेम बुरा नहीं है, अगर विराट के प्रेम का हिस्सा हो। लेकिन अपने को प्रेम अगर विराट के प्रेम के विपरीत हो तो मृत्यु से भी बदतर है, क्योंकि तुम जीते-जी मर गए।
प्रेमानंद, तुम पूछोगे, लेकिन क्यों समाज इस तरह प्रेम को मार डालता है? क्यों? आखिर समाज का क्या स्वार्थ है? प्रेम जैसी सुंदर, प्रेम जैसी महिमापूर्ण वस्तु को क्यों समाज काट डालता है? और हर तरह से काटता है। हम बाल-विवाह कर देते थे--सिर्फ इसीलिए कि अगर युवक और युवतियां जवान हो गए तो कहीं प्रेम में न पड़ जाएं। खतरा है। इसके पहले कि प्रेम में पड़ें, उनका विवाह कर दो। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। पहले से ही बांध दो, स्वतंत्र रखो ही मत, क्योंकि स्वतंत्रता में खतरा है। क्या खतरा था?
खतरा यह था कि प्रेम न हिंदू को पहचानता, न मुसलमान को, न जैन को, न बौद्ध को, न पारसी को, न सिक्ख को। जैन लड़का हिंदू लड़की के प्रेम में पड़ सकता है। चमार का लड़का ब्राह्मण की लड़की के प्रेम में पड़ सकता है। बौद्ध की लड़की सिक्ख के प्रेम में पड़ सकती है। ईसाई की लड़की मुसलमान के प्रेम में पड़ सकती है। फिर करोगे क्या? फिर बांधना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए पहले से ही इंतजाम कर लो। अगर बांधना हो तो गंगोत्री पर ही गंगा को बांध लो; वहां छोटी-सी धार है, गोमुख में से निकलती है। एक लुटिया में ही भरी जा सकती है। कोई बड़ी गागर की भी जरूरत नहीं, वहीं रोक दो। अगर गंगासागर में पहुंच कर रोकना चाहा, फिर तुम्हारे वश के बाहर मामला है। फिर बात इतनी बड़ी हो जाएगी। इसलिए हम शुरू से ही बीज ही नष्ट करने लगते हैं।
मगर क्यों? आखिर क्या हित है? प्रेम को नष्ट करने में क्या हित है?
हित हैं। न्यस्त स्वार्थों के हित हैं। सत्ताधिकारियों के हित हैं। सत्ताधिकारी, फिर चाहे राजनेता हों और चाहे धर्मगुरु हों, उनके हित में यही है कि प्रेम को नष्ट कर दो। प्रेम के नष्ट होते और बहुत चीजें नष्ट हो जाती हैं। प्रेम इतनी बड़ी घटना है कि अगर उसको हमने किसी तरह रुकावट डाल दी तो प्रतिभा ही नष्ट हो जाती है। जिस व्यक्ति के जीवन में प्रेम श्वास नहीं लेता उस जीवन में प्रतिभा नहीं होती, बुद्धि नहीं होती। वह आदमी

बुद्धू हो जाता है। अरे जो अपने प्रेम को भी न बचा सका, अब और क्या बचाएगा? और समाज चाहता है कि तुममें प्रतिभा न हो, क्योंकि प्रतिभा खतरनाक है, क्रांतिकारी है। प्रतिभा से बगावत पैदा होती है, विद्रोह पैदा होता है। जहां प्रतिभा है वहां अंधानुकरण नहीं हो सकता। प्रतिभाशाली व्यक्ति हां कहेगा तभी जब पाएगा कि बात हां कहने योग्य है, अन्यथा नहीं कहेगा, इनकार करेगा।
प्रतिभा में विद्रोह छिपा है। और समाज के स्वार्थ तुम्हारे भीतर से विद्रोह को बिल्कुल बुझा देना चाहते हैं, चिनगारी भी नहीं छोड़ना चाहते, ताकि तुम्हें गुलाम बनाया जा सके। राजनेता में और धर्मगुरु में पुरानी साजिश है, पुराना समझौता है, पुराना जोड़-तोड़ है, पुराना गठबंधन है। उन्होंने बांट रखा है आदमी को कि तुम बाहर सम्हाल लो, हम भीतर सम्हाल लेंगे। हमें भीतर हुकूमत करने दो, तुम बाहर हुकूमत करो।
अगर मनुष्य में प्रतिभा हो तुम सोचते हो ये बुद्धू, जो राजनेता बन कर बैठ जाते हैं, ये बैठ सकेंगे राजनेता बन कर? असंभव। अगर मनुष्य में प्रतिभा हो तो जिनको तुम राजधानियों में इकट्ठा किए हो, इनको तुम पागलखानों में बंद करोगे। ये तुम्हारे राष्ट्रपति और ये तुम्हारे प्रधानमंत्री और ये तुम्हारे राजनेता किसी भी हालत में सत्ता में नहीं हो सकते। प्रतिभा इनको बरदाश्त नहीं करेगी। इनकी हजार तरह की मूढ़ताएं न सहेगी। इनकी बुद्धूपन की बातें बरदाश्त न करेगी। इनके थोथे वायदे, अब कब तक तुम धोखा खाओगे।
मगर तुम धोखे पर धोखा खाए चले जाते हो। प्रतिभा ही नहीं है। देखने- सोचने की समझ ही नहीं है। तो राजनेता के हित में है कि लोगों में प्रतिभा न हो। बस इतनी बुद्धि रहे कि दफ्तर का काम कर लें, फाइल को निपटा दें, रेलगाड़ी चला लें, तांगा चला लें, रिक्शा खींच लें। इतनी प्रतिभा रह जाए बस कि उनकी उपयोगिता बनी रहे, समाज उनका उपयोग कर सके--दुकान चला लें, हिसाब-किताब लगा लें। बस कामचलाऊ प्रतियोगिता की जो दुनिया है वहां वे कुशल सिद्ध हों, इतनी प्रतिभा काफी है। इतनी प्रतिभा तो न्यूनतम प्रतिभा से ही पूरी हो जाती है। तुम्हारे जीवन का शिखर कभी छुआ ही नहीं जाता। तुम्हारे भीतर जो तलवार है उस पर धार कभी रखी ही नहीं जाती, उस पर जंग चढ़ाई जाती है। और धर्मगुरु के भी हित में यही है। अन्यथा तुम सोचो, तुम किन बुद्धुओं
के पीछे चलते हो! और क्या-क्या बुद्धूपन के काम करते हो!
कल राजकोट से किसी संन्यासी ने मुझे, अभी-अभी दिगंबर धर्मगुरुओं में बड़े धर्मगुरु कानजी स्वामी चल बसे, तो उनकी तस्वीर भेजी है। अखबार में छपी है। वे मर गए, शिष्यगण उनके शरीर को जबरदस्ती पद्मासन में बिठलाने की कोशिश कर रहे हैं। मरे-मराए आदमी को पद्मासन में बिठाल रहे हैं। जरूरत पड़ी होगी तो टांग तोड़ दी होगी, हाथ तोड़ दिया होगा, गर्दन मरोड़ दी होगी। आठ-दस आदमियों का चित्र है, उनको जबरदस्ती ठोंक-पीट कर पद्मासन लगा रहे हैं, क्योंकि बिना पद्मासन में मरेंगे तो मोक्ष कैसे जाएंगे! वे चले ही गए जहां भी जाना हो, अब तो कोई भी नहीं है वहां। उनको मरे दो दिन हो चुके, अड़तालीस घंटे में तो वे कहां के कहां पहुंच गए होंगे! सातवें नरक को छू लिया होगा। उनको पद्मासन में बिठाया जा रहा है। और मैं देख कर हैरान हुआ कि नंग-धड़ंग। जिंदगी भर तो वे वस्त्र पहने रहे, लेकिन दिगंबर की आकांक्षा होती है कि उसका गुरु मोक्ष जाए। और मोक्ष सिर्फ नंगे होओ तो ही जा सकते हो। कपड़े पहने आशा मत रखना कि मोक्ष चले जाओगे। चले भी गए तो दरवाजे पर ही उतार लेंगे वे कि भैया कपड़े यहीं छोड़ो। और बड़े मजे की बात है कि दिगंबर जैन सिवाय कपड़ा बेचने के और कोई काम नहीं करते। इनका काम ही कपड़ा बाजार, कपड़ा मार्केट! वहीं दिगंबर अड्डा जमाए हुए हैं। कपड़ा बेचते हैं और कपड़े को मोक्ष जाने नहीं देंगे।
मेरे एक प्रियजन हैं, संबंधी हैं। उनकी दुकान का नामः दिगंबर क्लाथ स्टोर। मैंने उनसे कहा, कुछ तो लाज-संकोच करो। इसका नाम बदलो।
वे कहने लगे, इसमें क्या खराबी है?

मैंने कहा कि तुम दिगंबर का अर्थ समझते हो? इसको शुद्ध भाषा में लिखो
तब तुमको खराबी समझ में आएगी--नंगों की कपड़ों की दुकान। यह दिगंबर शब्द धोखा दे रहा है तुम्हें।
बोले कि यह बात तो सच है, मगर हमारे बाप-दादों के समय से यह दुकान चली आ रही है। और किसी ने कभी यह न सोचा। कहने लगे कि मेरी उम्र भी पैंसठ साल हो गई; जब मैं पंद्रह साल का था तब से दुकान पर बैठा हूं। पचास साल! हर साल इस तख्ती को रंगते हैं, दीवाली पर साफ-सुथरा करते हैं। कभी सोची ही नहीं यह बात। तुम्हारी भी खोपड़ी बड़ी उलटी है, वे मुझसे कहने लगे। तुम भीतर आए, पहले ही तुम्हें यह दिखाई पड़ गया। बात तो सच्ची है, कहने लगे। पर उन्होंने कहा, और भी सब दिगंबर यही काम करते हैं, चाहे दुकान का नाम कुछ भी हो, कपड़ा ही बेचते हैं।
मगर मोक्ष अगर जाना हो तो कपड़ा पहने नहीं जा सकते। तो मर गए बेचारे कानजी स्वामी। जिंदगी भर तो न कर पाए कपड़ा उतारने का काम, मगर अब मर कर शिष्यों ने करवा दिया। कपड़े उतार दिए। और फिर मरना भी क्या ऐसे-वैसे, पद्मासन में मरना! सो मुर्दे को पद्मासन लगवा रहे हैं; जबरदस्ती लगवा रहे हैं। और अब डर भी क्या है, अगर दो-चार पसलियां भी टूट जाएं तो क्या हर्जा है! अब यूं भी आग में चढ़ाना है। पद्मासन लगवा कर, नंगा करके अर्थी पर चढ़ा दिया, पहुंचा दिया मोक्ष!
बुद्धुओं की जमात है। मगर यह उन्हीं ने समझाया है। जो ये शिष्य कर रहे हैं, ये बेचारे अपनी बुद्धि से नहीं कर रहे हैं। यह उन्हीं ने समझाया है। वे ही जिंदगी भर यह समझाते रहे। उनके ही समझाने का यह परिणाम है कि शिष्यगण यह व्यवहार उनके साथ कर रहे हैं।
धर्मगुरु किस-किस तरह की मूढ़ताओं में लोगों को बांधे हैं! यह संभव तभी
हो सकता है जब तुम्हारे भीतर से प्रतिभा को बिल्कुल ही खतम कर दिया जाए। और प्रेम क्या मर जाता है, आत्मा ही मर जाती है। फिर तुम्हारे पास प्रेम के नाम से जो बचता है वह केवल निपट वासना है--शारीरिक वासना। और शारीरिक वासना जब प्रेम का पर्याय बन जाए तो स्वभावतः तुमको खुद ही लगने लगता है कि प्रेम यानी ग्लानि की बात, बुरी बात, पाप।
प्रेम बहुत कुछ है। जैसे आदमी शरीर ही नहीं है, मन भी है; मन ही नहीं है, आत्मा भी है; आत्मा ही नहीं है, परमात्मा भी है--ऐसे ही प्रेम भी शरीर ही नहीं है। वासना प्रेम का शरीर है। काव्य प्रेम का मन है। प्रार्थना प्रेम की आत्मा है। और परमात्मा का अनुभव प्रेम की पराकाष्ठा है। प्रेम के सोपान हैं। मगर जब सब सोपान तोड़ दिए तो फिर एक ही बचा।
अब तुम मजा देखो। यही धर्मगुरु प्रेम की ऊंचाइयों को तोड़ देते हैं, संभावनाओं को नष्ट कर देते हैं, फूल खिलने नहीं देते और फिर कहते हैं--है क्या, जड़ें ही जड़ें हैं! अंकुर निकलने नहीं देते और फिर जड़ें उठा-उठा कर बताते हैं कि देखो कितनी कुरूप और भद्दी! जड़ें तो कुरूप और भद्दी होती ही हैं। फिर जड़ों को घुमा-घुमा कर लोगों को समझाते हैं कि देखो, यह है प्रेम। प्रेम पाप हो जाता है फिर। प्रेम, जो कि परमात्मा हो सकता था, वह पाप हो कर समाप्त हो जाता है। और जिस जीवन में प्रेम पाप हो गया वहां उदासी छा जाएगी। फिर जो प्रेम की बात करेगा, वह पाप का प्रचार कर रहा है ऐसा प्रतीत होगा। क्योंकि तुम्हारी भाषा में प्रेम का एक ही अर्थ हो जाएगाः वासना, कामना।
प्रेमानंद, इसीलिए पलटू को कहना पड़ाः सहज आसिकी नाहिं। प्रेम आसान नहीं है, क्योंकि लोगों ने दीवारें खड़ी कर दी हैं, पत्थर अटका दिए हैं, चट्टानें अड़ा दी हैं। फिर या तो क्षुद्र प्रेम रह जाता है। बच्चे पैदा करो, वही प्रेम का कुल मात्र, कुल गणित रह जाता है। और स्वभावतः उससे कोई कैसे राजी हो सकता है? तो फिर साधु-संन्यासियों की बातें ठीक मालूम होने लगती हैं कि ठीक ही तो कहते हैं कि अरे रखा क्या है प्रेम में, जंजाल है! और या फिर कवियों के हाथ में रह जाता है प्रेम। वे बेचारे कल्पना का जाल बुनते रहते हैं। अनुभव तो उन्हें कुछ होता नहीं। अनुभव करने का तो यहां उपाय नहीं छोड़ा गया है।

दश्ते-तनहाई में ऐ जाने-जहां लर्जा हैं तेरी आवाज के साए, तिरे ओंठों के सराब दश्ते-तनहाई में दूरी के खस-ओ-खाक तले खिल रहे हैं तिरे पहलू के समन और गुलाब उठ रही है कहीं कुरबत से तिरी सांस की आंच अपनी खुश्बू में सुलगती हुई मद्धम-मद्धम दूर उफक पार, चमकती हुई कतरा-कतरा
गिर रही है तिरी दिलदार नजर की शबनम
इस कदर प्यार से, ऐ जाने-जहां रक्खा है
दिल के रुख्सार पे इस वक्त तिरी याद ने हाथ
यूं गुमां होता है, गरचे है अभी सुब्हे-फिराक
ढल गया हिज्र का दिन, आ भी गई वस्ल की रात

बस कल्पनाएं ही हाथ में रह जाती हैं।
दश्ते-तनहाई में ऐ जाने-जहां लर्जा हैं
इस एकांत रूपी जंगल में, ओ मेरी प्रेमिका! मरीचिकाएं, कल्पनाएं कंपाएमान हो रही हैं।
दश्ते-तनहाई में ऐ जाने-जहां लर्जा हैं
तेरी आवाज के साए, तिरे ओंठों के सराब
दश्ते-तनहाई में दूरी के खस-ओ-खाक तले
बड़ी दूरी है और जंगल का भटकाव है। और कूड़ा-करकट, घास और मिट्टी के नीचे...
खिल रहे हैं तिरे पहलू के समन और गुलाब
बस कल्पना ही रह जाती है।
उठ रही है कहीं कुरबत से तिरी सांस की आंच
अपनी खुश्बू में सुलगती हुई मद्धम-मद्धमदूर उफक पार...
क्षितिज के पार!
... चमकती हुई कतरा-कतरागिर रही है तिरी दिलदार नजर की शबनम सपने संजोओ, सपने बसाओ।
दूर उफक पार, चमकती हुई कतरा-कतरा
गिर रही है तिरी दिलदार नजर की शबनम
इस कदर प्यार से, ऐ जाने-जहां रक्खा है
सुनना--
इस कदर प्यार से, ऐ जाने-जहां रक्खा है
दिल के रुख्सार पे इस वक्त तिरी याद ने हाथ
खुद प्रेयसी ने हाथ नहीं रखा है, प्रेयसी की याद ने हाथ रखा है।
इस कदर प्यार से ऐ जाने-जहां रक्खा है दिल के रुख्सार पर...
दिल के कपोल पर।
... इस वक्त तिरी याद ने हाथ
तेरी स्मृति ने। यूं गुमां होता है--ऐसा वहम होता है, ऐसा भासता है।
यूं गुमां होता है, गरचे है अभी सुब्हे-फिराक
अभी विरह की सुबह ही चल रही है। अभी कुछ मिलन नहीं हुआ। अभी यात्रा का पहला पड़ाव भी नहीं आया। अभी यात्रा चल ही रही है।
यूं गुमां होता है, गरचे है अभी सुब्हे-फिराकढल गया हिज्र का दिन...
मगर ऐसा वहम हो रहा है। ऐसा आभास हो रहा है कि वियोग का दिन ढल गया।
... आ भी गई वस्ल की रात
मिलन की रात आ भी गई। बस सब कल्पनाओं का जाल।
दो परिणाम हुए हैं प्रेम के दमन केः सामान्य आदमी के जीवन में प्रेम केवल शुद्ध शारीरिक वासना होकर रह गया है; और जिनके पास काव्य की क्षमता है, उनके पास प्रेम कल्पना होकर रह गया है।

तेरे ओंठों के फूलों की चाहत में हम
दार की खुश्क टहनी पे वारे गए

तेरे हाथों की शमओं की हसरत में हम नीम-तारीक राहों में मारे गए सूलियों पर हमारे लबों से परे तेरे ओंठों की लाली लपकती रही तेरी जुल्फों की मस्ती बरसती रही तेरे हाथों की चांदी दमकती रही जब घुली तेरी राहों में शामे-सितम हम चले आए, लाए जहां तक कदम
लब पे हर्फे-गजल दिल में कंदीले-गम
अपना गम था गवाही तिरे हुस्न की
देख काइम रहे इस गवाही पे हम
हम जो तारीक राहों में मारे गए
तेरे ओंठों के फूलों की चाहत में हम
दार की खुश्क टहनी पे वारे गए
सूलियां लग जाती हैं जो प्रेम के रास्ते पर चलता है उसको। तेरे ओंठों के फूलों की चाहत में हम
दार की खुश्क टहनी पे वारे गए
तेरे हाथों की शमओं की हसरत में हम
नीम-तारीक राहों में मारे गए
आधे अंधेरे से भरे हुए रास्तों पर हमारी गर्दनें कट गई हैं। सूलियों पर हमारे लबों से परे
हम सूलियों पर लटके रहे और हमारे ओंठों से बहुत दूर--
तेरे होंठों की लाली लपकती रही
तेरी जुल्फों की मस्ती बरसती रही
तेरे हाथों की चांदी दमकती रही
जब घुली तेरी राहों में शामे-सितम
हम चले आए, लाए जहां तक कदम
लब पे हर्फे-गजल...
ओंठों पर तो कविता रही।
लब पे हर्फे-गजल दिल में कंदीले-गम
लेकिन दिल में तो दुख की मशाल जलती रही।
लब पे हर्फे-गजल दिल में कंदीले-गम
अपना गम था गवाही तेरे हुस्न की
हमारा जो दुख है वही तेरे सौंदर्य की एकमात्र गवाही है।
अपना गम था गवाही तेरे हुस्न की
देख काइम रहे इस गवाही पे हमहम जो तारीक राहों में मारे गए
प्रेम के रास्ते पर जो चलता है वह तो बुरी तरह मारा जाता है। प्रेम की बात ही पाप हो गई है। इसलिए प्रेमानंद, पलटू ठीक कहते हैंः सहज आसिकी नाहिं। मरने की तैयारी चाहिए। और नहीं तो फिर कल्पनाओं का जाल है--बैठे रहो, कविताएं करते रहो। और आज नहीं कल थक जाओगे; थक जाओगे, फिर रोओगे।

फिर कोई आया दिले-जार! नहीं, कोई नहीं
राहरौ होगा, कहीं और चला जाएगा
ढल चुकी रात बिखरने लगा तारों का गुबार
लड़खड़ाने लगे ऐवानों में ख्वाबीदा चिराग
सो गई रास्ता तक-तक के हर इक राहगुजार
अजनबी खाक ने धुंदला दिए कदमों के सुराग
गुल करो शमएं, बढ़ा दो मय-ओ-मीना-ओ-अयाग
अपने बेख्वाब किवाड़ों को मुकफ्फल कर लो
अब यहां कोई नहीं, कोई नहीं आएगा
फिर जल्दी ही सब कल्पनाएं थक जाती हैं। जल्दी ही पता चलता है कि जिंदगी बीत गई, कविताएं ही करते रहे।
गुल करो शमएं...

तो बुझा दो ये शमएं। बुझा दो ये दीए।
गुल करो शमएं, बढ़ा दो मय-ओ-मीना-ओ-अयाग
और अब तो शराब बढ़ा दो, कि पी लें, बेहोश हो जाएं, भूल जाएं।
गुल करो शमएं, बढ़ा दो मय-ओ-मीना-ओ-अयाग
अपने बेख्वाब किवाड़ों को मुकफ्फल कर लो
और बंद कर लो अपने दरवाजों को। बहुत खुला रखा, बहुत राह देखी।
अपने बेख्वाब किवाड़ों को मुकफ्फल कर लो
अब यहां कोई नहीं, कोई नहीं आएगा
यूं जिंदगी रीत जाती है--कुछ लोगों की छुद्र वासना में और कुछ लोगों
की ऊंची-ऊंची कल्पनाओं में, मगर हाथ किसी के कुछ भी लगता नहीं है। इतनी बाधाएं खड़ी की हैं समाज ने, व्यवस्था ने कि अगर तुम ध्यान का बल न संजो पाओ अपने में, तो निकल न पाओगे इन जंजीरों से। यह कारागृह तोड़ा न जा सकेगा। ये बेड़ियां तुम्हें बांधे ही रहेंगी। ये बेड़ियां तब से तुम्हारे पैरों में पड़ जाती हैं जब तुम झूले में थे और तब तक नहीं छूटतीं जब तक तुम कब्र में नहीं उतर जाते। झूले से लेकर कब्र तक बस बेड़ियों की खनखनाहट है। चाहो तो तुम इसे संगीत कहो; जंजीरों की झनझनाहट है, चाहो तो तुम इसे पायलों की झनकार कहो। समझा लो अपने मन को। मगर कैदियों की तरह तुम जीते हो और कैदियों की तरह मर जाते हो।
और चूंकि मैं चाहता हूं कि तुम स्वतंत्र होकर जीओ--वही मेरे संन्यास
का अर्थ है--तो देखते हो मुझे कितनी गालियां पड़ रही हैं!
मेरा कसूर क्या है? सिर्फ इतना कि मैं प्रेम को सम्मान देता हूं। सिर्फ यही मेरा कसूर है, यही मेरा पाप है कि मैं कहता हूं प्रेम में परमात्मा को पाने की क्षमता छिपी है; इसे रोको मत। यह झरना अगर बह सके तो सागर तक पहुंच सकता है।

आ कि बाबस्ता हैं उस हुस्न की यादें तुझ से
जिसने इस दिल को परीखाना बना रक्खा था
जिसकी उल्फत में भुला रक्खी थी दुनिया हमने
दहर को दहर का अफसाना बना रक्खा था
आश्ना हैं तेरे कदमों से वो राहें जिन पर
उसकी मदहोश जवानी ने इनायत की है
कारवां गुजरे हैं जिन से उसी रानाई के जिसकी इन आंखों ने बेसूद इबादत की है
तुझसे खेली हैं वो महबूब हवाएं जिनमें,
उसके मलबूस की अफसुर्दा महक बाकी है
तुझ पे भी बरसा है उस बाम से महताब का नूर जिसमें बीती हुई रातों की कसक बाकी है
तूने देखी है वो पेशानी, वो रुख्सार,
वो ओंठ जिंदगी जिनके तसव्वुर में लुटा दी हमने तुझ पे उट्ठी हैं वो खोई हुई साहिर आंखें
तुझ को मालूम है क्यों उम्र गंवा दी हमने
हम पे मुश्तरका हैं एहसान गमे-उल्फत के
इतने एहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं
हमने इस इश्क में क्या खोया है क्या सीखा है जुज तिरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं आजिजी सीखी, गरीबों की हिमायत सीखीयास-ओ-हिरमान के, दुख-दर्द के माने सीखे जेरदस्तों के मुसाइब को समझाना सीखा
सर्द आहों के, रुखे-जर्द के माने सीखे
जब कहीं बैठ के रोते हैं वो बेकस जिनके अश्क आंखों में बिलखते हुए सो जाते हैं नातुवानों के निवालों पे झपटते हैं उकाब बाजू तो ले हुए मंडराते हुए आते हैं

जब कभी बिकता है बाजार में मजदूर का गोश्त
शाहराहों पे गरीबों का लहू बहता है
या कोई तोंद का बढ़ता हुआ सैलाब लिएफा
कामस्तों को डुबोने के लिए कहता है
आग-सी सीने में रह-रह के उबलती है, न पूछ
अपने दिल पे मुझे काबू ही नहीं रहता है
कवि लिखते रहे इंकलाब की बातें भी, बगावत के गीत भी। मगर कवियों से कहीं बगावत हो सकती है! गीत ही रच सकते हैं, गीत ही गुनगुना सकते हैं। उनके गीत बांझ हैं। उनके गीत नपुंसक हैं। सिवाय ध्यान के न कभी कोई क्रांति हुई है न हो सकती है। ध्यान का अर्थ हैः हटा दो सारी अड़चनें, जो दूसरों ने तुम पर थोप दी हैं; हटा दो सारे विचार और पक्षपात--जाति के, समाज के, देश के, धर्म के, मजहब के, फिरकापरस्ती के, मतवादों के, सिद्धांतों के, शास्त्रों के। हटा दो सारे पत्थर और सारी चट्टानें और बह जाने दो प्रेम के झरने को। साहस चाहिए, क्योंकि तुम्हें भीड़ के विपरीत जाना होगा। इसलिए पलटू कहते हैं, प्रेमानंदः सहज आसिकी नाहिं। बड़ी हिम्मत जुटानी होगी। हो सकता है सूली दे समाज; आखिर जीसस को दी। हो सकता है गर्दन काट दे; आखिर मंसूर और सरमद की काटी! हो सकता है जहर पिलाए; आखिर सुकरात को, मीरा को पिलाया!
मगर प्रेम के लिए सब कुर्बान करने जैसा है।
और प्रेम को विराट करना है। वह व्यक्तियों पर केंद्रित हो जाए तो वासना हो जाता है। वह फैलता चला जाए--वृक्षों पर फैले, पहाड़ों पर फैले, तारों पर फैले, फैलता चला जाए। धीरे-धीरे प्रेम रिश्ता-नाता न रह जाए, बल्कि तुम्हारा गुण हो जाए। और अंततः गुण भी न रह जाए, तुम्हारी सत्ता हो जाए। तुम प्रेमपूर्ण हो जाओ पहले और फिर प्रेम ही हो जाओ। जिस दिन तुम प्रेम हो जाओगे उसी दिन परमात्मा का अनुभव है।

दूसरा प्रश्नः आपने प्रीति, जरीन और तरु के मोटापे का जिक्र किया। आप मुझे क्यों भूल गए?

शश्शो, अभी तुझे बहुत आगे जाना है। कहां जरीन और कहां तू! जरीन को रखो
एक तराजू के पलड़े पर और तुझे रखो दूसरे पर, तो कम से कम तीन शश्शो चढ़ाना पड़े। अभी तू बहुत दूर है। मगर कोशिश करती रह। सहज राजयोग साध। सहज राजयोग यानी कुछ न करना, पलंग पर पड़े रहना। तेरा समय भी आएगा, तेरा जिक्र भी करेंगे।

ढाई मन से कम नहीं, तौल सके तो तौल,
किसी-किसी के भाग्य में लिखी ठोस फुटबॉल।
लिखी ठोस फुटबॉल, न करती घर का धंधा,
आठ बज गए किंतु पलंग पर पड़ा पुलंदा।
कहं काका कविराय, खाय वह ठूसमठूंसा,
यदि ऊपर गिर पड़े, बना दे पति का भूसा।
चरैवेति, चरैवेति! अभी तू चली चल, बढ़ी चल।
एक मोटा आदमी डाक्टर के पास गया और बोला कि डाक्टर साहब, जब मैं रात को सोता हूं तो मेरा मुंह खुला रह जाता है इसका कुछ इलाज करिए।
डाक्टर ने उसके शरीर पर निगाह डाल कर कहा, चिंता की कोई बात नहीं।
आपके मुंह की चमड़ी थोड़ी छोटी पड़ गई है और मुंह काफी मोटा हो चुका है, तो जब आप आंख बंद करते हैं तो स्वभावतः आपका मुंह खुल ही जाएगा। अरे भई एक ही चीज बंद कर सकते हो, चमड़ी छोटी पड़ गई है। आंख बंद की तो मुंह खुला, मुंह बंद करो तो आंख खुल जाएगी।
अभी शशि, तू बहुत दूर। अभी काफी सोपान चढ़ने हैं।
पांच वर्षीय मोटूराम ने, जिनका वजन पैंसठ किलो था, एक दिन अपनी मां से कहा, मम्मी-मम्मी, आपने एक दिन कहा था कि मुझे अजायबघर घुमाने ले जाएंगी।
बताइए न कब ले जाएंगी? मां ने कहा, अभी समय नहीं आया बेटा, बेटा थोड़ी देर और प्रतीक्षा करो, वक्त आने पर अजायबघर वाले आकर तुम्हें स्वयं ले जाएंगे।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि सिंधी और सांप रास्ते में मिल जाएं तो पहले सिंधी को मारो। सांप का काटा बच सकता है, सिंधी का काटा नहीं। यह बात आंशिक सच हो सकती है, पर पूरी सच नहीं। सभी सिंधी तो ऐसे नहीं होते। सिंधियों में भी सिद्ध पुरुष होते हैं। आप सिंधियों का इतना मजाक तो न उड़ाएं।

मेलाराम असरानी, तुम समझे ही नहीं। तुम बात ही चूक गए। न समझ कर तुमने सिद्ध ही कर दिया कि पक्के सिंधी हो। क्या कहते हो कि यह बात आंशिक सच है? अरे यह पूरी-पूरी सच है, सौ प्रतिशत सच है। और तुम क्या सिंधी होकर बेशर्मी की बात कहते हो कि सभी सिंधी ऐसे नहीं होते, सिंधियों में भी सिद्ध पुरुष होते हैं। कभी नहीं, सभी सिंधी सिद्ध पुरुष हैं! कुछ तो संकोच करो, कुछ तो लाज रखो! और इसीलिए तो कहावत है कि सिद्ध का काटा नहीं बचता। तुम समझे ही नहीं बात को।
अब जैसे मैं किसी को काटूं, बचेगा? कभी नहीं बच सकता। जिन्होंने कहावत रची बड़ी सोच कर रची। फिर सुनो कहावत कोः सिंधी और सांप रास्ते में मिल जाएं तो पहले सिंधी को मारो। सांप का काटा बच सकता है, सिंधी का काटा नहीं। इसको यूं पढ़ो कि सिद्ध और सांप रास्ते में मिल जाएं तो पहले सिद्ध को मारो, क्योंकि सांप का काटा बच सकता है, सिद्ध का काटा नहीं। यह तो सिंधियों की गौरव-गरिमा के लिए सूत्र बताया। यह तो किसी के लिए नहीं कहा गया ऐसा सूत्र जैसा सिंधियों के लिए कहा गया है।
पुराने शास्त्र कहते हैंः आचार्यो मृत्युः। वही है आचार्य, जिसके पास जाकर मृत्यु घटित हो जाए। गुरु उसको ही कहते हैं जिसके पास शिष्य मर जाए। और सिंधी तो गुरु नहीं--गुरु घंटाल! अरे पास जाने की जरूरत नहीं, दूर से ही देख ले सिंधी कि खात्मा।
मगर तुम समझे नहीं। तुम उन थोड़े-से सिंधियों में से हो जो सिद्ध नहीं हैं। बात बिल्कुल उलटी है। थोड़े-से सिंधी मुश्किल से... यानी मुझे तो कभी- कभी मुश्किल से एकाध-दो सिंधी मिले जो सिद्ध नहीं थे, नहीं तो सभी सिद्ध पुरुष। तुम भी उनमें से एक हो मेलाराम असरानी, जो सिद्ध नहीं हो। और जब सिद्ध नहीं तो क्या खाक सिंधी! अरे सिंध में ही पैदा हो गए, इससे कोई सिंधी हो जाओगे क्या? सिंधी होने के लिए बड़ी तपश्चर्या करनी पड़ती है। पिछले जन्मों में जो ऋषि-मुनि रह चुके हैं... देखा नहीं आए थे ऋषि-मुनि दो दिन पहले, जब वे एकदम छप्पर पर उछल-कूद करने लगे थे। वे कौन थे? हनुमान के रूप में कौन आए थे? ये ही अगले जनम में सिंधी होंगे। मगर तुम चूक गए।
रेलगाड़ी के प्रथम श्रेणी के कूपे में सिर्फ दो व्यक्ति बैठे थे--एक युवक और एक सिंधी बाई। युवक च्युंगम चबा रहा था और खामोश था। थोड़ी देर की खामोशी के बाद सिंधी बाई उसके पास आकर बैठी और बोली, आप बहुत अच्छे हैं, बहुत प्यारे हैं। इतनी देर से आप मुझसे बातें कर रहे हैं, लेकिन आपको एक बात बता दूं कि मैं पूरी तरह बहरी हूं।
मेलाराम असरानी, मैं तो च्युंगम चबा रहा हूं और तुम कुछ का कुछ समझ रहे हो।
चंदूलाल ने सेठ बुधरमल से कहा, यार मेरी पत्नी सारा दिन मुझे हुक्म ही देती रहती है। कभी झाडू लगाने को कहती है, कभी बरतन साफ करने को, कभी खाना बनाने को। क्या तुम्हारी पत्नी भी ऐसा करती है?
सेठ बुधरमल बोले, नहीं यार, कभी नहीं। मैं तो सुबह उठ कर चाय और नाश्ता तैयार करके अपनी पत्नी को हुक्म देता हूं--उठो मेम साहब, चाय और नाश्ता तैयार है!
सेठ बुधरमल ने अपने बेटे से पूछा, क्यों रे हरामजादे, तू यह मुर्गा कहां से लाया?
बेटा थोड़ा डरा, क्योंकि और भी चार आदमी बैठे थे। मगर बाप ऐसा तमतमाया
था कि बेटे ने कहा कि अब आपसे क्या छुपाना, चुराया है। बुधरमल विजयी मुस्कान से पास खड़े लोगों से बोले, देखा तुमने, अरे है तो बेटा मेरा! चुरा सकता है, मगर झूठ नहीं बोल सकता।

अब इनको तुम सिद्ध पुरुष न कहोगे तो क्या कहोगे?
एक बार सेठ बुधरमल का छोटा लड़का नंगा ही कक्षा में पहुंच गया। शिक्षक बहुत नाराज हुए। कहे कि जाओ, चड्डी पहन कर आओ। और अपने साथ में पिताजी को भी लेकर आना। यह क्या हरकत है?
बच्चा कुछ देर बाद चड्डी पहन कर स्कूल पहुंचता है। शिक्षक कहते हैं, पिताजी को लेकर क्यों नहीं आए? जाओ पिताजी को लेकर आओ।
बच्चे ने एक-दो बार कहा कि पिताजी नहीं आ सकते।
शिक्षक ने कहा, क्यों नहीं आ सकते?
बच्चा बोला, क्योंकि घर में चड्डी एक है और वह मैं पहन कर आ गया हूं। क्यों नहीं आ सकते--बार-बार वही बात पूछे चले जा रहे हो!
और तुम कहते हो, कुछ सिंधी गड़बड़ होते हैं, सब नहीं। अरे सब सिद्ध पुरुष हैं! गड़बड़ तो शायद कोई एकाध कभी मिल जाए तो बात अलग।
टॉनिक बनाने वाली यू.एस.ए. अर्थात उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन की एक कंपनी ने एक अदभुत टॉनिक बनाया। एक सिंधी महिला ने उस टॉनिक का उपयोग किया और प्रशंसापत्र इन शब्दों में लिखाः आपका टॉनिक निस्संदेह बहुत कारगर है। पहले मैं अपने बच्चे तक को भी पीट नहीं सकती थी। टॉनिक लेने के बाद अब घर के सारे काम-काज कर लेती हूं और बाद में पति को भी एक-दो हाथ जमा देती हूं। धन्यवाद आपका!
झामनदास अपने गुरु साईं चूहड़मल फूहड़मल से आठ साल बाद मिले तो गुरुदेव
ने पूछा, क्यों भाई, जब पिछली बार मिले थे तो आपकी शादी को हुए चार साल हो चुके थे, पर कोई बच्चा वगैरह नहीं हुआ था। अब क्या हाल हैं? कोई बच्चा वगैरह हुआ या नहीं?
झामनदास खुश होते हुए बोले, हां-हां, ऊपर वाले की कृपा से कुछ महीनों पूर्व ही एक बेटा हुआ है।
साईं चूहड़मल फूहड़मल बड़े आश्चर्य से बोले, तो क्या आप अपने ऊपर नए किराएदार रख लिए हैं?
और तुम कह रहे हो कि कुछ! मैं मानूं तो कैसे मानूं?
अखबारों में एक विज्ञापन निकला हैः कीटनाशक--यू.एस.ए. के वैज्ञानिकों
की महान खोज; कीमत मात्र पचास रुपए; डाक खर्च अलग। हजारों प्रयोगों के निष्कर्षों से अब यह भलीभांति सिद्ध हो चुका है कि हमारे प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों द्वारा खोजा गया यह कीटनाशक सभी प्रकार के कीड़ों-मकोड़ों, मक्खी-मच्छरों, इल्लियों, पतंगों, काकरोचों और जुएं, खटमलों आदि का सौ प्रतिशत विनाश करने में सक्षम है। डीड़ी.टी. वगैरह के प्रयोग से मनुष्यों एवं पालतू पशुओं के स्वास्थ्य में हानि पहुंचने की संभावना रहती है, किंतु इसका प्रयोग पूर्णतः हानिरहित है। दूसरी खूबी यह है कि अवधि के पश्चात कीड़े-मकोड़े रासायनिक कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधी, रेसिस्टेंट हो जाते हैं, लेकिन हमारे इस कीटनाशक से इसकी कोई संभावना ही नहीं है। यह आज जितना असरदार है, आज से सौ साल बाद भी उतना ही असरदार रहेगा इसकी गारंटी है। इस सबके बावजूद भी अगर आप यह सिद्ध कर दें कि इससे कीट-पतंग नहीं मरते तो हम आपको एक लाख रुपयों का नगद पुरस्कार देंगे।
ढब्बू जी ने मच्छरों से परेशान होकर इस कीटनाशक को बुलाया। मैंने दूसरे दिन उनसे पूछा कि कहिए ढब्बू जी, कैसा रहा उसका असर? उन्होंने आग-बबूला होकर बताया कि इन हरामजादों ने एक छोटी-सी चिमटी भेजी है और एक छोटी- सी हथौड़ी। साथ में एक सूचना है कि किसी भी कीड़े को इस चिमटी से पकड़ कर हथौड़ी से मारिए। यदि न मरे तो लौटती डाक से तुरंत हमें सूचित करिए। हम आपको फौरन एक लाख रुपयों का नगद पुरस्कार भेज देंगे।
सिंधी तो सभी सिद्ध पुरुष हैं।
सेठ बुधरमल पानी के जहाज से यात्रा पर निकले हुए थे। एक दिन बड़ा जोर
का तूफान आया, जहाज डगमगाने लगा। यात्री बड़े घबड़ाए और तभी डैक पर पहुंच गए। वहां जाकर देखा कि एक व्हेल मछली भी जहाज के साथ-साथ चल रही है। और उसी के शरीर के धक्कों से जहाज की हालत खराब होती जा रही है। घबड़ाए यात्रियों ने व्हेल को भगाने के अनेक प्रयास किए मगर वह जाने का नाम ही न ले। उसके खुले मुंह में टेबलें, कुर्सियां, जो भी हाथ में आया लोगों ने फेंका। मगर

वह कुछ समय के लिए गायब हो और फिर आ जाए। जहाज लगातार उसके धक्कों से डगमगा रहा था। इस सारे हड़कंप के बावजूद भी सेठ बुधरमल शांत प्रसन्न मुद्रा में मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे। लोगों को उनकी यह प्रसन्नता बहुत खली। उन्होंने कहा, सेठजी, क्या आपको पता नहीं है कि जहाज कुछ ही समय में डूबने वाला है? सेठ बुधरमल बोले, अरे तो डूबने दो, जहाज क्या मेरे बाप का है? अरे कल
का डूबने वाला आज डूब जाए, आज का डूबने वाला अभी डूब जाए।
यात्रियों ने कहा, सेठजी, जहाज आपका नहीं, माना, मगर यह क्यों भूलते हैं कि जहाज के साथ-साथ आपका भी खात्मा होने वाला है?
सेठ बुधरमल बोले, अरे मैं भी कम नहीं हूं, बीमा करवा रखा है। आज मौका मिला है इतने वर्षों बाद। अब पता चलेगा इन जीवन बीमा वालों को।
सेठ की ऐसी बातों से लोग बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने उसे उठा कर व्हेल
के मुंह में फेंक दिया। धीरे-धीरे जहाज की सारी चीजें फल आदि भी उसके मुंह में फेंके गए। लेकिन अंततः व्हेल ने जहाज को उलटा दिया और सारे यात्रियों को धीरे-धीरे अपने अंदर कर लिया। यात्रियों ने अंदर जाकर जो दृश्य देखा वह विस्मयकारी था। अंदर सेठ बुधरमल टेबल-कुर्सी लगाए बैठे थे और टेबल पर संतरे रख कर पचास-पचास पैसे में संतरे बेच रहे थे।
और मेलाराम असरानी, तुम कहते हो कि सिंधियों में भी सिद्ध पुरुष होते हैं! अरे सिंधी यानी सिद्ध। सिंधी का मतलबः बुंद समानी सिंध में, सिंध समाना बुंद में। अब और क्या बचता है? बात ही खतम हो गई, पूरा अध्यात्म-शास्त्र यहीं समाप्त हो जाता है।
मेलाराम असरानी, अब तुम देर न करो, बहुत दिन तुम सहज राजयोग साध चुके,
अब संन्यास की तैयारी करो। जब यहां जमे ही हो तो फिर पूरे जम जाओ। यह क्या आना-जाना? अरे आवागमन से छुटकारा पाओ! और तुम हो सिद्ध पुरुष, इसमें कोई शक नहीं। तुम्हें पता नहीं है, यह बात और। और यही मेरा यहां काम है कि जो तुम्हें पता नहीं वह पता करवा दूं।
अब तुम कह रहे हो कि आप सिंधियों का इतना मजाक तो न उड़ाएं।
मजाक उड़ा ही कौन रहा है? भैया, कैसी बातें कर रहे हो? साईं, कुछ तो समझो! मजाक उड़ा रहा हूं? यह तो सिंधियों की प्रशंसा में दो शब्द कहे। थोड़ा कहा, ज्यादा समझना।
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
छठवां प्रवचन

है इसका कोई उत्तर

पहला प्रश्नः न जातु कामात न भयात न लोभात्
धर्म त्यजेत जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुर अस्य त्वनित्यः।।
अपनी किसी इच्छा की तृप्ति के लिए, भय से, लोभ से या प्राणों की रक्षा
के विचार से भी धर्म को न छोड़ना चाहिए। धर्म नित्य है और सुख-दुख थोड़े समय के हैं। आत्मा नित्य है, शरीर नश्वर है।
कृपा कर इस सूत्र पर कुछ कहें।

सहजानंद, धर्म वह है जो तुम छोड़ना भी चाहो तो छोड़ न सको। जो छूट जाए, छोड़ा जा सके, वह धर्म नहीं है, मजहब है। और धर्म और मजहब में भेद को ठीक से समझ लेना।
धर्म का अर्थ हैः स्वभाव। और मजहब का अर्थ हैः जो तुम्हारे स्वभाव पर दूसरों ने आरोपित किया। हिंदू होना धर्म नहीं; मुसलमान, जैन, ईसाई, बौद्ध, ये सब मजहब हैं, संप्रदाय हैं, संस्कार हैं। ये छोड़े जा सकते हैं क्योंकि पकड़े गए हैं। जो पकड़ा गया है वह छोड़ा जा सकता है। धर्म तो तुम्हारी आत्मा का स्वभाव है; छोड़ना भी चाहो तो छोड़ नहीं सकते।
इसलिए यह सूत्र बुनियादी रूप से गलत है, आधारभूत रूप से गलत है। इस सूत्र का मौलिक संदेश है कि धर्म को छोड़ना नहीं चाहिए। और मैं तुमसे कहता हूंः धर्म वही है जो छोड़ा नहीं जा सकता, पकड़ा भी नहीं जा सकता। फिर धर्म के साथ क्या किया जा सकता है? भूला जा सकता है, याद किया जा सकता है। विस्मृत कर सकते हो, स्मरण में ला सकते हो।
इसलिए बुद्ध ने कहाः सवाल केवल स्मृति का है, सम्यक स्मृति का है, सम्मासति। महावीर ने कहाः सवाल केवल सम्यक ज्ञान का है। कहीं कुछ गया नहीं, कहीं कुछ खोया नहीं--सिर्फ बोध। सो गए हो तुम, जागने की बात है। जागते ही पा लोगे। और पाओगे उसी को जिसे सोते में भी खोया नहीं था लेकिन भूल गए थे। जैसे शराब के नशे में कोई भूल जाए कि मैं कौन हूं, कि मेरा घर कहां है, बस ऐसी ही बात है।
धर्म केवल विस्मृत होता है; उसकी सुरति जगानी है। हां, मजहब पकड़े जाते हैं और मजहब छोड़े जाते हैं। भूल कर भी मजहब को धर्म का पर्यायवाची मत समझना। अंग्रेजी का शब्द रिलीजन, उर्दू का शब्द मजहब, दोनों ही धर्म का अनुवाद नहीं हैं। धर्म का तो सिर्फ चीनी भाषा में अनुवाद हो सकता है और वह शब्द हैः ताओ। ताओ का अर्थ होता हैः धर्म, स्वभाव, स्वरूप।
इस सूत्र का आधार गलत है और फिर उस आधार पर खड़ा हुआ पूरा भवन भी गलत है। यद्यपि यह सूत्र इतना जाना-माना है, इतने बार सदियों-सदियों में दोहराया गया है कि करीब-करीब सभी को इसका पता है और तुमने शायद ही इस भांति कभी सोचा हो कि यह सूत्र गलत हो सकता है। बहुत बार दोहराने से झूठ भी सच मालूम होने लगते हैं। विज्ञापन की यही तो सारी कला है।
न जातु कामात न भयात न लोभात्
धर्म त्यजेत जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुर अस्य त्वनित्यः।।
"अपनी किसी इच्छा की तृप्ति के लिए, भय से, लोभ से या प्राणों की रक्षा
के विचार से भी धर्म को न छोड़ना चाहिए।"
फिर धर्म को लोग पकड़ते क्यों हैं? इच्छा की तृप्ति के लिए ही पकड़ते हैं। आखिर स्वर्ग में कल्पवृक्षों की क्या जरूरत है? स्वर्ग में सुंदर अप्सराओं की क्या आवश्यकता है? स्वर्ग में शराब के चश्मे बहाने का क्या प्रयोजन है? तुम्हारे लोभ को जगाना। तुम्हारे लोभ की अग्नि में घी डालना, उसे प्रज्वलित करना।

तुम्हारा तथाकथित जो धर्म है--तथाकथित ही कह रहा हूं, वह धर्म नहीं है--लोभ पर ही खड़ा है। परलोक में खूब सुख मिलेंगे; अगर थोड़े-से दुख भी यहां झेलने पड़ें तो झेल लो। सौदा करने जैसा है। सौदा ही कहना ठीक नहीं, लाटरी है। पंडित-पुरोहित समझाते हैंः यहां एक दोगे, वहां करोड़ गुना पाओगे। लाटरी और क्या है? मगर असली सवाल पाने का है। पाना है तो छोड़ो। भोगना है तो त्यागो। तपश्चर्या किसलिए है? और जिंदगी तो चार दिन की है, यूं ही चली जाएगी। चार दिन की जिंदगी में तपश्चर्या कर लो थोड़ी, तो फिर नित्य आनंद की उपलब्धि होगी।
लोभ का और क्या अर्थ हो सकता है? तो तुम कामना की तृप्ति के लिए ही तो धर्मों को पकड़े हुए हो, मजहबों को जकड़े हुए हो। और भय से भी, कि कहीं नर्क में न पड़ना पड़े। आखिर नर्कों की ईजाद किसलिए की गई है? तुम्हें डराने, भयभीत करने के लिए। बचपन से ही तुम भयभीत किए जा रहे हो। मां-बाप को अगर रोकना होता है तुम्हें कि तुम चौके में न चले जाओ, कहीं मिठाइयां न खा लो, तो कह देते हैं कि अंधेरे में चौके में मत जाना, वहां भूत हैं। बस भूत का ख्याल बैठ जाए तो बच्चा चौके से बच कर निकलेगा, डरा रहेगा, घबड़ाया रहेगा। हम भयभीत करते हैं बचपन से ही। और वही भय बड़ों को छाया हुआ है--चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, नहीं तो नर्क में सड़ोगे। नर्क की अग्नि में कढ़ाहे चढ़े हुए हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तेल उबल रहा है। यहां तेल की कमी हुई जा रही है और वहां कढ़ाहे चढ़े ही हैं अनंत काल से। कितना तेल न जला डाला होगा! और प्रयोजन क्या है? आदमियों को जैसे भजिया, पकौड़ा समझा जा रहा है, उनको तेल में चुड़ाया जा रहा है! यह व्यवस्था किसलिए है? तुम भयभीत हो जाओ। तुम भयभीत हो जाओ नर्क से और स्वर्ग के लोभ से भर जाओ, तो फिर तुम हिंदू हो जाओगे, मुसलमान हो जाओगे, ईसाई हो जाओगे, जैन हो जाओगे। फिर तुम्हें कोई भी बनाया जा सकता है। फिर तुम्हें आदमी क्या मुर्गा बनाया जा सकता है। और मुर्गे लोग बना दिए गए हैं। तुम्हें पता ही नहीं चलता कि तुमको किस तरकीब से मुर्गा बना दिया गया है।
चंदूलाल का बेटा टिल्लू स्कूल से लौटा। पहले ही दिन। और अपनी मां से बोला, मां, गजब का स्कूल है! मास्टर भी अदभुत हैं! अरे साधारण मास्टर नहीं हैं, जादूगर हैं!
मां ने कहा, तुझे कैसे पता चला कि जादूगर हैं?
तो टिल्लू गुरु ने कहा कि पता कैसे चला! उन्होंने कहा कि कल अगर सबक याद करके न लाए तो मुर्गा बना दूंगा।
मगर यह जादू पंडित-पुरोहित कर ही रहे हैंः लोगों को मुर्गा बनाया हुआ है। लोगों की बलि चढ़ाई जा रही है, मुर्गे काटे जा रहे हैं। और फिर भी मजा यह है कि कहा जाता हैः "अपनी किसी इच्छा की तृप्ति के लिए या भय से या लोभ से धर्म को मत छोड़ना।" तो धर्म को पकड़ोगे ही किसलिए? जिसकी कोई इच्छा नहीं, जिसका कोई भय नहीं, जिसका कोई लोभ नहीं, वह पकड़ेगा ही क्यों? क्यों होगा हिंदू, क्यों बनेगा जैन, क्यों बनेगा सिक्ख? किस कारण? क्या प्रयोजन? अपने में जीएगा। अपनी मस्ती में जीएगा। अपने आनंद में मग्न होगा। अपने ध्यान में डूबेगा। अपनी तलाश करेगा। क्यों पकड़ेगा शास्त्रों को? क्यों शास्त्रों का कचरा ढोएगा?
ये कचरे जैसे सूत्र, मगर इनको लोग ढो रहे हैं।
और देखते हो, कैसी गजब की बातें कही जाती हैं और कैसे हैं अंधे लोग कि मान लेते हैं! प्राणों की रक्षा के विचार से भी धर्म को न छोड़ना चाहिए। क्यों? क्योंकि धर्म नित्य है और सुख-दुख थोड़े समय के हैं।
तो लोभी कौन है? जो सुख-दुख को पकड़ रहा है वह लोभी है या जो सुख-दुख को छोड़ कर नित्य आनंद की आकांक्षा में धूनी रमाए बैठा है वह लोभी है? लोभी कौन है? सांसारिक लोग लोभी हैं या तुम्हारे महात्मा लोभी हैं, तुम्हारे ऋषि-मुनि लोभी हैं? लोभी कौन है? थोड़े को जो पकड़े है वह लोभी! और ज्यादा को जो पकड़ रहा है वह त्यागी! कुछ तो गणित का ख्याल करो। कुछ तो हिसाब सोचो। इस समय के सागर-तट पर जो कंकड़-पत्थर बीन रहा है वह भोगी! और जो हीरे-जवाहरातों की खोज में निकला है वह त्यागी!

और यह सूत्र यही कह रहा है कि धर्म नित्य है और सुख-दुख तो थोड़े समय के हैं, अरे झेल लो! दो दिन की बात है, गुजार लो। धैर्य रखो। जरा संयम साधो। फिर अनंत काल तक सुख भोगना। अप्सराएं नाचेंगी, गंधर्व संगीत बजाएंगे, देवी-देवता सेवा करेंगे। और कल्पवृक्ष के नीचे बैठ कर जो भोगना हो सो भोगना। जो मांगोगे, मांगोगे ही नहीं कि तत्क्षण मिल जाएगा।
मैं तो कहूंगाः जो व्यक्ति मोक्ष की आकांक्षा से धर्म को पकड़ता है वह आदमी महा लोभी है। धर्म न तो मोक्ष की आकांक्षा है न स्वर्ग की, न नर्क का भय। फिर धर्म क्या है? धर्म तो अपने में रमना है। धर्म तो अपने स्वभाव में डूबना है। और जो अपने स्वभाव में डूबा उसने जान लिया सब, जो जानने योग्य है; पा लिया सब, जो पाने योग्य है। वह इस संसार में भी आनंद से जीता है और उस संसार में भी। इस और उस का सवाल नहीं है। वह जहां रहे वहीं आनंद से जीता है। वह नर्क में भी रहे तो उसके पास वसंत के फूल ही खिलते रहेंगे। उसे तुम कढ़ाहों में भी चुड़ाओगे तो भी वह ध्यान में मग्न रहेगा, कुछ भेद न पड़ेगा। सिकंदर महान जब भारत से वापस लौटता था तो उसे याद आया कि उसके गुरु अरिस्टोटल ने कहा था कि जब तुम भारत से वापस लौटो तो एक संन्यासी को लेते आना, मुझे संन्यासी देखना है; संन्यास क्या है, मैं समझना चाहता हूं। सीमा पर उसे याद आई, जब वह भारत छोड़ रहा था। लूट-पाट तो उसने बहुत की थी, धन के बहुत अंबार, हीरे-जवाहरात घोड़ों-हाथियों पर, ऊंटों पर लदे थे। उसे याद आया, एक संन्यासी को और पकड़ ले चलूं। सोचा था जैसी और लूट, ऐसा ही एक संन्यासी पकड़ लूंगा। और संन्यासी उसने भारत में कई जगह देखे थे, तो कहीं भी मिल जाएंगे। उसने पूछा कि यहां गांव में कोई संन्यासी है? लोगों ने कहा, हां है और बड़ा संन्यासी है! सच में जिसको संन्यासी कहें वैसा संन्यासी है। नदी के तट पर, वृक्ष के नीचे रहता है। आप चले जाएं।
सिकंदर गया और सिकंदर ने कहा कि तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। तुम्हें शाही सम्मान मिलेगा। और अगर तुमने इनकार किया, ध्यान रहे, तो यह तलवार देखते हो मेरे म्यान में, यह निकलेगी और गर्दन काट देगी।
सिकंदर के इतिहास को लिखने वालों ने उस संन्यासी का नाम दंदामिस लिखा है। यह यूनानी रूपांतरण होगा किसी भारतीय नाम का। दंदामिस हंसा और उसने कहा, फिर देर क्या? अरे तो निकाल तलवार! अरे तो काट सिर!
ऐसी बात तो सिकंदर ने कभी सुनी ही न थी। सिकंदर ने कहा कि तुम होश में हो? सिर काटूंगा, मर जाओगे।
दंदामिस ने कहा, जिसको तू मारेगा उसे तो मैं मरा हुआ बहुत समय पहले जान चुका हूं। यह देह तो मिट्टी है। घड़ा टूट जाएगा, टूटना ही है; आज टूटा कल टूटा, क्या फर्क पड़ता है! रही मेरी बात, सो मुझे तू न काट पाएगा। और अच्छा ही हुआ कि तू आ गया। तू भी देखेगा इस सिर को गिरते हुए और मैं भी देखूंगा। और दुखी मत होना कि यह तूने क्या किया। अरे मैं भी हंसूंगा, सिर गिरेगा, तू मेरी खिलखिलाहट सुनेगा।
कंप गया सिकंदर। संन्यासी ने कहा कि मैं चल सकता था, लेकिन यह संन्यासियों को निमंत्रित करने का ढंग नहीं है। तलवार की भाषा तू मुझसे बोल रहा है! नहीं जाऊंगा। अब जो तुझे मर्जी हो, कर। मेरे साथ भय और लोभ की भाषा नहीं बोली जा सकती।
सिकंदर समझा कि बात गलत हो गई। ऐसा आदमी ही उसे न मिला था इसके पहले,
तो इस तरह के आदमी से बात किस भाषा में करनी यह भी उसे पता न था। उसने कहा, मुझे क्षमा करें। मैं आपके इस रूप को देख कर आह्लादित हूं। आप पहले आदमी हैं जो भय और लोभ से परे मालूम पड़ते हैं। लोभ मैंने दिया शाही सम्मान का, भय मैंने दिया मृत्यु का; दोनों का कोई परिणाम नहीं। आप न चलें तो इतना करें, कम से कम किसी अपने एक शिष्य को भेज दें।
कुछ शिष्य दंदामिस के पास बैठे थे। दंदामिस ने चारों तरफ देखा और कल्याण स्वामी नाम के एक संन्यासी को कहा, कल्याण, तू चला जा।
कल्याण ने कहा, जैसी मालिक की मर्जी। ऐसे भी मुझे जाना है।
सिकंदर हैरान हुआ उसने जब कहा कि ऐसे भी मुझे जाना है। उसने पूछा कि मैं कुछ समझा नहीं। ये बड़ी अटपटी बातें हो रही हैं कि ऐसे भी मुझे जाना है।

इस आदमी का तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि इसको ले जाऊंगा। यह कहता है ऐसे भी मुझे जाना है।
दंदामिस हंसा, कल्याण भी हंसा और उसने कहा कि जल्दी ही पता चल जाएगा मेरे मतलब का। उसने गुरु के पैर छुए और कहा कि विदा तो लेनी ही थी, जरा जल्दी लेनी पड़ी।
और दो महीने बाद कल्याण मर गया। रास्ते में ही। मरते वक्त उसने सिकंदर को कहा, अब समझे? मैंने कहा था यूं भी मुझे जाना ही है, वक्त आ ही गया है, अरे दो महीने बाद जाता, अभी चला। इसका भी जी रह जाएगा, तुम्हारी भी आज्ञा रह जाएगी। और जाना मुझे है ही।
सिकंदर बहुत चौंका। वह आदमी यह कह कर कहने लगा, कुछ कहना तो नहीं है,
अब मैं चला।
सिकंदर ने कहा, अजीब लोग हो तुम भी। तेरा गुरु था जो बोला कि अगर गर्दन काटोगे तो मेरी खिलखिलाहट सुनोगे। और एक तू है कि तुझे पहले से ही पता था कि तुझे जाना ही है। कुछ मुझे भी कह जा।
कल्याण ने कहा, इतना ही कहता हूं कि मिलन होगा अपना। बेबीलोन में मिलेंगे। फिर तुझे जो पूछना हो, पूछ लेना।
और वह मर गया। बेबीलोन में मिलेंगे! फिर तुझे जो पूछना हो पूछ लेना।
और उलझा गया। और मर गया आदमी कैसे बेबीलोन में मिलेगा? क्या भूत-प्रेत होकर मिलेगा? सिकंदर थोड़ा डरा भी। और जब बेबीलोन पहुंचा तो बहुत घबड़ाया हुआ था। लेकिन बेबीलोन में बीमार पड़ गया। और डाक्टरों ने कह दिया कि आप बच नहीं सकते। तब उसके एक वजीर ने याद दिलाया, याद करते हैं आप उस स्वामी कल्याण ने कहा था बेबीलोन में मिलूंगा? उसका मतलब यही रहा होगा कि अभी क्या कहना है, बेबीलोन में मिलन हो जाएगा। असली मिलन, देह के पार मिलन!
और सिकंदर बेबीलोन में ही मरा, अपने घर नहीं पहुंच पाया।
ये थोड़े-से लोग, ऐसे लोग जाने हैं कि धर्म क्या है।
जिस व्यक्ति ने भी यह सूत्र लिखा होगा, वह तो खुद ही लोभी है।
"धर्म नित्य है और सुख-दुख थोड़े समय के हैं। आत्मा नित्य है, शरीर नश्वर है।"
इसलिए शरीर को मत पकड़ो, आत्मा को पकड़ो। शरीर को पकड़ो भी तो जाएगा और आत्मा को न भी पकड़ो तो कहां जाने वाली है? तो मैं तो तुमसे कहूंगाः अपने को जान लो बस इतना काफी है। आत्म-स्मरण काफी है। वही धर्म है। वही मोक्ष है। वही परमानंद है। और इस तरह के व्यर्थ के सूत्रों में न उलझे रहो। मगर इस देश में दुर्भाग्य से ऐसे सूत्र हमारी छाती पर बैठे हैं।

दूसरा प्रश्नः बंबई के गुजराती समाचारपत्र, जनशक्ति के संपादक ने मुख्यपृष्ठ पर अपने संपादकीय ओशो मौन केम छे--ओशो मौन क्यों हैं--में निम्नलिखित आरोप किए हैंः
बिहार की भागलपुर और बांका की जेलों में अपराधी कैदियों की आंखें फोड़ डालने की भीषण अमानुषिक घटनाएं, उनके संबंध में जानकारी दबा देने के बिहार सरकार के प्रयास और पुलिस के इस प्रकार के अत्याचारों के कारण सारा भारत आंदोलित हो उठा है। संसद में उसके विरुद्ध जबरदस्त आवाज उठाई गई है। फिर भी ओशो मौन क्यों हैं? कहां गई उनकी अनुकंपा? कहां गई उनकी करुणा की भावना? कहां गई उनकी मानवता?
योग, भोग और रोग के ऐशो-आरामी निठल्ली जिंदगी जीने वाले ओशो जी का रोआं तक नहीं हिला। दुबली-पतली गायों को मारो; मोरारजी भले ही उपवास करके मर जाएं, फिर भी हम आनंद मनाएंगे; भारत तो अधिनायकवाद से ही ठिकाने पर आएगा; बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट गलत थे और गांधी तो प्रतिक्रियावादी कायर थे--इस प्रकार की बड़बड़ाहट करने वाले इस विलासी संन्यासी की जीभ पर बिहार की भयानक घटनाओं के विषय में ताला क्यों लगा है? उनके अनुयायी इस बनावटी भगवान की आलोचना करनेवाले को गालियां और उनकी हड्डियां चकनाचूर करने की धमकियां देते हैं, तब वे अपने भगवान को क्यों नहीं जगाते और मानवता की हो रही हत्या के विरुद्ध आवाज उठाने केलिए क्यों नहीं कहते? है इसका कोई उत्तर?

निवेदन है कि इस विषय में कुछ कहें।

सत्य वेदांत, यह तो बड़ा प्यारा प्रश्न है। एक-एक मुद्दे पर विचार करने जैसा है।
पहली बातः "बिहार की भागलपुर और बांका की जेलों में अपराधी कैदियों
की आंखें फोड़ डालने की भीषण अमानुषिक घटनाएं, उनके संबंध में जानकारी दबा देने के बिहार सरकार के प्रयास और पुलिस के इस प्रकार के अत्याचारों के कारण सारा भारत आंदोलित हो उठा है।"
सारा भारत आंदोलित नहीं हो उठा है--सिर्फ अखबारी शोरगुल। आंदोलन तो उलटा हुआ है भागलपुर में, पुलिस के समर्थन में आंदोलन हुआ है। भागलपुर पूरा जिला पुलिस के समर्थन में बंद रहा है। जनता ने मोर्चा निकाला है कि पुलिस के जिन अधिकारियों को नौकरी से मुअत्तल किया गया है उनको मुअत्तल न किया जाए। और पुलिस के अधिकारियों ने जो किया है उसके समर्थन में जनता ने आवाज दी है। और भागलपुर की जनता जो कहे वह ज्यादा समझने जैसा है। भारत की जनता को क्या पता? जनशक्ति के इस संपादक को क्या पता?
जिन लोगों की आंखें फोड़ी गई हैं वे कौन लोग हैं? भागलपुर की जनता जानती है कि वे किस तरह के गुंडे हैं, डकैत हैं, लुटेरे हैं, हत्यारे हैं, बलात्कारी हैं। भागलपुर की जनता भलीभांति उनसे परिचित है। भागलपुर की जनता ने, जिनकी आंखें फोड़ी गई हैं उनका समर्थन नहीं किया है। और भारत से क्या मतलब है? अखबारी शोरगुल! दो कौड़ी के अखबार और दो कौड़ी के अखबारों के संपादक! और इनका कुल धंधा इतना है--उपद्रव! उपद्रव मचाओ।
और ऐसा प्रतीत होता है कि संपादक जनशक्ति के बड़े ज्ञानी हैं, सिद्ध पुरुष हैं। तो इनसे मैं पूछना चाहता हूं कि तुम गए, वहां लोगों से पूछा कि जिनकी आंखें फोड़ी गई हैं, उनके कृत्य क्या थे? क्योंकि उनके कृत्यों को जाने बिना जो उनके साथ किया गया है उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। वह सही है या गलत है, इसका मूल्यांकन भी नहीं हो सकता।
फिर यह भी ध्यान में रहे कि यह सारा आंखें फोड़ने का सिलसिला मोरारजी देसाई की सरकार के समय शुरू हुआ था। तब ये अखबार वाले चुप क्यों रहे? है इसका कोई उत्तर? यह सिलसिला आज शुरू नहीं हुआ है। आज अचानक अखबार वालों को क्यों इतनी अनुकंपा पैदा हो गई है? और मजा यह है कि मैंने सारे अखबार देख डाले, एक अखबार ने भी इसकी फिक्र नहीं की कि ये कौन लोग हैं जिनकी आंखें फोड़ी गईं! इनकी आंखें फोड़ी गईं, इस शोरगुल को उठा कर इनके कृत्यों को दबाने की कोशिश की जा रही है। ये तस्कर हैं। ये बलात्कारी हैं। ये डकैत हैं। ये चोर हैं, बेईमान हैं, लुच्चे हैं, लफंगे हैं। यह सब पोंछ डाला। इस सबको दबाने की कोशिश हो गई। इनकी आंखें क्या फोड़ डाली गईं... ।
और ये ही लोग राम को भगवान कहते हैं, क्योंकि मुझे तो वे कहते हैं बनावटी भगवान! राम असली भगवान हैं! और राम ने एक शूद्र के कान में सीसा पिघलवा कर डलवा दिया था, उसका कसूर क्या था? उसका कसूर केवल इतना था कि उसने वेद के मंत्र सुन लिए थे। राम फिर भी भगवान हैं। वेद का मंत्र सुनना कोई कसूर है? और कान में जब सीसा पिघलवा कर डलवाया जाएगा तो कान फूट न जाएंगे? मैं बनावटी भगवान सही, भागलपुर के पुलिस वाले तो असली भगवान मालूम होते हैं। ये तो वही कार्य कर रहे हैं जो सतयुग से होता रहा। ये तो सच्चे हिंदू संस्कृति के ठेकेदार हैं। ये न रहे तो हिंदू संस्कृति डूब जाएगी। ये तो मर्यादा पुरुषोत्तम की संतान समझो। ये तो रामचंद्र जी के असली भक्त। ये वही तो कर रहे हैं तो रामजी कर गए। ये कोई नई बात तो नहीं कर रहे हैं।
मैं जरूर इस बात का विरोध करता हूं कि यह कृत्य अमानुषिक है। मगर मेरे विरोध का कारण अलग है। मेरे विरोध का कारण यह है कि बीसवीं सदी में बाबा आदम के जमाने के उपाय करना मूर्खतापूर्ण है। अब तो आदमी को सताने की ज्यादा वैज्ञानिक प्रक्रियाएं उपलब्ध हैं, यह क्या पागलपन? यह क्या दकियानूसीपन? और आंखें फोड़ने से क्या हल हो जाएगा? क्या डकैती बंद हो जाएगी, क्या चोरी बंद हो जाएगी, क्या बलात्कार बंद हो जाएंगे?

आंखें फोड़ी जा रही हैं मोरारजी देसाई के समय से। और भागलपुर में अपराधों में कमी तो नहीं हुई, बढ़ती हुई है। आंखें फोड़ने से अपराध नहीं मिट सकते। हमें कुछ और वैज्ञानिक साधन खोजने पड़ेंगे।
इंग्लैंड में अठारहवीं सदी तक जो आदमी चोरी करता था उसे रास्तों पर खड़े करके कोड़े मारे जाते थे, लहूलुहान, उसकी चमड़ी छिल जाती थी, नंगा करके, और हजारों लोगों की भीड़ देखने इकट्ठी होती थी। ख्याल यह था कि इस तरह दंड देने से लोगों में भय व्याप्त हो जाएगा और फिर कोई चोरी न करेगा। लेकिन फिर यह दंड बंद करना पड़ा। बंद इसलिए करना पड़ा कि वह जो भीड़ इकट्ठी होती थी वह देखने में इतनी तल्लीन हो जाती थी--मार, लहूलुहान हो रहा है आदमी, चीख रहा है, चिल्ला रहा है--उसकी तल्लीनता का फायदा लेकर लोग एक-दूसरे की जेबें काट लेते थे, वहीं! चोरी का दंड मिल रहा है और भीड़ में जेबें कट जाती थीं। जब इस बात का धीरे-धीरे पता चला तो साफ हो गई बात कि किसी को कोड़े मारने से चोरी रुकने वाली नहीं है। चोरी वहीं हो रही है, ठेठ उसी जगह हो रही है, जहां कोड़े मारे जा रहे हैं। उसका भी लाभ लेने वाले लाभ ले रहे हैं, क्योंकि लोग तल्लीन हो गए हैं। लोग हिंसा को देखने में बड़े तल्लीन होते हैं, क्योंकि उनके भीतर भी हिंसा दबी हुई पड़ी है। खुद तो नहीं कर पाते, कोई दूसरा कर रहा है, उसके निमित्त खुद भी थोड़ा रस ले लेते हैं। वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि लोग उनकी जेबें काट लेते, उनको पता न चलता। इसलिए वह सजा बंद की गई।
आंखें फोड़ने से न तो डाके कम होंगे, न तस्करी कम होगी, न बेईमानी कम होगी--इसलिए मैं विरोध करता हूं। इसलिए भी विरोध करता हूं कि आंखें फोड़ना अमानुषिक है, जब कि और वैज्ञानिक उपाय उपलब्ध हैं जिनसे ज्यादा आसानी से लोगों से उनके अपराध स्वीकार कराए जा सकते हैं। इतनी सरलता से अपराध स्वीकार कराए जा सकते हैं कि तुम चकित होओगे।
चीन में सदियों से यह प्रयोग होता रहा है, अब भी प्रयोग जारी है। पांच हजार साल पुराना है, सीधा-सादा प्रयोग है। कैदी को एक छोटी-सी कोठरी में बंद कर देते हैं, जिसमें वह बैठ भी नहीं सकता, हिल भी नहीं सकता, खड़े ही रहना पड़ता है उसे, लेटने का तो सवाल ही नहीं उठता। और उसके सिर पर एक घड़ा लटका देते हैं और घड़े में से एक-एक बूंद करके पानी गिरता रहता है, जैसे शंकर जी की पिंडी पर गिरता है न! पता नहीं शंकर जी को किसने सजा दी है! भाग भी नहीं सकते वे। ऊपर लटकी है मटकी। और मटकी में से बूंद-बूंद टप, टप, टप पानी गिर रहा है। सो नहीं सकता आदमी, बैठ नहीं सकता, लेट नहीं सकता। चौबीस घंटे में घबड़ा जाता है। टप-टप-टप-टप चलता ही रहता है, चलता ही रहता है! जैसे भावातीत ध्यान होता है न महर्षि महेश योगी का, ट्रांसेंडेंटल मेडीटेशन, टप-टप, टप-टप, कौन न घबड़ा जाए! वह चिल्लाने लगता है कि मुझे बाहर निकालो, मैं तैयार हूं स्वीकार करने को।
इसको मैं मानुषिक ढंग कहूंगा। कोई उसको मारा नहीं, पीटा नहीं, सताया नहीं, लेकिन उसके मन को पिघला दिया। आखिर यही तो था। यही कर रहे थे पुलिस वाले। उनको सता-सता कर यह पूछ रहे थे कि तुमने क्या किया। उसी सताने में बात बढ़ गई। बात में से बात बढ़ जाती है। आंखों में उन्होंने एसिड डाल दिया। शायद इस घबड़ाहट में, शायद इस भय में अपराध स्वीकार कर लें।
लेकिन ये ऋषि-मुनियों की संतान हैं ये पुलिस वाले! ऋषि-मुनियों ने नर्क में तुम्हारे लिए यही तो इंतजाम किया है--कढ़ाहों में जलाए जाओगे, अंग-अंग काटे जाएंगे; प्यास लगेगी, पानी सामने होगा और मुंह सी देंगे, पानी पीने न देंगे। काटे जाओगे और फिर-फिर जुड़ जाओगे। मरने भी न देंगे। अरे जीने भी न देंगे, मरने भी नहीं देंगे।
इस बीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में, जब कि अब बहुत सुविधापूर्ण रास्ते हैं, सम्मोहन के द्वारा काम किया जा सकता है। सम्मोहन के द्वारा अपराधी को बेहोश किया जा सकता है और उस बेहोशी में उससे सारी बातें उगलवायी जा सकती हैं। आंखें फोड़ने की क्या जरूरत है? कोई जरूरत नहीं, कोई आवश्यकता नहीं।
लेकिन यह भारतीय संस्कृति है! यहां कृष्ण ने अर्जुन को समझा कर सवा अरब लोगों की हत्या करवा दी और फिर भी कृष्ण भगवान हैं! मैं तो बनावटी

भगवान हूं, मगर कृष्ण असली भगवान हैं! सोलह हजार स्त्रियां भगा लाए लोगों की--दूसरों की पत्नियां। खुद की तो एक विवाहित पत्नी थी, रुक्मणी, उससे तो कभी मिलने-जुलने का अवसर आ पाता था कि नहीं, मुश्किल है। सोलह हजार स्त्रियां! कहां उस बेचारी का नंबर लगता होगा! और उसमें सब दूसरों की स्त्रियां भगा लाए थे। ये असली भगवान हैं, मैं नकली भगवान हूं। साफ है कि नकली--न किसी के कान में सीसा पिघलवा कर भरवाया, न सोलह हजार लोगों की स्त्रियां भगा लाया। नकली तो हूं ही! अरे असली होने का प्रमाण भी तो होना चाहिए कुछ! ... है इसका कोई उत्तर?
और अगर मैं सत्य बातें कहूं तो प्राणों में छिदती हैं।
जरूर मैं कहूंगा, क्योंकि पुलिस भारत की अशिक्षित है, दकियानूसी है-- जैसा कि भारत पूरा का पूरा दकियानूसी और अशिक्षित है। मैं तो सरकार को कहूंगा कि यहां हमारे पास भेज दो, हम पुलिस के लोगों को यहां सम्मोहन की विद्या में शिक्षित कर सकते हैं। इसलिए तो लोग यहां आने से डरते हैं कि मेरी आंख में देखा कि सम्मोहित हुए।
अभी प्रिंस आफ वेल्स का आना हुआ हिंदुस्तान में--प्रिंस चार्ल्स का। उनके भाई मेरे संन्यासी हैं--विमल कीर्ति। उसी परिवार से हैं--विक्टोरिया के ही नाती-पोतों में से वे भी एक हैं। वे भी जर्मनी के प्रिंस हैं, जर्मनी के सम्राट के पोते हैं। और प्रिंस चार्ल्स और विमल कीर्ति साथ-साथ पढ़े हैं एक ही स्कूल में, खेले हैं। भाई हैं, तो उन्होंने बुलाया था विमल कीर्ति को, तो विमल कीर्ति अपनी पत्नी और बच्ची को लेकर उनसे बंबई मिलने गए। जो पहली बात उन्होंने की... विमल कीर्ति की पत्नी तुरिया के गले में माला पर उनकी नजर बार-बार जाए। फिर उन्होंने लाकेट हाथ में लिया और कहा कि हां, आंखों में कुछ बात है। यही मैंने सुना है। आंखों के कारण ही तुम लोग चक्कर में पड़े हो न!
यहां भेज दो पुलिस वालों को, उनके अधिकारियों को हम प्रशिक्षित कर सकते हैं। हमारे पास प्रशिक्षित सम्मोहनविद हैं, जो उनको प्रशिक्षित कर सकते हैं। और बड़ी आसानी से उनसे बातें उगलवायी जा सकती हैं। अगर सम्मोहन की प्रक्रिया बहुत ज्यादा सूक्ष्म मालूम पड़े तो क्लोरोफार्म है, जिससे कोई हानि नहीं होती, लेकिन आदमी बेहोश हो जाता है और बेहोशी में बड़बड़ाने लगता है और बातें कहने लगता है। आंखें फोड़ना बहुत ही रामचंद्र जी के जमाने की बात हो गई! रामराज्य में चले ठीक, अब चलाने की कोई जरूरत नहीं है। मगर वे जो गीता-ज्ञान मर्मज्ञ मोरारजी देसाई हैं, वे चला गए। और मजा यह है कि चला वे गए और इंदिरा को उसका भुगतान भरना पड़ेगा।
और मजा यह है कि जिन लोगों ने पार्लियामेंट में विरोध किया है--संपादक
ने लिखा है, संसद में उसके विरुद्ध जबरदस्त आवाज उठाई गई है--ये वे ही लोग हैं विरोध करने वाले जिनके शासन में यह काम शुरू किया गया था। और इसलिए तो इन सबको पता है, इसलिए तो अब उघाड़ सके। यह जालसाजी देखो! ये ही लोग हैं, जिन्होंने विरोध में संसद में उपद्रव मचाया, इन्हीं की सत्ता थी तब यह काम शुरू हुआ। तब ये चुप्पी मारे बैठे रहे। इनकी जानकारी में शुरू हुआ। और मोरारजी देसाई--शुद्ध गांधीवादी, अहिंसक! इनके समय में यह शुरू हुआ। तब इनका गीता-ज्ञान कहां गया था?
लेकिन नहीं, गीता-ज्ञान में भी तो यही बात है, कि अरे आत्मा मरती थोड़े
ही है। अरे बाहर के च्रु के फूटने से कहीं भीतर का च्रु थोड़े ही फूटता है! सच तो यह है कि बाहर के च्रु जिनके फूट जाते हैं, उनको हम कहते हैं-- प्रज्ञाच्रु! उनके भीतर के च्रु खुल जाते हैं! पुलिस वाले उनके भीतर के च्रु खोल रहे थे भाई! ... है कोई इसका जवाब? उन्हें सूरदास बना रहे थे कि अब ये सूरदास हो जाएंगे तो कृष्ण कन्हैया के गीत गाएंगे।
गीता में ही तो कहा हुआ है कि अरे अर्जुन, मत घबड़ा, काट! शरीर के काटने
से कहीं आत्मा कटती है! शरीर तो मिट्टी है, मिट ही जाएगा। और कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन, तू इस फिक्र में मत पड़ कि तेरे ऊपर पाप लगेगा! अरे उसकी बिना आज्ञा के पत्ता नहीं हिलता, तो मौत कैसे होगी? उसने पहले ही इन्हें मार डाला है, तू तो निमित्त मात्र है।

तो मैं कहूंगा जनशक्ति के संपादक से, गीता का विरोध करो, ये पुलिस वाले तो निमित्त मात्र थे। उसने, ऊपर वाले ने, पहले ही आंखें फोड़ दी थीं, ये तो बेचारे निमित्त मात्र थे। इनको क्यों फंसा रहे हो? अगर फंसाना है तो ऊपर वाले को पकड़ो। ये न फोड़ते, किसी और से फुड़वा देता। आंखें तो फूटतीं। उसकी बिना मर्जी के कुछ होता है?
और जब मैं ये सच बातें कहता हूं तो लोग कहते हैं कि मैं बुद्ध, महावीर
और क्राइस्ट को गलत कह रहा हूं।
बुद्ध और महावीर या क्राइस्ट या कृष्ण या राम में जो सही है उसको मैं सही कहता हूं; जो गलत है उसको गलत कहता हूं। मैंने कोई इनको सही सिद्ध करने का ठेका लिया है? मेरी कसौटी पर जो सही है वह सही है। मेरी कसौटी पर जो गलत है वह गलत है।
बुद्ध निश्चित ही सही हैं, जहां तक उनकी विपस्सना ध्यान-पद्धति का सवाल है। तो मैंने अपने आश्रम में विपस्सना की ध्यान-पद्धति को अंगीकार किया है। मैं मानता हूं कि उससे बड़ी ध्यान की कोई पद्धति मनुष्य-जाति के इतिहास में कभी नहीं खोजी गई। इसलिए बुद्ध ने मनुष्य-जाति को बड़ी से बड़ी भेंट दी है--विपस्सना। वह मुझे स्वीकार है। लेकिन बुद्ध ने पलायनवाद भी सिखाया, उसका मैं समर्थन नहीं कर सकता हूं। बुद्ध ने भगोड़ापन भी सिखाया, उसका मैं समर्थन नहीं कर सकता हूं। बुद्ध ने लोगों को जीवन की तरफ पीठ कर लेने की बात भी सिखाई, उसका मैं समर्थन नहीं कर सकता हूं।
महावीर ने अहिंसा का अपूर्व सूत्र दिया हैः मत दुख दो, क्योंकि तुम दुख दोगे तो दुख पाओगे। हमें वही मिलता है जो हम देते हैं। यह जगत तो एक प्रतिध्वनि है। तुम गीत गाओगे, जगत गीत होकर तुम पर बरस उठेगा। तुम गाली दोगे, जगत गालियां होकर तुम पर लौट आएगा। जगत तो दर्पण है। तो महावीर ने अहिंसा का अमोघ सूत्र दिया। लेकिन महावीर ने भगोड़ापन भी सिखाया, पलायनवाद भी सिखाया; उसका मैं समर्थन नहीं कर सकता हूं। महावीर का वहां तक समर्थन करूंगा जहां तक मेरी कसौटी पर सही है; जहां मेरी कसौटी पर सही नहीं है, वहां मैं मजबूर हूं उनको गलत कहने को।
क्राइस्ट ने जरूर बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें कहीं, अभूतपूर्व बातें कहीं--जैसे कहा कि परमात्मा का राज्य तुम्हारे भीतर है, बाहर मत खोजो। जो बाहर खोजेगा, व्यर्थ भटकेगा। जिसे पाना है वह भीतर है, और खोज तुम बाहर रहे हो; यही तुम्हारे जीवन का दुख है। यह बात तो ठीक है, लेकिन जीसस ने वे बातें भी कहीं जिनका मैं समर्थन नहीं कर सकता। जीसस कहते हैंः धन्य हैं गरीब, क्योंकि परमात्मा का राज्य उन्हीं का है। मैं इसका समर्थन नहीं कर सकता। मैं गरीबी को धन्यता नहीं मान सकता। गरीबी पाप है, जघन्य पाप है, कोढ़ की भांति है। मिटना चाहिए। धन्य हैं गरीब, यह मैं नहीं कह सकता।
मैं क्या करूं? या तो सारी बातों का समर्थन करूं--लोग चाहते हैं--या सारी बातों को गलत कहूं। लेकिन न तो मैं सारी बातों को गलत कह सकता हूं, न सारी बातों को सही कह सकता हूं। मैं तो अपनी कसौटी से सही और गलत को नापता हूं।
ये जनशक्ति जैसे अखबारों के संपादक, इनके पास न अपना कोई मापदंड है, न अपनी कोई कसौटी है। ये तो अंधों की तरह, भेड़ों की तरह, भीड़ चाल चलते हैं। निश्चित ही मैं गांधी को प्रतिक्रियावादी कहता हूं और गांधी की अहिंसा को मैं महावीर की अहिंसा नहीं मानता। महावीर की अहिंसा उनके ध्यान का परिणाम थी और गांधी को ध्यान का कभी अनुभव नहीं हुआ। ध्यान कभी उन्होंने जाना नहीं। वे तो बेचारे अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान--इसी गोरखधंधे में पड़े रहे, ध्यान वगैरह जानने का अवसर कहां मिला? हां, कोई उन्हें ध्यान बता सकता था, ऐसे लोग थे, लेकिन उनका अहंकार उनके पास नहीं जाने दे सकता था। कृष्णमूर्ति पर गांधी हंसते थे, मजाक करते थे। महादेव देसाई ने, जो उनके सेक्रेटरी थे, गांधी की डायरी लिखी। उसमें उल्लेख आता है। जहां कृष्णमूर्ति का उल्लेख आता है वहां हंसी-मजाक छिड़ जाता है, क्योंकि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि सब कुछ स्वयं के भीतर है; सब कुछ ध्यान है, जागरण है; जागरण में सब मिल जाता है। इस पर गांधी हंसते थे।

मेहरबाबा ने गांधी को तार किया था कि तुम अगर सच में ही परमात्मा को पाना चाहते हो तो मैं तुम्हें ध्यान की विधि समझाने को राजी हूं। लेकिन गांधी ने इसको अपमान समझा। तार का उत्तर दियाः अपनी विधि अपने पास रखिए, मैं खुद खोज लूंगा। मुझे किसी से सीखने की आवश्यकता नहीं है।
गांधी की अहिंसा और महावीर की अहिंसा में बुनियादी भेद है। गांधी बुनियादी रूप से कायर व्यक्ति थे, बुनियादी रूप से बनिया थे। धूसर बनिया! साधारण बनिया नहीं। डरपोक थे, पहले से डरपोक थे। अचानक कैसे अहिंसा आ गई, यह सोचने जैसा है। गांधी की पूरी प्रक्रिया समझने जैसी है। मैं किसी के नाम-धाम, यश-प्रतिष्ठा से भयभीत नहीं होता। मुझे तो जो दिखाई पड़ता है वैसा ही कहूंगा।
गांधी इतने डरपोक थे कि एक मुसलमान लड़के ने उनको कहा कि तुम्हारा डरपोकपन नहीं मिटेगा जब तक तुम मांसाहार नहीं करोगे। सो बेचारों ने मांसाहार कर लिया, कि मांसाहार बिना किए कोई बलवान नहीं हो सकता। फिर इंग्लैंड गए पढ़ने के लिए। तो मां ने कसमें दिलवा दीं--तीन कसमें--कि स्त्रियों से सावधान रहना। ऐसे उनका ब्रह्मचर्य का भाव जगा। मांसाहार करना मत, क्योंकि मांसाहार किया कि भ्रष्ट हो जाओगे। और तीसरा, अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा करना, इसको खोना मत।
जब जा रहे थे जहाज पर तो जो उनके कमरे में उनका साथी था... इजिप्त में जहाज रुका अलेग्जेंडरिया में, तो जहां-जहां जहाज रुकते हैं वहां-वहां वेश्याओं के अड्डे होते हैं और सारे यात्री और कप्तान और सब नाविक और माझी चले वेश्याओं के यहां। वह जो उनके कमरे का सहयोगी था, वह भी चला। उसने कहा कि चल भाई, तू भी चल, यहां बैठा-बैठा क्या करेगा? तो इतने कायर थे, इतने कमजोर थे कि यह भी न कह सके कि मुझे नहीं जाना है।
हद हो गई! अरे इस कहने में कौन-सी बड़ी ताकत की जरूरत थी कि मुझे नहीं जाना है? अरे बहुत ही डरपोक थे, इतना कहेंगे तो यह आदमी समझेगा कि पता नहीं नपुंसक हैं या क्या मामला है, भद्द न हो, तो कम से कम चादर ओढ़ कर सो जाते कि मुझे बुखार चढ़ा है। वह भी न बना। डर के मारे उसके साथ हो लिए, कि बदनामी न हो। वेश्या के घर भी पहुंच गए। जाना नहीं है, प्राण कंप रहे हैं, क्योंकि मां की याद आ रही है, मां ने कहा है कि कभी किसी स्त्री... कसम खाकर गए हैं। और यह आदमी, अब इससे क्या कहें! और सभी जा रहे हैं, तो सभी जा रहे हैं तो जाना पड़ेगा।
कायर का यह लक्षण होता हैः जहां सब जा रहे हैं, वह उनके विपरीत नहीं जा सकता। जहां भीड़ जा रही है, वह भी जाएगा। वह भेड़ होता है। भेड़ें भीड़ में चलती हैं। सिंहों के नहीं लेहड़े। सिंह भेड़ों की तरह नहीं चलते, भीड़ में नहीं चलते, उनके लेहड़े नहीं होते।
मगर धूसर बनिया! पहुंच गए वेश्या के घर। अभी भी कह देते कि भाई मैंने कसम खा ली है, मैं मां को वचन दे आया हूं। मगर मुंह न खुले, गला सूख गया। थूक नदारद हो गया। बोलती न खुले। खूब मौन सधा! महावीर ने भी साधा था मौन, मगर इनका मौन खूब सधा! और हद हो गई। उसने भी देखा, यह कुछ बोलता नहीं और पसीना- पसीना हुआ जा रहा है। शायद नया-नया है, सिक्खड़ है, तो उसने जबरदस्ती भीतर धक्का दे दिया और दरवाजा अटका दिया। भीतर वेश्या ने देखा, पंखा वगैरह झला, कि भई तुझे क्या हो रहा है, बोल तो! मगर वे बोलें तो बोलें कैसे? उधर तो उनकी बोलती खो गई, मौन सध गया। इसको कहते हैं ध्यान की अवस्था!
अब इसको मैं कायरपन न कहूं तो क्या कहूं? वेश्या बेचारी दया खा गई कि
यह बेचारा दीन-हीन आदमी, इसको हो क्या गया? लिटाया, पंखा करे, पैर दबाए कि तू बोल तो, कुछ तो बोल! किस भांति तेरी सेवा करूं! वह कुछ बोलें ही न। पानी वगैरह पिलाया। वेश्या ने ऐसा ग्राहक ही न देखा था पहले। और जब मित्र ने बाहर द्वार पर दस्तक दी तो एकदम उठ कर खड़े हो गए। धन्यवाद तक न दिया उस गरीब वेश्या को। बाहर निकल आए, मित्र के साथ हो लिए। दिखावे के लिए यह रहा कि हो आए वेश्या के यहां--सिर्फ दिखावे के लिए। वहां तो वेश्या ने बेचारी ने नर्स का काम किया। और कोई काम किया नहीं। कोई पाप वगैरह नहीं हुआ, मगर भीड़ में छाप रही कि अरे होकर आए हैं; कोई भूल कर यह न समझे कि लंगोट के कोई पक्के हैं; अरे हम भी कच्चे हैं, तुम कच्चे हो तो हम भी कच्चे हैं! उसी शान

में रहे। और बड़ी बातें बघारने लगे कि बड़ा मजा आया! अब बोलती खुली। अब यह ध्यान टूटा, अब इनकी समाधि उतरी।
इस तरह के कायर व्यक्तित्व में कैसे अचानक अहिंसा आ गई? और इस तरह की
एक घटना नहीं है, घटनाओं पर घटनाएं हैं। अचानक यह कायर व्यक्तित्व कैसे अहिंसक हो गया? यह अहिंसा बड़े और ढंग से आई। यह अहिंसा बड़ी जालसाजी से आई। यह अहिंसा बड़ा गणित है। यह वही गणित है जो आमतौर से हिंदुस्तान में जैनी कर रहे हैं। यह वही गणित है। जैन कहते हैंः जीओ और जीने दो। उनका मतलब यह है कि भई जीने दो! न हम तुम्हें मारें, न तुम हमें मारो। मतलब यह कि कृपा करके हमें मत मारो, देखो हम तुम्हें नहीं मार रहे। जब हम तुम्हें नहीं मार रहे तो तुम हमें क्यों मार रहे हो? तो उनको यह हिंसा इस तरह से आई--जीओ और जीने दो! इस अहिंसा के सूत्र को उन्होंने फिर खूब फैलाया। फिर इसी सूत्र के बल पर वे महात्मा हो गए। लेकिन अहिंसा बिल्कुल थोथी थी।
जब भारत आजाद नहीं हुआ था, गांधी से किसी ने पूछा कि जब भारत आजाद हो जाएगा तो फिर क्या करिएगा, मिलिटरी का क्या करिएगा, अस्त्र-शस्त्रों का क्या करिएगा? तो उन्होंने कहा, अस्त्र-शस्त्र समुद्र में डुबा देंगे और मिलिटरी के लोगों को खेतों पर काम में लगा देंगे। फिर आजादी आई, फिर भूल गए चौकड़ी। फिर मिलिटरी के लोगों को खेतों में नहीं भेजा और न अस्त्र-शस्त्र समुद्र में डुबाए, बल्कि उलटा यह हुआ कि जब पहला हवाई जहाज पाकिस्तान पर हमला करने के लिए दिल्ली के ऊपर से उड़ा तो उसको गांधी ने आशीर्वाद दिए। अब कहां गई अहिंसा? अब सारी अहिंसा भूल-भाल गए। वह अहिंसा कायर की अहिंसा थी। तो मैं तो जैसा है वैसा कहूंगा। इतना मैं जरूर जानता हूं कि किसी की आंखें वगैरह फोड़ने की कोई जरूरत नहीं; ज्यादा बेहतर ढंग हैं, ज्यादा वैज्ञानिक ढंग हैं। और संसद में शोरगुल मचाने से कुछ भी न होगा। और अखबारों में जो उपद्रव चल रहा है, उससे जनता की खबर का कुछ पता नहीं चलता। जनता की खबर तो भागलपुर में जो हो रहा है उससे पता चलता है, कि पूरा भागलपुर बंद रहा, पूर्ण बंद रहा--पुलिस के समर्थन में, क्योंकि जनता उन लुच्चे-लफंगों से पीड़ित है, परेशान है।
पूछा है कि "फिर भी ओशो मौन क्यों हैं?"
मौन इसीलिए हूं कि इस देश में सत्य बात कहनी पाप हुई जा रही है। सत्य कहो कि बस गालियां खाओ।
पूछते हो, "कहां गई उनकी अनुकंपा?"
जैसे इनको मेरी अनुकंपा पर भरोसा हो! यह बेईमान आदमी देखते हो! ऊपर कहता है कहां गई उनकी अनुकंपा, कहां गई उनकी करुणा की भावना, कहां गई उनकी मानवता? और नीचे यह भी कहता है कि बनावटी भगवान हैं!
अगर बनावटी भगवान हैं तो अनुकंपा हो ही कैसे सकती है? करुणा की भावना
हो ही कैसे सकती है? मानवता हो ही कैसे सकती है? यह तो विरोधाभास हो गया। अगर मानते हो मेरी अनुकंपा तो मैं कहूंगा कि अब हमारे पास सारी दुनिया में, पावलफ ने, स्किनर ने, डेलगाडो ने बहुत वैज्ञानिक सुविधाएं जुटा दी हैं, जिनमें बिना किसी को परेशान किए सारी बातें निकाली जा सकती हैं, उघाड़ी जा सकती हैं। हर बात निकाली जा सकती है। अब तो इतने वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हैं कि ये सिर्फ भारत जैसे मूढ़ देश में ही इस तरह की बातें हो सकती हैं। यह सवाल भारत की पुलिस का नहीं है। यह भारत के पुलिस वाले और भारत के संपादक, सब एक-सी बुद्धि के हैं। ये सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, कोई फर्क नहीं है इनमें।
अब तो इलेक्ट्रोड के द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क में से कोई भी रेकार्ड बजवाया जा सकता है; वह कहना चाहे, कि न कहना चाहे, होश में बैठा रहे आदमी। तुम होश में बैठे हो, जरा-सी सुई, जिसका तुम्हें पता भी नहीं चलेगा, एक इलेक्ट्रोड तुम्हारे मस्तिष्क में जाता है और एक बिंदु को छूता है, और रेकार्ड शुरू हो जाता है। और तुम खुद चौंक कर हैरान होओगे कि तुम कुछ बोल रहे हो! खुद सुनोगे कि मैं बोल रहा हूं और जो नहीं बोलना चाहता वह बोल रहा हूं, मुझे बोलना नहीं है और बोल रहा हूं। जैसे कि ग्रामोफोन पर सुई चढ़ा दी और ग्रामोफोन बजने लगे, जैसे रेडियो बजने लगे, या टेप-रिकार्डर बोलने लगे। मनुष्य की स्मृति टेप-रिकार्डिंग ही है। उसके भीतर इसी तरह की व्यवस्था

है। अब हमने सुइयां खोज ली हैं जो उस टेप-रिकार्डर को चालू कर देती हैं। आदमी बैठा देखता रहता है, जैसा तुम देख रहे हो। नहीं बोलना है, फिर भी टेप-रिकार्डर बोलता है, आवाज देता है और उसे बोलना पड़ता है--अवश।
जब इतने वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हों तो क्या जरूरत आंखें फोड़ने की? मगर आंखें फोड़नी पड़ रही हैं, क्योंकि तुम तो चरखे पर रुके हो। ऐसा घनचक्कर यह देश है कि चरखे से आगे नहीं बढ़ना चाहता। तो तुम कैसे यह नई वैज्ञानिक विधियां सीखोगे? तुम तो अपने पुरखों की बातें, अपने पुरखों का गुणगान, और उसमें तो फिर रामचंद्र जी आते हैं... पिघला दो सीसा, कान में भर दो। उन्होंने कान में भरा, ये बेचारे जरा आगे बढ़ गए। इन्होंने कहाः यह तो रामचंद्र जी पहले ही कर चुके हैं, अब हम जरा आगे जाएं। ये समझो हनुमान जी-- ये पुलिस वाले--इनकी बुद्धि हनुमान जी से ज्यादा और क्या! पूंछ भर नहीं है, और तो बाकी सब ठीक है। और कौन जाने पूंछ भी हो, ड्रेस के भीतर छिपाए हों। उन्होंने कान फोड़े, इन्होंने आंखें फोड़ दीं। गुरु तो गुरु रहे, गुरु तो गुड़ ही रहे और चेला शक्कर हो गए। शक्कर की वैसे भी कमी है।
मैं इसलिए मौन हूं कि जब तक इस पूरे देश की मानसिकता नहीं बदलती तब तक लाख मचाओ शोरगुल संसद में। वे शोरगुल मचाने वाले लफंगे उसी कोटि के हैं। वही गुंडे तो चुन कर संसदों में पहुंच जाते हैं। वही दादा। वही यहां सताते हैं लोगों को, वही संसद में उपद्रव मचाते हैं। जैसा तमाशा भारतीय संसद में होता है वैसा दुनिया में कहीं नहीं होता। जूते चलते हैं। दुनिया में कहीं नहीं चलते। भारतीय संस्कृति की बात ही और है! जूते चलते हैं, कुर्सियां फेंकी जाती हैं, किताबें फेंकी जाती हैं।
गोआ की विधान-सभा में दो-तीन वर्ष पहले ऐसी मारपीट हो गई, कुश्तम-कुश्ती हो गई कि गांधी जी की मूर्ति रखी थी, किसी ने वही गिरा दी, वही चारों खाने चित कर दी, वही टूट-फूट गई। सारा सामान अस्तव्यस्त हो गया; जैसे शराबघर में हो जाए वैसी हालत संसद की हो गई। वह तस्वीर देखने जैसी थी। उस तस्वीर को तो घर-घर में टांग देना चाहिए। गांधी जी उलटे पड़े हैं, जूते पड़े हैं, चप्पलें पड़ी हैं, फाइलें फिंक गई हैं, कुर्सियां उलटी हो गई हैं। इसको कहते हैं--संसद! सांसदिक प्रणाली! लोकतंत्र, प्रजातंत्र!
संसद में उपद्रव करने वाले लोग वही के वही हैं। ये अखबारों में लिखने वाले लोग वही के वही हैं। इनकी भाषा देखो, जो लिख रहे हैं वह क्या है? एक तरफ कहते हैं कि भगवान रजनीश मौन क्यों हैं। मैं इसलिए मौन हूं कि जब तक तुम्हारी पूरी मानसिकता को बीसवीं सदी का न बनाया जाए, समसामयिक न बनाया जाए, ये घटनाएं घटेंगी, ये नहीं रोकी जा सकतीं। इधर से रोकोगे, उधर से घटेंगी। और अगर इनको तुम रोकोगे तो जिनकी आंखें फोड़ी गई हैं, वे तुम्हारी आंखें फोड़ेंगे। या तो पुलिस को अगर दबाओगे तो गुंडे बढ़ेंगे, अगर गुंडों को दबाओगे तो पुलिस गुंडागर्दी करती है। यहां गिरो तो खाई, यहां गिरो तो कुआं।
यह पूरा देश एक ऐसे पिछड़ेपन में जी रहा है, समसामयिक नहीं है यह देश।
और उस दृष्टि से मैं इन छोटी-छोटी टुच्ची बातों पर क्या वक्तव्य देता रहूं? मैं काम में लगा हूं। मैं मौन नहीं हूं, मैं काम में लगा हूं। जो लोग मुझसे राजी हैं, उनकी मानसिकता को बीसवीं सदी का बनाने की कोशिश कर रहा हूं।
एक तरफ "भगवान रजनीश" और दूसरी तरफ "योग, भोग और रोग के ऐशो-आरामी निठल्ली जिंदगी जीने वाले रजनीश जी का रोआं तक नहीं हिला"।
अरे यही तो योगियों का पुराना लक्षण है कि रोआं तक न हिले! स्थितप्रज्ञ की परिभाषा क्या है? कि दुनिया हिल जाए, मगर योगी का रोआं न हिले। सो नहीं हिला रोआं, सच कहता हूं नहीं हिला। और इससे सिद्ध होता है कि भोग और रोग की बातें गलत हैं। नहीं तो रोआं हिल जाता। अरे रोगी होता तो एकदम बुखार चढ़ जाता, जैसा इनको चढ़ा हुआ है। ये संपादक महोदय एकदम बुखार में हैं, अनाप-शनाप बक रहे हैं! एकदम सन्निपात में आ गए हैं। अगर भोगी होता तो भी घबड़ाता कि भैया आंखें फूट रही हैं, कहीं खुद न फंस जाऊं, नहीं तो कोई मेरी आंखें फोड़ दे। योगी हूं! वही याद करो कृष्ण की बात--वही कृष्ण की

बकवास, जिसको तुम श्रीमद्भगवतगीता कहते हो--याद करो कि सुख आए कि दुख, समभाव से रहे योगी, समता रखे। जीवन हो कि मृत्यु, सब समान हैं।
रोआं तक नहीं हिला। इसी से तो सिद्ध होता है कि तुम लाख कहो बनावटी भगवान हूं, बनावटी नहीं हूं, बिल्कुल असली हूं! भगवान का रोआं हिल रहा है, तुम कहो? इतना उपद्रव मचा हुआ है दुनिया में और भगवान मस्त! वे अपनी लीला ही कर रहे हैं। वे क्षीरसागर में लेटे हैं अपने शेषनाग की शय्या पर! और क्या भोगी का लक्षण होगा? क्षीरसागर, शेषनाग की शय्या और लक्ष्मी मैया पैर दबा रही हैं! और निठल्ली जिंदगी क्या होगी? अब विष्णु भगवान ही जब निठल्ली जिंदगी बिता रहे हैं तो मैं क्या करूं?
कहा है संपादक ने, "दुबली-पतली गायों को मारो... ।"
अरे क्या लाख मारो, तुम मार नहीं सकते। पत्ता नहीं हिलता बिना उसके इरादे के! जिसको मरना है वही मरेगा। कुछ तो अपने शास्त्रों की इज्जत करो, कुछ तो समादर करो। जिसके भाग्य में लिखा है वही होगा। कह गए ऋषि-मुनि कि जब पैदा होते हो तुम, तभी विधाता लिख देता है कि कब मरोगे, घड़ी-क्षण-पल; कैसे मरोगे, कहां मरोगे, यह तक लिख देता है, कि दादर में मरोगे, कि बोरीवली पर मरोगे, कहां मरोगे। उल्हासनगर में मरोगे, कि चिंचवड़ में मरोगे, किस मोहल्ले में मरोगे, किस घर में मरोगे--पहले ही सब लिख देता है। अरे रत्ती- रत्ती लिख देता है, कुछ छोड़ता? कुछ भी नहीं छोड़ता। विस्तार से सब बातें लिख देता है, जिसमें कोई भूल-चूक न हो जाए। नहीं तो मरना था दादर में, मर गए बोरीवली में।
तो दुबली-पतली गायों को मारो। मैं क्या कहूंगा मारो? मैं तो इतना ही
कह रहा हूं कि जो हो रहा है वह परमात्मा की मर्जी। यही तो भारतीय संस्कृति है! और अगर मैं इसके खिलाफ कुछ कहूं तो भारतीय संस्कृति पर खतरा आ जाता है। और तुम्हारे ऋषि-मुनि सब मांसाहारी, गऊ खाते रहे, आदमी की बलि चढ़ाते रहे। और तरकीब-तरकीब से बलि चढ़ाते रहे। स्त्रियों को चिताओं पर चढ़ाते रहे। और इन संपादक को कोई चिंता नहीं उस सबकी। है इसका कोई उत्तर? जिंदा स्त्रियों को चढ़ाते रहे, दुबली-पतली मरी-खुरी स्त्रियों को भी नहीं, जवान स्त्रियों को चढ़ाते रहे, सुंदर स्त्रियों को चढ़ाते रहे। और अभी तक पूजा चल रही है, सतियों के मंदिर बन रहे हैं। मैं तो अखबार देखता हूं तो रोज कहीं दादी सती मां की झांकी, कहीं झांझनसती मां की झांकी, कहीं सती का मेला भर रहा है। और सती होना पाप! और सती होना अपराध! तो जो लोग झांझनसती का मेला भरते हैं, इन सबको बंद नहीं करना चाहिए?
अगर सती होना अपराध है, तो फिर सतियों का मेला भरना तो सती-प्रथा का प्रचार करना है। सती की व्यवस्था करना, मंदिर बनाना, पूजा करना और स्त्रियों को प्रलोभन देना है कि तुम भी हो जाओ सती, बाई क्या कर रही हो! अरे मारो पति को, फिर हो जाओ सती! अरे चार दिन की जिंदगी है, कुछ कर लो। नाम रह जाएगा। झांझनसती हो जाओगी। झंझोड़ दो पति को और कूद पड़ो चिता में। फिर मंदिर बनेगा, और तुम्हारी चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
और मैं, वे कहते हैं कि मोरारजी भले ही उपवास करके मर जाएं, मैं आनंद मनाऊंगा।
मैं तो आनंद मनाता ही हूं। यही तो योग की व्यवस्था है। अब क्या चाहते
हो मैं योग भी छोड़ दूं? योग का यही तो मूल आधार है कि जीवन भी उत्सव, मृत्यु भी उत्सव। लेकिन मैंने जब कहा कि मोरारजी देसाई अगर अनशन करके मर भी जाएं तो भी मैं उनसे अनशन तोड़ने को न कहूंगा, बल्कि उनके मर जाने पर हम उत्सव मनाएंगे, नाचेंगे, गाएंगे--तो बड़ा विरोध हुआ गुजराती के अखबारों में। बड़ा विरोध हुआ कि यह तो बात बहुत कठोर हो गई।
यह बात बिल्कुल कठोर नहीं है। मेरे पिताजी चल बसे, उनको भी हमने इसी मस्ती से विदा दिया। यह कोई मोरारजी के लिए... अरे मोरारजी पर दया कर रहा हूं! यहां तो हरेक चीज का उत्सव मनाया जाता है। मेरे पिता ही चल बसे तो भी हमने नाच-गाकर उनको विदा किया। उतना ही सम्मान मोरारजी को दे रहा हूं, और क्या चाहिए? यह बिल्कुल गोबर-गणेश को! इतना सम्मान जितना केवल बुद्ध पुरुषों को मिलना चाहिए, बुद्धुओं को इतना सम्मान! और उसका विरोध किया जा रहा है!

मैं तो अपने संन्यासियों से कह रहा हूं कि जब मैं मरूं तो ऐसा उत्सव मनाना जैसा कि इस पृथ्वी पर कभी मनाया ही नहीं गया। क्योंकि जीवन भी उत्सव है, मृत्यु भी उत्सव है; दोनों में परमात्मा ही छिपा है, तो फिर उत्सव ही होना चाहिए। इसमें कोई एतराज की बात कहां है? लेकिन लोग अपनी बंधी धारणाओं से छूटते नहीं। और फिर मुझसे कहते हैं मैं चुप क्यों हूं! बोलूं तो तुम्हारी बंधी धारणाओं पर चोट लगती है। जरा बोलो कि चोट लगी।
अभी सिंधी संन्यासियों ने ही मुझसे कहा कि आप सिंधियों को क्यों छोड़ते हैं? सीता मैया ही बोलीं कि हम भी हैं यहां और आप सिंधियों पर कभी कुछ नहीं कहते। और कल प्रतिभा लालवानी को सिंधी-समाज के प्रमुख का फोन आ गया कि अपने भगवान को कहो कि अगर सिंधियों के खिलाफ बोले तो हम भी बाजुएं फड़काएंगे!
अरे! बड़ी मुसीबत है! है इसका कोई उत्तर? अगर बोलो तो मुसीबत, न बोलो तो मुसीबत। और यहां जो सिंधी थे वे बाजुएं फड़का रहे थे, वे कहते कि बोलो।
अब प्रतिभा लालवानी लालवानी नहीं है। वे बेचारे गलत समझे। वे समझे कि सिंधी बाई है, इसको उकसाओ। लालवानी शब्द से उनको भ्रांति हो गई। वह जो नी लगा है न! प्रतिभा कोई सिंधी नहीं है, सिर्फ एक सिंधी को पति बना लिया। मगर सिंधी को भी रास्ते पर लगा दिया प्रतिभा ने--प्रतिभा ही है उसके पास, उसमें कोई शक नहीं--पतिदेव को ऐसा गत्ता मारा है कि वे बंबई में पड़े हैं। वे समझे कि यह प्रतिभा लालवानी भी सिंधी है। प्रतिभा कोई सिंधी नहीं है। प्रतिभा तो प्रतिभा है--मेरी संन्यासिनी! वहां कहां सिंधी, वहां कहां मारवाड़ी, वहां कहां कोई और। अब उन्होंने फोन किया कि बहुत हमारे खिलाफ कहा जा रहा है, रोज हमारे खिलाफ कहा जा रहा है।
मैंने प्रतिभा को खबर भेजी है कि उनसे कहना कि वे जो भी कह रहे थे, तुम्हारे फोन ने सिद्ध कर दिया कि सच ही कह रहे थे। अरे मजाक भी नहीं समझ सकते हो, महासिंधी मालूम होते हो!
कहा है कि "बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट गलत थे--ऐसा कहते हैं। गांधी प्रतिक्रियावादी कायर थे। इस प्रकार की बड़बड़ाहट करने वाले इस विलासी संन्यासी की जीभ पर बिहार की भयानक घटनाओं के विषय में ताला क्यों लगा है?"
संन्यासी तो मैं बिल्कुल नहीं हूं, मुझे देख कर कोई भी कह सकता है। यहां संन्यासी बहुत हैं, वे मेरे शिष्य हैं। अब क्या गुरु को शिष्य बनना पड़ेगा? संन्यासी मैं नहीं हूं। मैं जब दूसरों को चक्कर में डाल सकता हूं तो खुद क्यों चक्कर में पडूं? मैं तो शुद्ध विलासी हूं, इसलिए तो भगवान कहता हूं अपने को। भगवान यानी भाग्यवान। और हमारा शब्द है, ईश्वर। ईश्वर शब्द बना है ऐश्वर्य से। ऐश्वर्य का अर्थ है--विलास, भोग। उसी से बना है ईश्वर। अरे मैं तो ईश्वर ठहरा--भोगी, विलासी, लेटे हैं अपनी शय्या पर, निठल्ले!
दास मलूका कह गए सबके दाता राम।
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।।
अब कहां संन्यास वगैरह की बातें लगाए हो? अब क्या अ ब स से फिर मुझे पढ़ना शुरू करना पड़ेगा? बामुश्किल तो सिद्ध हो पाए, अर्थात बामुश्किल सिंधी हो पाए, अब फिर संन्यासी?
और यह बात बिल्कुल झूठ है, उन्होंने कहा कि मेरे संन्यासी कहते हैं कि
जो हमारे भगवान को गाली देंगे उनकी हम हड्डियां चकनाचूर कर देंगे। यह बात बिल्कुल झूठ है। सरासर झूठ है। ऐसा किसी संन्यासी ने नहीं कहा है। और न मेरे संन्यासी इस तरह की बातों में भरोसा करते हैं। अरे हम तो आत्मा को चकनाचूर करते हैं, क्या हड्डियों में उलझो! हड्डी वगैरह में तो कुत्ते उलझते हैं। हड्डियां तो कुत्ते चकचोरते हैं। हमारे संन्यासी तो आत्माओं को सफा करते हैं।
है इसका कोई उत्तर?
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
सातवां प्रवचन

मैं तुम्हारा कल्याण-मित्र हूं

पहला प्रश्नः यह कैसी आजादी है जहां हर आदमी दुखी है और सुख के कोई आसार भी नजर नहीं आते?

नारायण प्रसाद, आजादी से सुख होगा ही, ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है; उलटा भी हो सकता है, दुख भी बढ़ सकता है। और वही हुआ है। आदमी गलत है तो आजादी भी गलत आदमी को मिलेगी। जैसे पागलखाने में पागल बंद हों और हम उन्हें आजाद कर दें, तो क्या तुम सोचते हो स्वर्ग निर्मित हो जाएगा? आजादी तो आ जाएगी, जंजीरें तो टूट जाएंगी, दरवाजे तो खुल जाएंगे, लेकिन पागल तो फिर भी पागल ही होंगे। बंद थे तो पागलपन की सीमा थी; स्वतंत्र हो गए तो पागलपन को पूरी स्वच्छंदता मिल गई।
आजादी में कोई गारंटी नहीं है। सुख के लिए तो आदमी का आंतरिक रूपांतरण चाहिए। और हमारी आदतें सदियों से गलत हैं। हमारे सोचने-विचारने की प्रक्रिया भ्रांत है। कोई गुलामी के कारण तो तुम गरीब न थे। गुलामी आई, उसके पहले भी तुम गरीब थे, शायद आज से भी ज्यादा गरीब थे। महात्मा गांधी रामराज्य की बहुत प्रशंसा करते थे, लेकिन किसी ने यह विचार नहीं किया कि रामराज्य में बाजारों में पुरुष और स्त्रियां वस्तुओं की तरह बिकते थे। जैसे पशुओं के बाजार होते हैं, ऐसे आदमियों के बाजार भी थे, जहां स्त्रियां और पुरुष नीलाम होते थे। जरूर लोग बहुत गरीब रहे होंगे, अन्यथा कौन अपनी बेटियों को नीलाम करेगा, कौन अपने बेटों को बेचेगा! पत्थर छाती पर रख कर लोगों ने यह किया होगा। और जिन ऋषि-मुनियों की तुम प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते हो, वे भी बाजारों से जाकर गुलामों को खरीद लाते थे। अदभुत था तुम्हारा रामराज्य! अदभुत था तुम्हारा सतयुग! और अब तुम कलियुग को गालियां देते हुए नहीं अघाते हो। गरीबी कोई नई बात तो नहीं।
द्रोणाचार्य ने एकलव्य को शिक्षा देने से इनकार कर दिया था, क्योंकि
वह शूद्र था। इसका कोई संबंध गुलामी से तो न था। तब तो तुम आजाद थे। लेकिन तुम्हारी आत्मा तो जैसे कभी भी आजाद नहीं रही। और शर्म भी न आई द्रोणाचार्य को। जब एकलव्य उनकी मूर्ति को जंगल में बना कर धनुर्विद्या में निष्णात हो गया तो उससे दक्षिणा लेने पहुंच गए। और ये द्रोण बड़े गुरु थे; इनका बड़ा सत्कार था, बड़ा सम्मान था। ये उस सदी के, उस समय के महाज्ञानी थे। बेईमानी की भी कोई सीमा होती है! जिसे शिक्षा देने से इनकार कर दिया उससे दक्षिणा लेने किस मुंह से गए थे? और दक्षिणा भी क्या मांगी! उस गरीब शूद्र के बेटे से दक्षिणा में मांग लिया उसके दाहिने हाथ का अंगूठा, क्योंकि उसकी धनुर्विद्या की इतनी ख्याति फैलने लगी थी कि गुरु द्रोण को डर पैदा हुआ कि कहीं उनके सिखाए गए शिष्य--अर्जुन, अन्य पांडव, कौरव--इन सब को यह शूद्र मात न दे दे। सबसे बड़ा डर था कि कहीं अर्जुन को यह शूद्र मात न दे दे। इस साजिश से उसका अंगूठा मांगा।
लेकिन तब तुम गरीबी के लिए आदी थे। तुमने गरीबी पर तब तक संदेह न उठाया था, तुम्हारे भीतर बगावत की चिनगारी न जगी थी। तुम्हें समझाया गया था कि गरीबी तुम्हारे भाग्य के कारण है, विधाता ने लिख दिया है, भोगनी ही पड़ेगी। शांति से भोग लोगे तो अगले जन्म में फल पाओगे, सुख पाओगे स्वर्ग के; अगले जन्म में सवर्ण जातियों में पैदा होओगे। धन होगा, पद होगा, प्रतिष्ठा होगी--अगले जन्म में! अगर इस जन्म में परीक्षा से ठीक से गुजर गए, अगर धैर्य रखा, संतोष रखा।
धर्म के नाम पर, कार्ल मार्क्स ठीक ही कहता है कि लोगों को अफीम पिलाई जाती रही है। निन्यानबे प्रतिशत कार्ल मार्क्स का वक्तव्य सही है। यह पूरा देश अफीमचियों का देश है। तुम अफीम की पीनक में पड़े रहे हो। आजाद होने से क्या होगा? आजाद होने से इतना ही होगा कि तुम जो करने को स्वतंत्र न थे वह करने को स्वतंत्र हो जाओगे, और उपद्रव मच जाएगा।

वही उपद्रव तुम सारे देश में फैला हुआ देखते हो। गुंडों को आजादी मिली है, बदमाशों को आजादी मिली है, जालसाजों को आजादी मिली है, शोषकों को आजादी मिली है, राजनेताओं को आजादी मिली है, तस्करों को आजादी मिली है, डकैतों को आजादी मिली है। पत्रकारों को आजादी मिली है कि अफवाहें उड़ाएं, अफवाहें फैलाएं। दंगा-फसाद करने वालों को आजादी मिली है। बड़ी बहुमुखी आजादी तुम्हें मिली है। बड़े आयाम हैं उसके। अराजकता उसका चुकता परिणाम हो रही है।
आजाद तुम कभी थे, तब भी तुम सुखी न थे। लेकिन तब एक फर्क था; वह फर्क यह
था कि कोई मानता था भाग्य, कोई मानता था पिछले जन्मों में किए गए दुष्कर्मों का फल। इसलिए कोई बगावत पैदा नहीं होती थी, कोई अराजकता पैदा नहीं होती थी। ब्राह्मणों ने जो जहर पिलाया था वह तुम्हारे रग-रेशे में समा गया था। वह जहर उखड़ गया। अंग्रेजों के साथ रह कर दो सौ, तीन सौ वर्ष वह जहर टूट गया। वे पुराने जाल ढीले पड़ गए; वह पुरानी अफीम कमजोर हो गई।
जिन लोगों ने भारत में आजादी का आंदोलन चलाया, वे पंडित-पुरोहित नहीं थे, न मौलवी-मुल्ला थे। वे कौन थे जिन लोगों ने भारत में आजादी का आंदोलन चलाया? वे वे लोग थे जो पश्चिम से शिक्षा लेकर लौटे थे। क्योंकि पश्चिम में उन्होंने देखा कि आदमी स्वतंत्र है। पश्चिम में उन्होंने देखा कि आदमी प्रगतिशील है। पश्चिम में उन्होंने देखा कि जंजीरें टूट जाएं तो आदमी की आत्मा में गरिमा पैदा होती है, गौरव पैदा होता है। पश्चिम में जो देख कर वे आए थे, स्वभावतः उन्होंने चाहा कि इस देश में भी वह हो जाए। लोग अपना जीवन दिए। लोगों ने कुर्बानी की--बड़ी आकांक्षाओं से, बड़ी आशाओं से। लेकिन उनकी सारी कुर्बानी पर पानी फिर गया। फिरना ही था। उन्होंने यह देखा ही नहीं कि आजादी ऊपर से नहीं थोपी जा सकती है। तुम पश्चिम से आजादी उधार नहीं ले सकते हो, न लोकतंत्र उधार ले सकते हो। ये चीजें ऐसी नहीं हैं वस्त्रों की तरह कि तुमने कपड़े बदल दिए और दूसरे कपड़े पहन लिए। आत्मिक रूपांतरण चाहिए। तुम्हारे मन की ईंट-ईंट बदलनी होगी।
और मजा ऐसा है कि तुमने अगर जहर भी पीया है तो अमृत समझ कर पीया है। और
आज भी बड़े पैमाने पर तुम्हारी भ्रांति बिल्कुल नहीं टूट गई है; शिथिल तो हुई है, लेकिन टूट नहीं गई है। अब भी तुम जहर को अमृत समझे हो। और जब तक तुम जहर को अमृत समझोगे, उसे छाती से लगाए रखोगे।
पूछा है किसी ने--ऊषा साठे ने--कि पूना के एक चौराहे पर ऊपर वाले की ओर
एक अंगुली का संकेत करती हुई साधु टी.एल.वासवानी की एक मूर्ति खड़ी है। उस मूर्ति के नीचे ये वचन लिखे हैं--गरीबों की सेवा है प्रभु की सेवा। यदि आपको सुख चाहिए तो सबको सुखी करो। इन वचनों पर आप क्या कहते हैं?
ये वचन देखने में तो प्यारे लगते हैं। और साधु टी.एल.वासवानी भारतीय परंपरा के प्रतीक साधु थे। परंपरा जैसे व्यक्ति को साधु कहती है, वैसे साधु थे। नीयत उनकी खराब भी न थी। नीयत पर मुझे कोई शक भी नहीं है। लेकिन ये वचन देखने में ही सुंदर मालूम पड़ते हैं; इनके भीतर उतरोगे तो कुछ और ही पाओगे। शायद टी.एल.वासवानी ने भी सोचा न हो। सोचने की बात ही हमने सदियों से छोड़ दी है, सोचने का धंधा ही हम नहीं करते। सोचने वाला तो दुश्मन मालूम पड़ता है, क्योंकि सोचने का अर्थ होता है--तुम्हारी बंधी हुई धारणाओं पर संदेह उठाना होगा; तुम्हारे पक्के आस्था के आधार डगमगाने होंगे। उन्हीं में तुम्हारी सुरक्षा है। तुम डरते हो, कहीं ये स्तंभ गिर गए तो हमारा क्या होगा?
लेकिन मेरी भी मजबूरी है। चाहे वचन कितने ही सुंदर हों, मैं तो उन वचनों के भीतर जो छिपा है उसे उघाड़ कर प्रकट करना चाहता हूं। वह चाहे कितना ही नग्न हो, कितना ही वीभत्स हो।
अब यह वचन कितना प्यारा है, "गरीबों की सेवा है प्रभु की सेवा!"
इसका मतलब यह हुआ कि जिस दिन गरीब न होंगे उस दिन प्रभु की सेवा कैसे करोगे? उस दिन प्रभु की सेवा बहुत मुश्किल हो जाएगी। उस दिन धर्म ही असंभव हो जाएगा। इसका यह अर्थ हुआः गरीब को मिटाना नहीं है, बनाए रखना है। सेवा करो, क्योंकि सेवा से मेवा मिलेगा। सेवा से स्वर्ग। मगर गरीब को मिटा मत देना, नहीं तो दुकान ही खराब हो गई, धंधा ही टूट गया। फिर न मेवा है, न

स्वर्ग है। तो गरीब को इतनी सेवा जरूर करना कि वह बचा रहे, मिट न जाए, समाप्त न हो जाए। और इतनी ज्यादा सेवा भी मत कर देना कि वह गरीब न रह जाए। इतनी ज्यादा सेवा भी अगर तुमने कर दी कि वह गरीब न रह गया तो फिर क्या करोगे?
नहीं, मैं यह नहीं कह सकता हूं कि गरीब की सेवा है प्रभु की सेवा। गरीबी को मिटाना है प्रभु की सेवा, अगर मुझसे तुम पूछो। गरीबी को जड़ से मिटा डालना है, आमूल मिटा डालना है। गरीबी के सारे आधार गिरा देने हैं। गरीबी बच न सके किसी कोने-कातर में।
सेवा! सेवा से तो बचेगी। सेवा से तो पोषित होगी। सेवा से तो मजबूत होगी। सेवा का तो अर्थ हुआ कि गरीबी का पौधा सूख न जाए। पानी सींचो; जरूरत पड़े, थोड़ी खाद भी दे दो। थोड़ी ही देना, ज्यादा भी मत दे देना, नहीं तो गरीब ही गया। वृक्ष अगर स्वस्थ हो गया तो फिर किसकी सेवा करोगे? तो करना थोड़ी सेवा--इतनी कि बना रहे, बचा रहे। बंद भी मत कर देना सेवा, नहीं तो मर जाए, सूख जाए।
तो दो चीजों से सावधान रहना, दो अतियों से बचना, मध्यम मार्ग सम्हालना। एक अति कि बिल्कुल सेवा बंद कर दी, गरीब मर गया। अब क्या करोगे? दूसरी अति, बहुत सेवा कर दी, गरीबी न रही, अब क्या करोगे? इन दो अतियों से बचना। बस बीच में चलना बिल्कुल। मध्य में, संयम साध कर, जैसे रस्सी पर कोई नट चलता है ऐसे सम्हाल कर। ज्यादा इधर भी न झुकना, उधर भी न झुकना। संतुलन बनाए रखना। तब कहीं प्रभु मिलेगा।
नहीं, मैं नहीं कहता गरीबी की सेवा। मैं कहता हूं, गरीबी को विनष्ट करना है, समाप्त करना है। और गरीबी को मिटा डालना ही प्रभु की सेवा है। एक ऐसी दुनिया चाहिए जहां कोई भी आदमी को जरूरत न रहे सेवा की। तुम खोजो तो भी कोई आदमी न मिले, जिसे सेवा की जरूरत है। वह दुनिया होगी सच्ची। वह दुनिया होगी धार्मिक। यह सेवा शब्द कोई बहुत अच्छा शब्द नहीं है। लोग स्वस्थ होने चाहिए, ताकि अस्पतालों की जरूरत न रह जाए। अभी समझाया जाता है, अस्पताल खोलो। मैं चाहता हूं कि अस्पतालों की जरूरत न रह जाए।
और यह गरीबों की सेवा तो तुम हजारों साल से कर रहे हो, गरीबी अपनी जगह है। तुम्हारी धारणाओं में बड़ी बुनियादी भूलें हैं।
दूसरी बात टी.एल.वासवानी ने कहीः "यदि आपको सुख चाहिए तो सबको सुखी करो।"
यह भी गलत है। बात तो ठीक लगती है, मगर लगने से धोखा मत खाना। यह बात-- यदि आपको सुख चाहिए तो सभी को सुखी करो--अगर तुम सभी को सुखी करने में लग गए तो कोई संभावना तुम्हारे सुखी होने की नहीं है। सब तो बहुत हैं, जिंदगी छोटी है। इस सत्तर साल की छोटी-सी जिंदगी में एक तिहाई तो नींद में चला जाता है, एक तिहाई शिक्षा में चला जाता है--शिक्षा, जो कि शिक्षा नहीं है! बचा-खुचा--दुकान करोगे, बाल-बच्चे पैदा करोगे, उनके शादी-विवाह करोगे, बीमारी है, एक से एक उपद्रव हैं--उसमें निकल जाएगा। कुछ और बचा-खुचा, तो रोज सुबह दाढ़ी बनाओ, मूंछ काटो, घिसते ही रहो।
सेठ बुधरमल स्टेशन गए। उनका छोटा भाई युद्ध में गया था। पांच साल बाद लौट रहा था। बुधरमल को देखा तो पहचान ही न पाया। कहने लगा कि ऐसा लगता है कहीं देखा है।
अरे--बुधरमल ने कहा--मूर्ख, मैं तेरा बड़ा भाई!
छोटे भाई ने कहा, लेकिन आपकी दाढ़ी इतनी बड़ी हो गई है, मूंछें इतनी बड़ी
हो गई हैं, बाल इतने बड़े हो गए हैं कि कभी शक होता है कि सिंधी हैं, कभी शक होता है कि सरदार हैं।
बुधरमल ने कहा, अरे हरामजादे, दो-दो गालियां एक साथ तो मत दे! और दाढ़ी- मूंछ न बढ़ाता तो करता क्या? मेरे विवाह में, दहेज में जो दाढ़ी-बाल बनाने का सामान मुझे मिला था, वह तो कमबख्त तू लेकर चला गया। सो मैं राह देख रहा हूं कि तू लौटे तो दाढ़ी बनाऊं।
यह तुम्हारी जो दीनता है, दरिद्रता है, यह तुम्हारी जो मनोदशा है आज, इसको अगर तुम समझो तो एक बात साफ हो जाएगी कि तुम्हारे पास समय कहां है कि तुम सबको सुखी करने जाओ। दाढ़ी-बाल बनाओ, खाना खाओ, पत्नी से झगड़ो, पत्नी

रोए तो उसे मनाओ, बच्चे की नाक पोंछो, स्कूल ले जाओ, स्कूल से घर लाओ--समय कहां बचता है? पूरा हिसाब तो लगाओ। फिर कुछ बच जाए, थोड़ा-बहुत समय है, तो जल्दी से घंटी वगैरह बजा कर भगवान की पूजा करो। किसी गरीब की सेवा करो, क्योंकि फिर मेवा नहीं मिलेगा। मंदिर भी जाओ, मस्जिद भी जाओ, जपुजी का पाठ करो, नमोकार मंत्र जपो। बैठे-बैठे राम-राम की धुन लगाओ। और इसके ऊपर से-- यदि आपको सुख चाहिए तो सबको सुखी करो। सबको! पांच अरब आदमी दुनिया में, भैया सोचो तो, इन सबको सुखी करने चलोगे तो तुम कब सुखी होओगे?
नहीं, मैं तुमसे कहता हूंः पहले तुम सुखी हो जाओ। और प्रत्येक व्यक्ति तो सुखी हो सकता है, अगर सुखी होना चाहे। तुम क्यों सुखी करो किसी को? तुम्हारे ऊपर कोई ठेका है, कोई जिम्मेवारी है? तुम सुखी हो जाओ। और यह भी मैं तुमसे कहता हूंः तुम सुखी हो जाओ, तो ही तुम किसी और को भी शायद सुखी कर पाओ। क्योंकि सुखी व्यक्ति सुख बांट सकता है। दुखी व्यक्ति केवल दुख ही बांटेगा। चाहे बांटना चाहता हो सुख, उसकी आकांक्षा सही हो, मगर परिणाम सही नहीं हो सकते। सुखी व्यक्ति ही सुख बांट सकता है, और दुखी दुख। जो तुम्हारे पास है वही तो बांटोगे न! जो तुम्हारे पास ही नहीं है उसे कैसे बांटोगे?
यूं समझो, इस वाक्य को ऐसा पढ़ोः यदि तुम धनी होना चाहते हो तो पहले सारी दुनिया को धनी करो। तब तुम को बिल्कुल समझ में आ जाएगा कि इस सूत्र का क्या मतलब है। पहले खुद तो कुछ पास हो, तो शायद तुम किसी के काम भी आ सको। इसलिए मैं तो अपने संन्यासी को कहता हूं कि तू अपने स्वार्थ को पूरी तरह ख्याल में रख। स्वार्थ पहले है। और स्वार्थ शब्द बुरा नहीं है। स्वार्थ शब्द बड़ा प्यारा है। स्वयं का अर्थ। आत्म-बोध उसका अर्थ है। क्योंकि उससे बड़ा कोई स्वार्थ नहीं है। स्वयं को जानना, स्वस्थ होना, स्वयं में स्थित होना स्वार्थ है।
तो मैं तो कहता हूंः स्वार्थी बनो। और उस स्वार्थ में ही वे फूल खिलेंगे जिनकी सुगंध दूसरों के नासापुटों तक पहुंच जाएगी, जिनसे हवा भर जाएगी। और तब शायद परार्थ भी हो सके। परार्थ स्वार्थ का परिणाम है। परार्थ स्वार्थ के विपरीत नहीं है। लेकिन तुम्हें सदियों से समझाया गया हैः परार्थ करो, परार्थ करो, स्वार्थी मत हो जाना। सो लोग परार्थ करने में लगे हैं। कोई धर्मशाला बना रहा है, कोई मंदिर बना रहा है, कोई अस्पताल खोल रहा है।
खुद की जिंदगी में नर्क है। खुद की जिंदगी में दुख ही दुख है। खुद के जीवन में कहीं कोई सूरज की किरण नहीं, न कोई पक्षी गीत गाते हैं, न कोई कोयल गुनगुनाती है, न कोई कुहू-कुहू की पुकार है, न कोई बांसुरी बजती है, न कोई झरना फूटता है, न कोई दीया जलता है, न कोई कमल खिलता है। खुद की जिंदगी तो बिल्कुल अंधेरी अमावस की रात और दूसरे की जिंदगी में रोशनी करने चले हो! जरा सावधान। इतने अंधेरे को लेकर कहीं किसी के जल रहे दीए को बुझा मत देना। और यही हो रहा है।
तुम्हारा दीया बुझा है, उसे तो जला लो, तो शायद तुम दूसरों के दीए भी जला सको। मगर खुद का बुझा हुआ दीया और तुम चले दूसरों के दीए जलाने!
नहीं, इस तरह के वचनों से मेरी कोई सहमति नहीं है।
एक सरदार जी भी आ गए हैं। यहां तो सिंधी पुराण चल रहा था, उसमें एक सरदार जी भी कूद पड़े। सरदार हैं तो बात तो उन्होंने बड़े पते की पूछी है। पूछा हैः आपके कल के प्रवचन में आपने प्रसंगवश क्राइस्ट द्वारा उपदिष्ट गरीबी की चर्चा की। मुझे लगता है कि आपने उसे भौतिक गरीबी के अर्थ में लिया। लेकिन वस्तुतः क्राइस्ट ने जिस गरीबी का उपदेश किया वह हृदय की गरीबी है। हृदय की गरीबी का अर्थ है--लोभ से मुक्ति; हालांकि उसका अर्थ इच्छा से मुक्ति नहीं है। मुझे खुशी होगी, यदि आप अपने अगले प्रवचन में यह सुधार कर लें। लेकिन यदि आप असहमत हों तो मुझे लिखें, ताकि मैं इसे विस्तार से बता सकूं।
हरिंदरपाल सिंह! वाहे गुरु जी की फतह, वाहे गुरु जी का खालसा! क्या प्यारी बात पूछी है! मगर यह भी समझने जैसी है। क्राइस्ट ने जो कहा है, मुझे भी पता है। और क्राइस्ट को बचाने की दृष्टि से मैंने ऐसा अर्थ किया; अगर

मैं वही अर्थ करूं तो क्राइस्ट बहुत झंझट में पड़ेंगे। क्राइस्ट ने कहाः ब्लेसिड आर दि पुअर इन स्प्रिट, फार देअर्स इज दि किंगडम आफ गॉड। धन्य हैं वे जो आत्मा में दरिद्र हैं, क्योंकि उन्हीं के लिए प्रभु का राज्य मिलेगा।
सो सरदार जी ठीक कह रहे हैं इस अर्थ में कि "आपने क्राइस्ट द्वारा उपदिष्ट गरीबी की चर्चा की, उसे आपने भौतिक गरीबी के अर्थ में ले लिया।" मैंने उसे भौतिक गरीबी के अर्थ में इसलिए लिया कि आत्मा तो दरिद्र न होती है, न हो सकती है। आत्मा और दरिद्र--असंभव! यह बात सुनी है कभी? यह तो क्राइस्ट को बचाने के लिए मैंने ऐसा अर्थ किया था। और तुम मुझसे सुधार करवाना चाह रहे हो! मैं तो कर दूं सुधार, क्राइस्ट पिट जाएंगे।
मैंने बहुत चेष्टा की है बचाने की, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मुझे रुख अपना बदलना पड़ेगा। मैंने गीता को बचाने की चेष्टा की है, महावीर को बचाने की चेष्टा की है, बुद्ध को, क्राइस्ट को, नानक को, सबको बचाने की चेष्टा की है। लेकिन अगर इस तरह के सरदारी सवाल मुझसे पूछे गए, तो मैं भी कृपाण उठा लूंगा। फिर सत श्री अकाल! फिर क्राइस्ट हों कि महावीर कि बुद्ध हों कि कृष्ण, फिर मैं किसी को देखूंगा नहीं। अगर सुधार करवाना है मुझसे तो मैं सुधार कर सकता हूं, लेकिन उसमें ध्यान रख लेना कि कौन-कौन पिट जाएंगे।
आत्मा और दरिद्र, यह बात ही मूर्खतापूर्ण है। आत्मा कैसे दरिद्र हो सकती है? दरिद्रता का संबंध तो केवल भौतिक से ही हो सकता है।
और सरदार हरिंदरपाल सिंह, तुमने यह भी कहा कि "क्राइस्ट जिस गरीबी का उपदेश कहते हैं उस गरीबी का अर्थ है लोभ से मुक्ति।"
लोभ से मुक्ति हो जाए तो आदमी अमीर होता है, गरीब नहीं होता। लोभ गरीबी है। लोभ होती ही गरीबी में है। लोभ की संभावना ही गरीबी के भीतर है। गरीब ही लोभी होता है। लोभ का मतलब क्या हैः जो मेरे पास नहीं, मुझे मिल जाए। लोभ यानी दरिद्रता। लोभ यानी भिखमंगापन। लोभ भिक्षापात्र है--और, और, और, और।
और तुम कहते हो, "जीसस का अर्थ है लोभ से मुक्ति।"
लोभ से मुक्ति होगी तो आत्मा का जो सम्राट-रूप है; वह प्रकट हो जाएगा। लोभ की गरीबी के कारण ही तो आत्मा की अमीरी छिपी है, आवृत है, आच्छादित है। मगर सरदार ही हो, तो तुमने और भी अपने हाथ से अपनी गर्दन कटवा ली।
तुम कहते हो, "हृदय की गरीबी का अर्थ है लोभ से मुक्ति, हालांकि उसका अर्थ इच्छा से मुक्ति नहीं है।"
गजब कर दिया! खूब दूर की कौड़ी लाए। अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर की सूझी। अगर लोभ नहीं है तो इच्छा कैसे बचेगी? लोभ और इच्छा का संबंध वैसे ही है जैसे सूरज और उसकी किरणें। सूरज अगर लोभ है तो किरणें इच्छाएं हैं। अगर सूरज न बचा तो किरणें कहां से बचेंगी? और अगर इच्छा बची तो लोभ बचेगा ही। लोभ के बिना इच्छाएं नहीं बच सकतीं। इच्छा अर्थात दरिद्रता।
वासना ही भिखारी में होती है; फिर भिखारी चाहे बहुत धन उसके पास क्यों
न हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। अगर वह और धन चाहता है तो भिखारी है। सवाल और का है।
सम्राट अकबर से शेख फरीद ने कहा था कि मैं तो सोचता था कि तुम अमीर हो, सम्राट हो, लेकिन तुम्हारी प्रार्थना सुन कर मैं चौंक गया। अकबर प्रार्थना कर रहा था, हे प्रभु, मुझे और धन दे! और राज्य दे! फरीद ने कहा कि मैं तो चौंक गया। मैं तो सोचता था कि तू बड़ा सम्राट है, मगर पाया कि तू तो बहुत गरीब है। अभी भी मांग रहा है।
फरीद ने कहा, मैं तो आया था अपने गांव वालों के कारण। गांव वालों ने कहा था कि सम्राट तुझे इतना आदर करते हैं, तू जाकर उनसे प्रार्थना कर दे कि हमारे गांव में एक छोटा-सा स्कूल खोल दें। हमारे बच्चे बेपढ़े-लिखे रह जाते हैं। तू कहेगा तो जरूर वे स्कूल खोल देंगे। तो मैं इसीलिए आया था। लेकिन अच्छा हुआ कि जब मैं आया तब आप प्रार्थना कर रहे थे, तो मैं पीछे खड़ा होकर सुनता रहा। और जब आपने हाथ आकाश की तरफ उठाए और परमात्मा से प्रार्थना की कि हे प्रभु, मुझे और दे--और धन, और राज्य, और समृद्धि--तो फिर मैंने सोचा कि

अब तुमसे यह कहना कि मेरे गांव में एक स्कूल खोल दो, उचित नहीं, क्योंकि उससे तो तुम और गरीब हो जाओगे। फिर मैंने यह भी सोचा कि जब तू खुद ही भगवान से मांग रहा है तो हम भी भगवान से ही मांग लेंगे, बीच में एक दलाल और क्यों लेना? दलाली भी चुकानी पड़ेगी।
फरीद वापस लौट गया। लाख अकबर ने कहा कि कोई अंतर नहीं पड़ता, मैं स्कूल खोल देता हूं, अरे विश्वविद्यालय बनवा देता हूं। लेकिन फरीद ने कहा, अब नहीं। तू तो खुद ही गरीब है, तुझसे क्या लेना? मरे को क्या मारना?
तुम कह रहे हो हरिंदरपाल सिंह, कि लोभ से मुक्ति हृदय की गरीबी का अर्थ है। लेकिन जब लोभ से मुक्ति होगी तो हृदय कैसे गरीब रह जाएगा? जब तक लोभ है तब तक हृदय गरीब है। जब लोभ गया तो हृदय अमीर हुआ।
और जीसस के वचन में हृदय नहीं है--ब्लेसिड आर दि पुअर इन स्प्रिट। वह
और गहरी बात है। हृदय अर्थ मत करो। ये तीन तल हैंः एक मन, एक दूसरा तल हृदय, और तीसरा तल आत्मा। जीसस कह रहे हैंः धन्य हैं वे जो आत्मा से दरिद्र हैं। यह बात ही नहीं हो सकती। दरिद्रता मन की होती है, क्योंकि मन में आकांक्षाएं होती हैं। और दरिद्रता हृदय की भी हो सकती है, क्योंकि हृदय में भी कामनाएं हो सकती हैं। मन धन मांगता है, हृदय प्रेम मांगता है, मगर मांगता है। और जहां मांगना है वहां मंगनापन है।
आत्मा कुछ भी नहीं मांगती। यही तो आत्मा का आनंद है। यही तो उसकी मुक्ति है।
अब तुम्हारी मर्जी हो तो विस्तार से और बता देना। सुधार तो मैंने कर दिया। तुम विस्तार से बताओगे तो मैं और थोड़ी धार कृपाण पर रखूंगा। मुझे तो कोई अड़चन नहीं है। मैं तो जो भी कह रहा हूं, अपने अनुभव से कह रहा हूं।
और मैंने सदा चेष्टा की है कि ये जो थोड़े-से ज्योतिर्मय व्यक्ति हुए हैं, इनकी किसी तरह से भी आलोचना न करूं, हालांकि इनमें बहुत कुछ आलोचना योग्य है। क्योंकि तुम्हारी सारी मुसीबत, तुम्हारी सारी परेशानी--यह जो नारायण प्रसाद ने पूछा है कि कहीं सुख के आसार नजर नहीं आते, सब जगह दुख ही दुख है, यह कैसी आजादी है--इसके पीछे तुम्हारे इन महापुरुषों का भी जाने- अनजाने हाथ है। क्योंकि इन सबने दरिद्रता का किसी तरह से सम्मान किया है; मिटाने की बात नहीं की। न तो महावीर ने, न बुद्ध ने, न कृष्ण ने, न राम ने, किसी ने भी दरिद्रता को मिटाने की बात नहीं की। दरिद्र को सम्मान देने की बात की है। दरिद्र की सेवा करने की बात की है।
और इन सारे लोगों ने तुम्हें एक तरह का भाग्यवाद सिखाया है, कर्मवाद सिखाया है। इसका परिणाम सिवाय अफीम के और कुछ भी नहीं है। और इन सबने तुम्हें सुस्त और काहिल बनाया है। और इन सबने तुम्हें इस तरह की बातें सिखाई हैं कि जो है सो ठीक है; अरे गुजार लो, चार दिन की जिंदगी है। इन सबका हाथ है, चाहे परोक्ष ही क्यों न हो, प्रत्यक्ष चाहे न भी हो। चाहे सीधे- सीधे इनकी नीयत ऐसी न भी रही हो। नहीं ही रही होगी। लेकिन सवाल नीयत का नहीं है, सवाल परिणाम का है। तुमने लाख सोचा था कि अमृत के बीज बो रहे हो, लेकिन अगर फल जहर के लगे तो फल ही प्रमाण हैं। फल से ही वृक्ष जाना जाता है। यह जो आज भारत की दशा है, इससे ही तो हम जानेंगे कि हमारे मनीषी क्या कर गए।
और जिन लोगों ने इस देश में आजादी की आकांक्षा की उनको भी अंदाज न था
कि वे क्या मांग रहे हैं। स्वतंत्र राजनैतिक दृष्टि से हो जाना बहुत कठिन नहीं है। आध्यात्मिक दृष्टि से स्वतंत्रता की संभावना ही इस देश में नहीं है। उस संभावना को पहले पैदा करना चाहिए। राजनैतिक आजादी तो दो कौड़ी की है, कभी भी ली जा सकती है और कभी भी खो भी सकते हो तुम। असली सवाल तो मानसिक गुलामी को तोड़ने का है। वह तो नहीं टूटी। नारायण प्रसाद, यह तो मैं भी कहूंगा कि वह नहीं टूटी।
ये दाग-दाग उजाला, ये शब-गुजीदः सहर
वो इंतजार था जिसका, ये वो सहर तो नहीं
ये वो सहर तो नहीं जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार कि मिल जाएगी कहीं न कहीं
फलक के दश्त में तारों की आखिरी मंजिल

कहीं तो होगा शबे-सुस्त-मौज का साहिल कहीं तो जा के रुकेगा सफीना-ए-गमे-दिलजवां लहू की पुर-असरार शाहराहों से
चले जो यार तो दामन पे कितने हाथ पड़े दियारे-हुस्न की बेसब्र ख्वाबगाहों से पुकारती रहीं बांहें, बदन बुलाते रहे
बहुत अजीज थी लेकिन रुखे-सहर की लगन
बहुत करीं था हसीनाने-नूर का दामन सुबक-सुबक थी तमन्ना दबी-दबी थी थक
नसुना है हो भी चुका है फिराके-जुल्मत-ओ-नूर सुना है हो भी चुका है विसाले-मंजिल-ओ-गाम बदल चुका है बहुत अहले-दर्द का दस्तूर निशाते-वस्ल हलाल-ओ-अजाब हिज्र हराम
जिगर की आग, नजर की उमंग, दिल की जलन
किसी पे चारा-ए-हिज्रां का कुछ असर ही नहीं
कहां से आई निगारे-सबा किधर को गई
अभी चिरागे-सरे-रह को कुछ खबर ही नहीं
अभी गिरानी-ए-शब में कमी नहीं आई
नजाते-दीदा-ओ-दिल की घड़ी नहीं आई
चले चलो कि वो मंजिल अभी नहीं आई
आजादी की आकांक्षा तो थी, मगर वह बात बनी नहीं। बन सकती नहीं थी, क्योंकि जिन्होंने आजादी की आकांक्षा की थी उन्होंने सोचा थाः सिर्फ शासन बदल जाए, गोरों की जगह काले लोग बैठ जाएं, तो सब ठीक हो जाएगा।
बात इतनी आसान न थी। गोरों की जगह काले लोग बैठ गए। और काले लोग और भी बदतर सिद्ध हुए। परायों की जगह अपने बैठ गए। और अपनों ने जो शरारत की, वह परायों ने भी कभी न की थी। परायों के दिल में भी थोड़ा दर्द था, अपने तो बहुत बेरहम निकले।
लेकिन जिम्मा उनका ही नहीं है सिर्फ नारायण प्रसाद, जिम्मेवारी हमारी
भी है। सारी जिम्मेवारी सत्ता पर सौंप देनी ठीक नहीं, क्योंकि वह भी गुलामी का ही एक लक्षण है। हमेशा जिम्मेवारी सत्ता पर छोड़ देनी कि शासन गलत है, इस बात की स्वीकृति है कि मेरे पास अपने ढंग से जीने का कोई सलीका नहीं, अपनी कोई शैली नहीं।
मैं अपने संन्यासियों से यही कह रहा हूं कि तुम अगर ध्यान को पा सको,
तो ही तुम्हारी जिंदगी में स्वतंत्रता का सूरज उगेगा। और तुम अगर समाधिस्थ हो सको, तो ही तुम्हारी जिंदगी में महासुख का सागर लहराएगा। बाहर ठीक है, कौन है सत्ता में और कौन नहीं है सत्ता में, बहुत अंतर नहीं पड़ता। सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। चचेरे-मौसेरे भाई। कोई बहुत भेद नहीं पड़ता। लेकिन अगर तुम अपने भीतर से गुलामी की सारी जंजीरें तोड़ डालो तो तुम, कितना ही दुख बाहर क्यों न हो और कितनी ही अंधेरी रात बाहर क्यों न हो, कम से कम खुद के भीतर का दीया जल जाए तो तुम तो रोशनी में जीओगे।
और तुम अगर रोशनी में जीओ तो शायद तुम और भी लोगों को रोशनी बांट सकते हो। एक दीए की ज्योति के पास आकर हजार दीए जल सकते हैं। इसलिए मैं तो व्यक्तिगत बगावत और व्यक्तिगत क्रांति का भरोसा करता हूं। मैं राजनैतिक और सामाजिक क्रांति का भरोसा नहीं करता। बहुत राजनैतिक क्रांतियां हो चुकीं और सब व्यर्थ गईं। मेहनत बहुत, परिणाम कुछ हाथ लगा नहीं। आजादियां कई बार आती रहीं और जाती रहीं; क्रांतियां होती रहीं, बुझती रहीं; और आदमी की मुसीबत वैसी की वैसी रही। बात बिगड़ती ही गई, बनी नहीं। अब तो हमें सोचना चाहिए, विचारना चाहिए कि यह सवाल सामाजिक व्यवस्था का कम मनुष्य की मानसिक व्यवस्था का ज्यादा है। मन को बदलना आवश्यक है।
एक अमरीकी टूरिस्ट ने जब नई दिल्ली के स्टेशन के बाहर एक मिट्टी के घड़े बेचने वाले आदमी को ऊंघता हुआ पाया तो उसे झकझोर कर जगाते हुए कहा, क्या तुम्हें होश है, तुम यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हो?
जी हां--जवाब मिला--मैं मिट्टी के बर्तन बेच रहा हूं।

टूरिस्ट बोला, यह भी कोई तरीका है दुकानदारी का? अरे जरा हाथ-मुंह धोकर चुस्ती से बैठो और आवाज लगाओ कि ये दुनिया के सर्वश्रेष्ठ बर्तन हैं। बर्तनों को खनखनाओ और कहो पांच साल की गारंटी, माल खराब निकलने पर दाम वापस। जल्दी करिए, स्टाक कम बचा है।
भारतीय कुम्हार ने अंगड़ाई लेते हुए पूछा, इससे क्या फायदा होगा?
टूरिस्ट ने बताया, इससे तुम्हारी दुकान पर ज्यादा ग्राहक आएंगे और ज्यादा बिक्री होगी। जितनी बिक्री होगी उतना ही ज्यादा मुनाफा होगा। आलसी दुकानदार ने कहा, फिर उससे क्या होगा?
विदेशी पर्यटक ने समझाया, ज्यादा पूंजी लगा कर तुम अपना धंधा बड़ा कर सकते हो। एक शानदार दुकान खोल सकते हो। अखबारों में विज्ञापन शुरू कर सकते हो। धीरे-धीरे तुम्हारे पास खूब धन हो जाएगा। और तुम एक बड़ा कारखाना खोल कर सारी दुनिया में अपना माल बेच सकते हो।
दुकानदार ने चेहरे पर बैठी मक्खियों को उड़ाते हुए कहा, तब फिर मैं क्या करूंगा?
अमरीकी बोला, तब! अरे तब तुम मजे से आराम करना।
कुम्हार ने एक जोर से जम्हाई ली और कहा, वही तो मैं अभी कर रहा हूं।
भारत को कुछ सीखना होगा। बहुत हो गया सिखाते-सिखाते दुनिया को तुम्हें। काफी दिन तुम दुनिया के गुरु रह लिए, अब थोड़े शिष्य हो जाओ। अब यह गुरुडम छोड़ो। दुनिया से बहुत कुछ सीखने जैसा भी है। आखिर सारी दुनिया में धन का अंबार फूट पड़ा है, कोई कारण नहीं कि हमारे पास धन का अंबार क्यों न फूट पड़े। लेकिन अड़चन हम हैं। हमें तो सब ऐसा लगता है कि मायाजाल, अरे इसमें क्या पड़ना! यह सब तो माया है! और ऐसा कहने से कुछ तुम्हारे भीतर से आकांक्षा मिट जाती होती तो भी ठीक था, वह भी नहीं मिटती। भीतर आकांक्षा में नए-नए अंकुर आते जाते हैं। भीतर वासना जगती है। मगर बाहर काहिलपन और सुस्ती के बचाव के लिए तुम कहे जाते हो सब माया है। और जब तुम संसार को माया कहोगे तो फिर कैसे संसार को तुम स्वर्ग बना सकते हो?
शंकराचार्य कहते हैंः ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या। यह जगत मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है। और यही प्रत्येक भारतीय की मनोदशा है।
फिर नारायण प्रसाद, माया है अगर जगत तो क्या करना-धरना? माया में क्या पड़े रहना? मगर रोटी माया नहीं है, कपड़े माया नहीं हैं, छप्पर तो चाहिए ही। बच्चे जब रोते हैं भूखे और प्यासे, तो माया नहीं है। पत्नी जब बीमार पड़ी हो और दवा चाहिए हो तो जगत माया नहीं है। और शंकराचार्य भी कोई जगत को माया मानते थे ऐसा लगता नहीं। कहना एक बात। एक शूद्र ने छू दिया, बस एकदम बिगड़ उठे कि मैं नहा कर आ रहा हूं गंगा और तूने सब खराब कर दिया, अपवित्र कर दिया! उस शूद्र ने कहा, महाराज, जगन्मिथ्या ब्रह्म सत्य। जब ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है तो कैसा शूद्र, कौन शूद्र, कौन ब्राह्मण?
मगर बातों की बातें हैं। बातें करने में हम कुशल हो गए हैं। अगर जगत मिथ्या है तो शंकराचार्य दिग्विजय करने किसलिए निकले थे? झंडा ऊंचा रहे हमारा! चले, सबको हरा कर रहेंगे! जगह-जगह विवाद खड़ा किया। जगह-जगह शास्त्रार्थ किया। जब जगत ही मिथ्या है तो किसको हराने चले हो? यहां कोई है ही नहीं। नाहक अकेले में ही बकवास कर रहे हो! खुद से ही एकालाप कर रहे हो! लेकिन ये बातें सिर्फ कहने की हैं।
मंडन मिश्र से विवाद हुआ शंकराचार्य का। विवाद का मुद्दा यही था--जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य। और मैं बड़ा हैरान हूं कि मंडन मिश्र भी कैसा गजब का मूर्ख आदमी कि इतना न कह सका कि अगर जगत मिथ्या है तो मुझसे विवाद क्या कर रहे हो? मैं हूं ही नहीं! एक धौल तो जमा सकता था कि अगर जगत मिथ्या है तो किसने मारा, किसको मारा? विवाद करने बैठ गया! विवाद क्या करना? इस आदमी को तो एकदम रास्ते पर लगाया जा सकता है। एक सेकेंड में। इससे विवाद क्या करना? जब जगत सत्य ही नहीं है तो कैसा विवाद? दक्षिण भारत से उत्तर भारत तक की यात्रा करके क्यों कष्ट झेला? माया में यात्रा चल रही है!
और फिर हमारे पास जब कुछ नहीं बचा तो हमारे पास थोथा दंभ बचा है।
सेठ चंदूलाल किसी सरकारी कार्य से इंग्लैंड भेजे गए। लंदन में बहुत बड़ी और खूबसूरत इमारत को देख कर ठिठक कर रह गए। उन्होंने पास ही में देखा

कि एक आदमी खड़ा है, जो लगातार एक के बाद एक सिगरेट पीए जा रहा है। चंदूलाल ऐसा अवसर नहीं छोड़ सकते थे। बड़े सैद्धांतिक आदमी हैं। भारतीय और सैद्धांतिक न हो, ऐसा होता ही नहीं। उस आदमी के पास जाकर पूछा, महोदय, मैंने अभी-कभी निरीक्षण किया कि आपने दस मिनट के अंदर तीन सिगरेटें फूंक डालीं। अरे कुछ तो सोचो! इस तरह अपने आचरण को भ्रष्ट कर रहे हो? धुएं में उड़ा रहे हो?
वह अंग्रेज बोला, हां, मैं चेन-स्मोकर हूं।शृंखलाबद्ध सिगरेट पीता हूं। दुनिया के सबसे बढ़िया सिगरेट पीने का आदी हूं।
चंदूलाल ने पूछा, इस सिगरेट का एक पैकेट कितने में आता है?
जवाब मिला, भारतीय मुद्रा के हिसाब से पचास रुपए में।
चंदूलाल ने कहा, बाप रे बाप! पचास रुपए में एक पैकेट! आप दिन भर में कितने पैकेट पी जाते हैं?
उस आदमी ने कहा, करीब दस पैकेट।
चंदूलाल बोले, गोविंद! गोविंद!! आप एक दिन में पांच सौ रुपयों का धुआं उड़ाते हैं! अर्थात एक माह में पंद्रह हजार का और एक साल में एक लाख अस्सी हजार का!
मारवाड़ी तो मारवाड़ी! हिसाब फैला दिया, पूरा बही-खाता खोल दिया। जरा यह
तो बताइए कि आप कितने वर्षों से धूम्रपान कर रहे हैं?
उत्तर मिला, बीस वर्षों से।
चंदूलाल ने कहा, हद हो गई। हे प्रभु, अब तो तू ही बचा। इसका मतलब यह कि
आप अब तक छत्तीस लाख रुपयों की सिगरेट पी चुके। अरे जरा सोचिए... । ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या! यह जगत तो मिथ्या है, ब्रह्म सत्य है। और मिथ्या को फूंक-फूंक कर धुएं में खराब कर रहे हो! छत्तीस लाख गंवा दिए! आपकी यह धूम्रपान की आदत, यह गंदी आदत न होती तो यह सामने जो शानदार इमारत खड़ी है, यह आपकी हो सकती थी।
अब देखना, जगत मिथ्या और सामने खड़ी हुई शानदार इमारत, यह आपकी हो सकती थी! उस अंग्रेज ने पूछा, श्रीमान जी, क्या आप सिगरेट नहीं पीते?
चंदूलाल ने कहा, छीः-छीः! पीने की बात, मैं कभी छूता तक नहीं, मैं सनातनधर्मी, सदाचारी, चरित्रवान भारतीय हूं। तुम जैसा फिरंगी नहीं, मलेच्छ कहीं के!
अंग्रेज ने कहा, क्या आपके पास ऐसा शानदार बेशकीमती भवन है? चंदूलाल
ने कहा कि नहीं भाई, ऐसा भवन तो मेरे पास नहीं है। मैं तो एक गरीब भारतीय हूं।
उस अंग्रेज ने नई सिगरेट सुलगाते हुए कहा, लेकिन यह भवन मेरा है।
मत पीओ सिगरेट, मत खाओ पान; इससे होगा क्या? थोथी बातों में यह देश अटका है। पानी छान कर पीओ। पर्यूषण में व्रत रखो। नमाज पढ़ो, हज कर आओ। काशी हो आओ। गंगा-स्नान करो। मगर इससे तुम्हारे जीवन में सुख तो न हुआ, न होगा। सुख हो सकता है, लेकिन यह सारी व्यर्थ की धारणाओं को छोड़ देना पड़ेगा। और चूंकि मैं इन धारणाओं को छोड़ने को कह रहा हूं, तुम्हें दुश्मन जैसा मालूम पड़ता हूं।
मैं तुम्हारा कल्याण-मित्र हूं। भीतर पहले आजादी आए तो बाहर भी आजादी फैल सकती है। स्वतंत्रता का सूत्रपात तुम्हारे केंद्र से होना चाहिए। फिर उसकी किरणें बाहर विकीर्ण हो सकती हैं। उसी क्रांति के मैं आधार रख रहा हूं।
नारायण प्रसाद, हिम्मत करो। अगर सच में तुम्हें अनुभव होता है कि यह कैसी आजादी है, तो मैं तुम्हें आजादी देना चाहता हूं। उस आजादी को चखो। अगर तुम कहते हो, यहां हर आदमी दुखी है और सुख के कोई आसार नजर नहीं आते, अगर सच में ही आसार नजर नहीं आते तो मैं तुम्हें आसार नजर दिला सकता हूं। न केवल आसार, बल्कि अनुभव करा सकता हूं। फिर हिम्मत करो। फिर डूबो। फिर इस गैरिक गंगा में उतरो। फिर संन्यास की स्वतंत्रता का स्वाद लो। संन्यास ही स्वतंत्रता है--एकमात्र स्वतंत्रता।

दूसरा प्रश्नः

आपने मेरे सब भ्रम दूर किए। अब न मुझे कोई परम पद का लोभ है और न ब्रह्मकुमारियों से भय। अब मैं आपकी शरण आता हूं। क्या आप मुझ सिंधी प्राणी कोस्वीकार करेंगे और संन्यास देंगे? मैं अपना शेष सब जीवन आपके संघ में समर्पित करना चाहता हूं। परंतु निवेदन है कि आप मेरा नाम पूर्णतः बदल दें, ताकि कोई मुझे पहचान न पाए और न ही सिंधी होने के कारण मेरा मजाक उड़ाए।
पुनश्चः सिर्फ एक ही बाधा है कि मेरा दामाद भी यहां मेरे साथ आया है
और वह संन्यास लेने में बाधा डाल रहा है। मैं क्या करूं क्या न करूं! आप जो कहेंगे वही करूंगा।

मेलाराम असरानी, यह तुमने क्या बात पूछी कि क्या मैं सिंधी प्राणी को स्वीकार करूंगा! सिंधी को तो सबसे पहले स्वीकार करता हूं। सिंधी तो यूं समझो कि आखिरी सोपान पर खड़ा ही है सिद्ध अवस्था के, जरा धक्का कि भवसागर पार! सिंधियों से मुझे प्रेम है--आदमी ही पहुंचे हुए हैं!
सेठ बुधरमल एक हलवाई की दुकान पर गए और बोले उससे कि एक बालटी मंगवाओ।
तो हलवाई ने कहा कि साहब, यह बालटी की नहीं, मिठाई की दुकान है। सेठ बुधरमल बोले कि भाई, पहले बालटी तो बुलाओ, फिर मिठाई भी लूंगा।
दुकानदार ने बालटी बुलवाई, तो सेठ ने कहा, इस बालटी में एक किलो हलवा डालो, एक किलो रबड़ी, पचास समोसे, सौ रसमलाई और दो लीटर दूध डालो।
जब सब डाल दिया तो साईं बुधरमल बोले, बरी, अब इसे एक फेंटे से फेंटो भी।
दुकानदार को गुस्सा तो बहुत आ रहा था, मगर यह सोच कर कि अपने को क्या करना, अगर इस सिंधी को ऐसे ही खरीदना है तो ऐसे ही खरीदे, अपना तो इतना सामान बिक रहा है। ऐसा सोच उस दुकानदार ने उस सबको खूब फेंट दिया। तब बुधरमल बोले, इसमें से पच्चीस पैसे का निकाल कर मुझको दे दो।
सिंधी तो सिद्ध पुरुष हैं!
सेठ बुधरमल ने अपने नौकर को हकीम बीरूमल के पास सिरका, एक रासायनिक द्रव्य लेने के लिए भेजा।
थोड़ी देर बाद नौकर हाथ में जूते लिए हुए लौटा। बुधरमल ने नाराज होकर कहा, अरे मूर्ख, यह क्या ले आया? मैंने तो तुझे सिरका लाने के लिए भेजा था न?
नौकर बोला, मालिक, कहा तो मैंने भी हकीम बीरूमल से कि मालिक ने सिरका मंगाया है, मगर वे जब बहुत ढूंढ़ने के बाद भी सिरका नहीं खोज पाए तो बोले कि अभी पैर का ही ले जाओ और इससे काम चलाओ। जब सिरका मिल जाएगा तो वह ले जाना। सेठ बुधरमल का लड़का जेऊ खट्टमल सिंधी की दुकान पर बिस्कुट खरीदने गया। कहा, काका, चारानीज जा बिस्कुट दे पारले जा। काका, चवन्नी के बिस्कुट दे पारले के।
खट्टमल ने बिस्कुट दिए तो लड़का बोला, हे त, नकली बिस्कुट आहिन। ये तो नकली बिस्कुट हैं!
खट्ट बोला, भजु ड़े भजु, जा रे जा! माण्हें-पिण्हें बि कदहिं पारले जा बिस्कुट खाधा हुआ, वापस करि। तेरे मां-बाप ने भी कभी पारले के बिस्कुट खाए थे, वापस कर।
जेऊ बोला, न न, इहेई दे भला। ये ही दे दो भला।
खट्टमल ने चवन्नी के बिस्कुट दे दिए और तभी चवन्नी देख कर क्रोध में पूरा हाथ का पंजा जेऊ की ओर बढ़ाते हुए खट्ट बोला, लखु लानत थी, भेणा लाख लानत हो! चारि आना बि खोटा। बिस्कुट दे वापस!
जेऊ भी आखिर सेठ बुधरमल का बेटा था, किसी और का तो नहीं! बिस्कुट तो चबा ही चुका था। हंस कर बोला, तू भी जा रे जा, तेरे बाप ने भी कभी चवन्नी देखी थी। कभी असली चवन्नी देखी थी!
सिंधी हो, स्वागत है। बात बनेगी। इस संघ में तुम रचोगे-पचोगे। यह तो सिंधियों की ही जमात है। जैसे तुम कह रहे हो न कि मेरा नाम बिल्कुल बदल दो, ऐसे ही इनके नाम भी बदल दिए हैं। हैं तो सब सिंधी ही। नाम ही नहीं बदल दिए हैं, इनके शक्ल-चेहरे भी बदल दिए हैं। तुम घबड़ाओ मत, तुम्हारी भी शकल और

चेहरा ऐसा बदलूंगा कि तुम्हारा दामाद ही पूछे कि स्वामी जी आपने मेरे ससुर जी को तो कहीं नहीं देखा? तुम घबड़ाओ मत, यह गोरखधंधा तो मैं करता ही हूं।
हकीम बीरूमल उन दिनों अपने उस्ताद दादा चूहड़मल फूहड़मल के शागिर्द थे।
एक दिन दादा उन्हें अपने साथ लेकर किसी मरीज को देखने गए। मरीज की नब्ज वगैरह देख कर दादा बोले, यह दोबारा बुखार मटर खाने से चढ़ा है।
अकेले में बीरूमल ने आश्चर्य से दादा से पूछा कि आखिर आपको कैसे पता चला? नाड़ी देख कर पता लगा लिया कि मटर खाए हैं? बुखार चढ़ने का कारण मटर? नाड़ी देख कर!
दादा बोले, बेटा, अरे यह बड़ी सरल बात है, बड़े राज की बात है। जब मैं रोगी की नब्ज देख रहा था तो मैंने देखा कि खाट के नीचे मटर के छिलके पड़े हुए हैं।
अगले समय दादा ने हकीम बीरूमल को उस मरीज को देखने भेजा। थोड़ी देर बाद बीरूमल घबड़ाए से भागे हुए आए और दादा से बोले, जल्दी चलिए, मरीज ने एक कुत्ता खा लिया है।
दादा बोले, क्या बकते हो! ऐसा कैसे हो सकता है?
बीरूमल बोले, जब मैं उसकी जांच कर रहा था तो मैंने देखा कि कुत्ते की जंजीर तो पलंग से बंधी है, मगर कुत्ता गायब है। बस मैं समझ गया कि हो न हो, जरूर इसने कुत्ते को खाया है।
अब तुम आ ही गए तो सिंधी होओ कि सरदार, कि दोनों भी एक साथ होओ, तो भी कोई फिक्र नहीं। सब बदल देंगे। तुम्हारा नाम बदल देंगे, तुम्हारी शकल बदल देंगे, तुम्हें कोई पहचान न सकेगा।
और दामाद तो दुष्ट होते ही हैं। और फिर सिंधी दामाद! अब दामाद की फिक्र मैं कर लूंगा, तुम चिंता न करो। और दामाद से बचने का यही एकमात्र उपाय है अब कि तुम संन्यासीहो जाओ।
बड़ा भयंकर जीव है, इस जग में दामाद,
सास-ससुर को चूस कर, कर देता बरबाद।
कर देता बरबाद, आप कुछ पियो न खाओ,
मेहनत करो, कमाओ, इसको देते जाओ।
कहं काका कविराय, सासरे पहुंची लाली,
भेजो प्रति त्यौहार मिठाई भर-भर थाली।
लल्ला हो इनके यहां देना पड़े दहेज, लल्ली हो अपने यहां, तब भी कुछ तो भेज।
तब भी कुछ तो भेज, हमारे चाचा मरते, रोने की एक्टिंग दिखा कुछ लेकर टरते।
काका स्वर्ग प्रयाण करे बिटिया की सासू, चलो, दक्षिणा देउ और टपकाओ आंसू।
जीवन भर देते रहो, भरे न इनका पेट,
जब मिल जाएं कुंवरजी, तभी करो कुछ भेंट।
तभी करो कुछ भेंट, जंवाई-घर हो शादी, भेजो लड्डू, कपड़े, बर्तन, सोना-चांदी। कहं काका हो अपने यहां विवाह किसी का, तब भी इनको देउ, करो मस्तक पर टीका। कितना भी दे दीजिए, तृप्त न हो यह शख्स, तो फिर यह दामाद है अथवा लेटर-बक्स? अथवा लेटर-बक्स मुसीबत गले लगा ली नित्य डालते रहो किंतु खाली का खाली। कहं काका कवि, ससुर नर्क में सीधा जाता, मृत्यु समय यदि दर्शन दे जाए जामाता।
और अंत में तथ्य यह कैसे जाएं भूल,
आया हिंदू-कोड-बिल इनको ही अनुकूल।
इनको ही अनुकूल मार कानूनी घिस्सा,
छीन पिता की संपत्ति से पुत्री का हिस्सा।

काका एक समान लगें जम और जंवाई,
फिर भी इनसे बचने की कुछ युक्ति न पाई।
काका को तो नहीं मिली, मगर साईं तुमको मैं देता हूं। संन्यास है इनसे बचने की युक्ति। इनकी बिल्कुल न सुनो। तुम संन्यास लो, इनसे मैं निपट लूंगा।
और यह डर रहे होंगे इसीलिए कि ससुर अगर संन्यास ले ले तो फिर ये सब जो घटनाएं घटती रहीं--यह मिठाई आना और यह थालियां आना--ये सब खतम। ससुर अगर संन्यासी हो जाए तो उलटे इनके चरण छूना पड़ें। स्वामी जी पधारें तो इनकी सेवा करो। जमाई बेचारा बाधा दे रहा होगा, यह स्वाभाविक है। और सिंधी जमाई है, तो गणित को समझ रहा होगा कि उलटा हो जाएगा पांसा।
तुम देर न करो भैया, मेलाराम असरानी। बड़ी मुश्किल से तुम्हें थोड़ी-सी सूझ आई है। कितने दांव-पेंच मुझे मारने पड़े, कितनी तुमने डंड-बैठकें लगवाईं! मगर चलो देर-अबेर आई। अरे सांझ का भूला... सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए या सांझ का भूला... सिंधी हो, सांझ का भूला अगर सुबह घर आ जाए, तो भी भूला नहीं कहाता। अब आ गए तुम अपने घर। मैं तैयार हूं, मुझे कोई अड़चन नहीं।

आखिरी प्रश्नः स्वामी स्वभाव जी हमें कभी-कभी दादा का व्यंग्य सुनाते रहते हैं कि दादा अपने सत्संग में माइयों की ओर इशारा करके कहा करते थे--तूं मूसां शादी कर, तूं मूसां शादी कर, तूं मूसां शादी कर--तुम मुझसे शादी करो--कृष्ण चवे गोपीअन खे! कृष्ण कहते हैं गोपियों को, ऐसा पीछे से जोड़ देते। और इन गोपियों को वे आगे कहते थे--बुडी मरो, बुडी मरो, बुडी मरो। डूब मरो, डूब मरो, डूब मरो--प्रेम जे प्याले में! प्रेम के प्याले में! पूना में एक ही दादा हैं--दादा वासवानी। और आपने तो उनके लिए कुछ कहा
ही नहीं, इसलिए तो अब पूना के सारे सिंधी नाराज हुए जा रहे हैं। कृपया कुछ कहिए।

दयाल भारती, दादा वासवानी को मैं जानता नहीं, पहचानता नहीं। इसलिए कुछ कहने में असमर्थ हूं। तुम स्वभाव से ही उनके संबंध में जांच-पड़ताल करो। ये भी बड़े खोजी हैं! जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ! ये भी डुबकी मार गए होंगे प्रेम के प्याले में, जब दादा ने कहा होगा। अनुभवी आदमी हैं। स्वभाव का ही सत्संग तुम साधो, दयाल भारती। मुझे वासवानी के संबंध में कुछ भी पता नहीं।
मैं तो सिर्फ एक ही दादा को जानता--दादा चूहड़मल फूहड़मल। और उनके संबंध में भी इसलिए कुछ कहता रहता हूं क्योंकि वे मरहूम हो चुके, कभी के मर चुके, तो कोई झंझट खड़ी कर नहीं सकते।
मरे भी बड़े ढंग से। अरे सिंधी जीए ढंग से, मरे ढंग से। उनकी खूबी यह थी
कि जो भी काम करते थे, उसमें पूरी तरह डूब जाते थे। आज से पच्चीस साल पहले उन्होंने एक कुआं खोदना शुरू किया, तब से उनका कुछ पता नहीं। जो भी काम करते थे उसी में डूब जाते थे! कहां गए कुएं में से वे, पता नहीं। बड़े सिद्ध पुरुष थे। उनको ही मैं जानता हूं। जबलपुर में उनका ही सत्संग करता था। वे अपनी खाट पर जमे रहते थे।
सिंधियों ने खाट भी अदभुत चीज खोजी! दुनिया में सब तरह का फर्नीचर होता है, मगर सिंधी सिर्फ खाट को मानते हैं। बस खाट पर ही बैठे रहते हैं; हुक्का गुड़गुड़ाते, खाट पर बैठे रहते, सत्संगी आस-पास बैठे रहते। कभी-कभी जब चढ़ जाता उनको ज्यादा, पीनक में आ जाते, तो कुछ ज्ञान की बातें कह देते थे। मतलब ज्ञान की होती थीं कि नहीं होती थीं, मगर शिष्य उनमें से ज्ञान निकाल लेते थे। उनको ही मैं जानता हूं, उसके अलावा कोई और दादा वगैरह से मेरी पहचान नहीं है।
दादा चूहड़मल फूहड़मल को कोई भयंकर रोग हो गया था। वे प्रसिद्ध चिकित्सक हकीम बीरूमल के पास पहुंचे। बीरूमल ने जांच-पड़ताल की और दवाइयां दीं। दादा ने पूछा, हकीम जी, और सब तो ठीक है, मगर भोजन में क्या लूं यह और बता दें।
बीरूमल बोले, भोजन वही लेना जो तुम्हारा तीन साल का बच्चा लेता है।

दादा बोले, तब तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी; क्योंकि वह तो मिट्टी, कोयला, मोमबत्ती, रबर आदि खाता है। और यह सब तो ठीक है, यह तो मैं कर लूंगा, मगर वह मां का दूध भी पीता है और वह जरा मुश्किल मामला है। वह मुझे पास ही न फटकने देगी। पहले तुम पीकर बताओ। अगर तुम सफल रहे तो मैं भी कोशिश करूंगा।
दादा चूहड़मल फूहड़मल के सिवाय और किसी सिंधी संत से मेरा सत्संग नहीं हुआ। दादा चूहड़मल फूहड़मल ने सड़क के बीचों-बीच खड़े तीन क्विंटल वजनी महामहिम मटकानाथ ब्रह्मचारी को आकर पीछे से टक्कर दे मारी। मटकानाथ जी गिरते-गिरते बचे। गुस्से से लाल आंखें दिखाते हुए बोले, क्या बात है साईं, ईश्वर ने आपको आंखें दी हैं, उनका उपयोग क्यों नहीं करते? क्या मेरी भारी- भरकम काया भी नहीं दिखती तो फिर तुमको क्या दिखेगा? इस तरह धक्का दे मारा! अरे सूरदास हो या नशे में हो? जरा बाजू से घुमा कर स्कूटर निकाल लेते तो क्या बिगड़ जाता तुम्हारा?
दादा ने कहा, क्षमा करें स्वामी जी, क्षमा करें। अब आप तो जानते ही हैं
कि पेट्रोल के दाम कितने बढ़ते जा रहे हैं, आसमान छू रहे हैं। और फिर भी लाख कोशिश करो, पेट्रोल मिलता नहीं। इतने दामों में भी नहीं मिलता। अब आपका चक्कर लगा कर निकलूं तो इतना पेट्रोल कहां से लाऊं? सो मैं आपकी टांगों के बीच से निकलने की कोशिश कर रहा था।
ऐसे पहुंचे पुरुष थे, सिद्ध पुरुष थे!
एक बार सेठ झामनदास और सेठ बुधरमल बाजार में मिले। कुशल-क्षेम के बाद झामनदास बोले, और सुनाइए बुधरमल जी, सुना है रोनाल्ड रीगन के आने के बाद अमरीकी विदेश-नीति में परिवर्तन की आशंका है।
बुधरमल आश्चर्य भरे स्वर में बोले, कौन रोनाल्ड रीगन?
झामनदास उसे लताड़ते हुए बोले, अरे आपने रीगन का नाम नहीं सुना? बुधरमल, तुम बुद्धू ही रहे! घर में ही घुसे रहते हो जी! रोनाल्ड रीगन अभी- अभी जिमी कार्टर को पराजित कर अमरीका के नए राष्ट्रपति चुने गए हैं।
कुछ दिनों बाद उन दोनों की फिर मुलाकात हुई। झामनदास बोले, कहिए बुधरमल जी, आपका क्या ख्याल है? लड़ाई में अमरीका की सहायता पाने के उद्देश्य से क्या खोमैनी बंधकों को रिहा करने पर राजी हो जाएंगे?
बुधरमल बोले, कौन खोमैनी, कैसी लड़ाई?
झामनदास बड़े ही तिरस्कार भरे स्वर में बोले, और घुसे रहो घर के अंदर! अरे ईरान-इराक में महीने भर से घमासान युद्ध चल रहा है, विश्वयुद्ध की आशंका खड़ी हो गई है, पूरा विश्व चिंतित है और तुम्हें कुछ खबर ही नहीं! घुसे रहो घर में!
तीसरी मुलाकात में झामनदास ने फिर पूछा, कहिए बुधरमल जी, यह टेस्ट सीरीज इंडिया जीतेगी या आस्ट्रेलिया?
बुधरमल बोले, कैसा टेस्ट?
झामनदास व्यंग्यपूर्ण ढंग से हंसे और बोले, हद हो गई! यार, क्या घर में
ही घुसे रहोगे जिंदगी भर? अरे यह भी पता नहीं कि इंडिया की क्रिकेट टीम आस्ट्रेलिया के दौरे पर गई हुई है और चारों ओर चर्चा है कि गावस्कर की बल्लेबाजी और लिली की गेंदबाजी का संघर्ष देखने योग्य होगा।
लगातार के इस प्रश्न-उत्तर से बुधरमल जी बहुत घबड़ा गए। चौथी बार जब फिर उनकी मुलाकात हुई तो बुधरमल जी ने झामनदास के पूछने के पहले ही पूछ डाला, यार झामनदास, दादा चूहड़मल फूहड़मल को जानते हो?
बहुत सोचने पर भी झामनदास न बता सके कि चूहड़मल फूहड़मल कौन हैं! आखिर बोले, कौन चूहड़मल फूहड़मल?
बुधरमल बोले, और रहो बेटा घर के बाहर! अरे चूहड़मल फूहड़मल वही जो दिन भर तुम्हारे घर में घुसा रहता है और जिसके बच्चों को तुम अपना बच्चा समझ रहे हो।
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
आठवां प्रवचन

स्वाध्याय ही ध्यान है

पहला प्रश्नः देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।।
देहाभिमान के गलने और परमात्मा के जानने के बाद जहां-जहां मन जाता है वहां-वहां उसे समाधि अनुभव होती है। इस सूत्र को समझाने की कृपा करें।

चिदानंद, यह वक्तव्य तो सूत्र कहे जाने योग्य नहीं है। यह तो मूलतः गलत है। संस्कृत में ही होने से कोई बात सही नहीं हो जाती। शास्त्र में ही हो जाने से कोई वचन सत्य नहीं हो जाता। सत्य के लिए कुछ अनिवार्य शर्तें पूरी करनी होती हैं। और यह सूत्र तो शर्तें पूरी करना तो दूर, अत्यंत मूढ़तापूर्ण भी है।
सोचो। सूत्र कहता हैः "देहाभिमान के गलने से... ।"
देहाभिमान कब गलता है? देहाभिमान क्या है?
मनुष्य के व्यक्तित्व को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है। पहला हिस्सा हैः देह। देह सत्य है। विज्ञान देह की खोज है, पदार्थ की। दूसरा देह के बाद तल है मन का। मन न तो सत्य है न असत्य; आभास है। मिथ्या है, असत्य नहीं। मिथ्या शब्द को ठीक से समझ लेना। मिथ्या का अर्थ होता है जो सत्य जैसा भासे लेकिन सत्य हो न। जैसे सांझ के धुंधलके में, कि भोर के कुहासे में, राह पर पड़ी हुई रस्सी सांप जैसी मालूम पड़ जाए और तुम भाग खड़े होओ। जहां तक तुम्हारे भागने का संबंध है, रस्सी ने वही काम कर दिया जो सांप करता। यह भी हो सकता है तुम गिर पड़ो, हड्डी-पसली तोड़ लो। यह भी हो सकता है कि तुम इतने घबड़ा जाओ कि हृदय का दौरा पड़ जाए, कि मर ही जाओ। इसका अर्थ हुआ कि जो सांप नहीं था उसने तुम्हारे प्राण ले लिए। जहां तक परिणाम का संबंध है वहां तक तो सांप सत्य मालूम होता है।
सूफी कहानी है, जुन्नैद नाम का अलमस्त फकीर--मंसूर का गुरु था जुन्नैद--बगदाद के बाहर ठहरा हुआ था। और एक सांझ उसने देखा कि जब रास्ता सो गया और गांव नींद में खो गया तो एक काली छाया, बड़ी विकराल, झोपड़े के पास से गुजरी--बगदाद में प्रवेश करने के लिए। जुन्नैद ने आवाज दी, ठहर, तू कौन है? उस काली छाया ने कहा, तुमसे क्या छिपाना! फकीरों से क्या छिपाना! और छिपाओ तो भी तो फकीरों से छिपेगा नहीं। मैं मौत हूं।
जुन्नैद ने पूछा, किसे मारना है?
मौत ने कहा, नाम-पते बताने बैठूंगी तो सुबह हो जाएगी। कम से कम पांच सौ व्यक्ति मारे जाने हैं। सुना तो होगा ही तुमने कि गांव में प्लेग फैली है! फकीर ने कहा, जैसी प्रभु की मर्जी। जा, तू अपना काम कर।
लेकिन आठ दिन के भीतर कोई पांच हजार आदमी मर गए। तो जुन्नैद थोड़ा नाराज हुआ कि मुझसे झूठ बोलने की क्या जरूरत थी। और जब आठवें दिन मौत वापस लौट रही थी, वही समय था, जुन्नैद ने फिर आवाज दी कि बेईमान, मुझसे झूठ बोलने की क्या जरूरत थी? अरे मुझे तो जैसे पांच सौ वैसे पांच हजार। मुझे तो जैसा जीवन वैसी मृत्यु। तू क्यों झूठ बोली? कहे थे पांच सौ और मारे पांच हजार! मौत ने कहा, क्षमा करें। मैंने तो पांच सौ ही मारे, शेष घबराहट में मर गए। अपने आप मर गए। दूसरों को मरते देख कर मर गए। मेरा उसमें कुछ हाथ नहीं है। लेकिन जब मर गए तो मुझे ले जाना पड़ा। उलटे मुझे ढोना पड़ा।
यह हो सकता है कि तुम बीमार को देख कर बीमार हो जाओ। अक्सर यूं होता है
कि चिकित्सक की शिक्षा पा रहे विद्यार्थी जिस बीमारी के संबंध में अध्ययन कर रहे होते हैं वही बीमारी विद्यार्थियों में फैल जाती है। यह आम मेडिकल कालेजों का अनुभव हैः जिस बीमारी का अध्ययन कर रहे होते हैं, उसका ही आभास उन्हें अपने भीतर होना शुरू हो जाता है। इसलिए तुम भी जरा अखबारों में और साप्ताहिक पत्रिकाओं में वे जो चिकित्सा के संबंध में जानकारियां होती हैं, बन सके तो उनसे बच जाया करो। नहीं तो अक्सर उनको पढ़ते-पढ़ते जैसे पेट-दर्द की बीमारी और तुम्हें अचानक लगेगा कि यह हुआ दर्द वह हुआ दर्द,

क्योंकि तुम पेट में तलाश करने लगोगे कि अपने पेट में तो कोई गड़बड़ नहीं है! और आभास शुरू हो जाएंगे।
मिथ्या का अर्थ होता हैः है तो नहीं, लेकिन प्रतीति हो सकती है। जो नहीं है उसकी भी प्रतीति हो सकती है। आखिर रोज हम स्वप्न देखते हैं, वह मिथ्या है। उसका अस्तित्व नहीं है, ऐसा तो नहीं कह सकते। अस्तित्व तो है, लेकिन अस्तित्व ऐसा नहीं है जैसा पहाड़ों का, पर्वतों का, चांद-तारों का। अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच में है। शरीर है, उसका अस्तित्व है। और जिस अर्थ में शरीर का अस्तित्व है उस अर्थ में आत्मा का अस्तित्व नहीं है। शरीर का आकार है, आत्मा निराकार है। वह तीसरा सत्य है--तीसरा पहलू। शरीर सगुण है, आत्मा निर्गुण है। शरीर दिखाई पड़ता है, आत्मा देखने वाला है। शरीर का विज्ञान बन सकता है, आत्मा विज्ञाता है। शरीर दृश्य है, आत्मा द्रष्टा है। इसलिए शरीर जिस अर्थ में है, आत्मा उस अर्थ में नहीं है।
यही कारण है कि विज्ञान आत्मा को अस्वीकार करता है, क्योंकि उसकी परिभाषा अस्तित्व की, शरीर के द्वारा निर्धारित होती है। और शरीर की भांति आत्मा नहीं है। और यही कारण है कि आत्मज्ञानी शरीर को इनकार करता है, क्योंकि उसकी परिभाषा आत्मा के द्वारा निर्धारित होती है। उसके लिए अस्तित्व का अर्थ है जो सदा रहे; जो शाश्वत हो; जिसका न जन्म हो न मृत्यु हो; जो कालातीत हो। यह परिभाषा शरीर पूरी नहीं कर सकता। इसलिए शरीर को वह कहता हैः नहीं है, माया है।
लेकिन मेरे देखे शरीर भी है, आत्मा भी है। उनके होने के ढंग अलग-अलग हैं, मगर दोनों हैं। इसलिए मेरे लिए विज्ञान भी यथार्थ है और धर्म भी। जगत भी सत्य है और ब्रह्म भी। इन दोनों के बीच में मन है, जो कि न तो है और न नहीं है। मन मिथ्या है। मन माया है। और मन ही दोनों को जोड़े हुए है। मन ही दोनों के बीच सेतु है। मगर इंद्रधनुष जैसा सेतु। देखते हो न, इंद्रधनुष पृथ्वी को और आकाश को जोड़ देता है! लेकिन अगर तुम जाओ इंद्रधनुष के करीब तो कुछ भी न पाओगे। कुछ भी नहीं। पकड़ोगे तो हाथ सिर्फ गीले हो जाएंगे। सूखे हाथ और गीले हो जाएंगे, क्योंकि इंद्रधनुष कुछ भी नहीं है।
इंद्रधनुष घटता कब है? वर्षा के दिनों में, जब सूरज निकल आता है, तब घटता है। वर्षा के दिनों में पानी के छोटे-छोटे जल-कण हवा में लटके होते हैं, हवा आर्द्र होती है। सूरज निकल आए और हवा में पानी के जल-कण लटके हों तो उन जल-कणों से सूर्य की किरणें प्रविष्ट होकर सात रंगों में विभाजित हो जाती हैं। वे जल-कण प्रिज्म का काम करते हैं। वे सूर्य की किरणों को सात खंडों में तोड़ देते हैं। ऐसे इंद्रधनुष निर्मित होता है। दूर से ही दिखाई पड़ेगा; जैसे-जैसे पास जाओगे, खोने लगेगा; बिल्कुल पास पहुंचोगे, दिखाई ही न पड़ेगा; हाथ से पकड़ोगे तो हाथ गीले हो जाएंगे, सिर्फ थोड़े-से जल-कण हाथ पर छूट जाएंगे, कोई रंग नहीं। लेकिन पृथ्वी को और आकाश को जोड़ता हुआ मालूम पड़ता है।
ठीक ऐसे ही मन एक इंद्रधनुष है, जो शरीर को और आत्मा को जोड़ता हुआ मालूम पड़ता है। उस प्रतीति में जो डूब गया उसे देहाभिमान पैदा होता है। देहाभिमान का अर्थ है कि मैं देह हूं, ऐसी अस्मिता जगती है। जिसकी यह अस्मिता टूट गई, जिसका यह भाव टूट गया कि मैं देह हूं, उसका तो मन टूट गया। अब मन को जाने की गुंजाइश कहां रही? मन बचा ही नहीं। मन टूटा तभी तो देहाभिमान टूटा।
और यह सूत्र कहता हैः "देहाभिमान के गलने और परमात्मा के जानने के बाद जहां-जहां मन जाता है... ।"
अब तो गजब हो गया! अब कैसे मन जाएगा? अब कहां मन जाएगा? अब तो मन बचा नहीं, जाएगा तो कैसे जाएगा?
"... वहां-वहां उसे समाधि अनुभव होती है।"
तो पहली तो बात, देहाभिमान के गलने पर मन बचता नहीं। दूसरी बात, परमात्मा के जानने के बाद समाधि तो सतत रहती है। परमात्मा से मिलन ही तो समाधि है। समाधि का और अर्थ क्या है? बूंद सागर में खो गई, बूंद अलग न बची, बूंद भिन्न न रही। इधर शरीर से संबंध छूटा उधर परमात्मा से संबंध जुड़ा। शरीर से वियोग और परमात्मा से योग--एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन्हीं दो

पहलुओं के कारण महावीर और पतंजलि ने अलग-अलग भाषा का प्रयोग किया है। पतंजलि कहते हैंः योग; परमात्मा से मिलना है तो योग साधना होगा। और महावीर कहते हैंः परमात्मा से मिलना है तो अयोग साधना होगा। दोनों सही कहते हैं, मगर दोनों की बात बड़ी भिन्न-भिन्न है, अलग-अलग पहलू की है।
महावीर कहते हैंः अयोग। अयोग अर्थात शरीर से वियोग। शरीर से जो संबंध
है वह तोड़ देना होगा, फिर बाकी तो बात अपने आप हो जाएगी। शरीर से संबंध टूटा कि परमात्मा से संबंध जुड़ा। बूंद ने अपनी सीमाएं खो दीं तो सागर हो गई। इसलिए महावीर कहते हैंः अयोग।
पतंजलि को मानने वालों को महावीर का वचन बहुत घबड़ाता है कि यह तो बड़ी उलटी बात हो गई, यह तो महावीर पतंजलि का खंडन कर रहे हैं। जो परम अवस्था है, उसको महावीर ने कहा है, अयोग केवली की अवस्था। कहां पतंजलि जो कहते हैं योग की परम अवस्था, महावीर कहते हैं अयोग की परम अवस्था। मगर दोनों एक ही बात कह रहे हैं, जरा भी भिन्न नहीं, जरा भी, किंचित मात्र भी भेद नहीं। एक तरफ से अयोग, शरीर से संबंध टूटा--महावीर का जोर इस पर है कि मन समाप्त हो जाए, शरीर से नाता छूट जाए। ऐसी प्रतीति न रह जाए कि मैं शरीर हूं, बस बात पूरी हो गई। पतंजलि दूसरे पहलू पर जोर देते हैंः परमात्मा से मिलन हो जाए, योग हो जाए। योग यानी जोड़।
परमात्मा को जान लेने के बाद, मिलन हो जाने के बाद, अब मन को जाने को जगह कहां बची? न मन बचा, न जाने को जगह बची। क्योंकि परमात्मा तो सभी जगह है। जो है सब परमात्मा है। उसे छोड़ कर जाओगे कहां? इसलिए यह सूत्र तो बड़ा मूढ़तापूर्ण है। फिर कहना कि जहां-जहां मन जाता है, वहां-वहां उसे समाधि अनुभव होती है--यह तो मूढ़ता पर भी और ऊपर सिरताज, औरशृंगार कर दिया। और मुकुट पहना दिया। वहां-वहां उसे समाधि अनुभव होती है। किसे? क्या मन को समाधि अनुभव होती है?
"जहां-जहां मन जाता है वहां-वहां उसे समाधि अनुभव होती है।"
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।
मन को और समाधि का अनुभव! यह तो बात निपट गंवारी की हो गई। मन को समाधि
का अनुभव नहीं होता; मन का मिट जाना ही समाधि का अनुभव है। और मन मिट गया तो परमात्मा से मिलन हो गया। अब कहां जाना है? अब तो सांस लोगे तो उसमें, उठोगे तो उसमें, बैठोगे तो उसमें, चलोगे तो उसमें, जीओगे तो उसमें, मरोगे तो उसमें। अब तो वही है, केवल वही है! तुम तो नहीं हो। इसलिए चिदानंद, यह सूत्र किसी ने भी कहा हो, इतना तय है, जिसने भी कहा है उसे समाधि का कोई अनुभव नहीं है।

दूसरा प्रश्नः स्वाध्यायान मा प्रमदः।
स्वाध्याय प्रवचनाभ्यम न प्रमदितव्यम्।।
अर्थात स्वाध्याय में प्रमाद मत करो, स्वाध्याय और प्रवचन में भी प्रमाद मत करो।
उपनिषद के इन बोध-वचनों को जीवन-विकास के लिए अनिवार्य बताते हुए बंबई स्थित श्री पांडुरंग शास्त्री आठवले जी बहुत समय से स्वाध्याय के नाम से सारे भारत में और विदेशों में भारतीय तथा वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान कार्य कर रहे हैं। गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र आदि शास्त्रों का एक जगह इकट्ठे होकर अभ्यास करना, पठन करना और प्रवचन द्वारा दूसरों को समझाने को वे स्वाध्याय कहते हैं। चित्त-एकाग्रता को ही वे ध्यान समझते हैं और मूर्ति-पूजा को ध्यान के लिए अनिवार्य मानते हैं। गीता के कृष्ण श्री योगेश्वर उनके आराध्य देव हैं। गांव-गांव कुटीर मंदिर बनाने की उनकी योजना है। वे मानते हैं कि यदि इस तरह हर गांव में भक्ति शुरू हो जाए तो समाज का नव-निर्माण होगा। और समाज के बदलने पर व्यक्ति आप ही बदलेगा। व्यक्तिगत रूप से साधना-ध्यान आदि करने की कोई जरूरत नहीं है। वे मानते हैं कि व्यक्ति को परिवार की, समाज की, देश की और विश्व की हरेक समस्या का समाधान सिर्फ गीता में से मिल सकता है। और इसलिए गीता का संदेश घर-घर तक पहुंचाना चाहिए।

आपको मिलने के पूर्व मैं भी बचपन से इस कार्य में उनके साथ था। तपोवन पद्धति पर आधारित उन्हीं के तत्वज्ञान-विद्यापीठ में मैंने चार साल तक शास्त्रों का अध्ययन किया। किंतु केवल शब्दों की जानकारी से सत्य का कोई अनुभव जीवन में न आते देख मैं विद्रोह करके वहां से निकल भागा। और इस कारण वे आज तक मुझसे नाराज हैं। मेरी मां भी उनके विचार को मानती हैं, वे भी नाराज हैं। आपके सान्निध्य में आज मुझे जो समाधान और आनंद मिला है, मैं चाहता हूं कि वह मेरे उन मित्रों को भी, जो मेरे साथ थे, मिले। वे आपकी किताबें भी पढ़ते हैं। आपके प्रवचनों के टेप्स भी सुनते हैं, आपके विचारों को भी वे अपना अर्थ निकाल कर अपने प्रवचनों में दोहराते हैं। किंतु वे यहां आकर इस गैरिक गंगा में डूबने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। अब भी वे गीता और अन्य शास्त्रों को दोहराते हैं और इसी को प्रभु-कार्य मान कर जीते हैं।
इन बातों पर प्रकाश डाल कर मार्ग-दर्शन करने की अनुकंपा करें।

आनंद किरण, पहली बात, "स्वाध्यायान मा प्रमदः। स्वाध्याय में प्रमाद
मत करो।"
यह सूत्र तो बहुमूल्य है। अमृत-घट है! एक घूंट भी कोई पी लेगा तो नौका पार हो जाएगी। लेकिन श्री पांडुरंग शास्त्री आठवले इसका जो अर्थ कर रहे हैं, वह अर्थ नहीं है, अनर्थ है।
"स्वाध्याय में प्रमाद मत करो।"
इसमें दो शब्द समझने जैसे हैं। पहला तो स्वाध्याय। इतना सीधा-सादा शब्द, मगर पंडितों के हाथ में जाकर हर चीज तिरछी हो जाती है। स्वाध्याय का अर्थ तो साफ हुआः अपना अध्ययन, स्वयं का अध्ययन, स्वयं का निरीक्षण। साक्षी-भाव स्वाध्याय का अर्थ है। न इसका कोई संबंध उपनिषद से है, न वेदों से, न गीता से, न कुरान से, न बाइबिल से, न धम्मपद से, न जिन-सूत्रों से। लेकिन पंडित यही करते हैं। अगर जैन पंडित से पूछोगे तो स्वाध्याय का अर्थ हैः महावीर की वाणी का अध्ययन, जिन-वाणी का अध्ययन। अगर बौद्धों से पूछोगे तो स्वाध्याय का अर्थ हैः धम्मपद का पठन-पाठन, मनन-चिंतन। अगर मुसलमान से पूछोगे तो स्वाध्याय का अर्थ हैः कुरान का पाठ, नियमित पाठ। और स्वाध्याय शब्द इतना सीधा-साफ है कि किसी से पूछने की कोई जरूरत भी नहीं।
स्वाध्याय का अर्थ हैः हमारे भीतर जो जगत है, चेतना का जो लोक है, उसका निरीक्षण। वहां ठहर कर देखना, अध्ययन करना, क्योंकि वहां बहुत कुछ घट रहा है। विचार चल रहे हैं, स्मृतियां गतिमान हैं, कल्पनाएं उठ रही हैं, वासनाएं जग रही हैं। बहुत भीड़-भाड़ है भीतर। कुंभ का मेला सदा ही लगा हुआ है। उसका अध्ययन, उसका निरीक्षण, अवलोकन। उसके प्रति जागरूक होना। यह स्वाध्याय का अर्थ है। इसका शास्त्रों से कुछ लेना-देना नहीं है।
हां, यह सच है कि जो स्वयं को जान लेगा वह सब शास्त्रों के अर्थ भी जान लेगा। लेकिन सब शास्त्रों का भी कोई अर्थ जान ले तो भी स्वयं को नहीं जान सकेगा। सच तो यह है सब शास्त्रों का अर्थ ही कैसे जान सकेगा? कुंजी ही हाथ नहीं, ताला कैसे खुलेगा? कुंजी तो है साक्षी-भाव। अपने भीतर बैठक मारनी है। और अपने भीतर परदे पर मन के जो चलता है उसे देखना है--बिना किसी पक्षपात के, बिना किसी निर्णय के, निष्पक्ष। जैसे वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में निरीक्षण करता है, ठीक वैसा ही निरीक्षण करना है स्वयं के भीतर।
और उस निरीक्षण का एक चमत्कार है, चमत्कारों का चमत्कार घटित होता है। इस जगत में इससे बड़ी और कोई चमत्कृत करने वाली घटना नहीं है कि मन का अगर सम्यक निरीक्षण किया जाए, सम्यक दर्शन किया जाए तो मन तिरोहित होने लगता है। यही आभास का लक्षण है। जिसको ठीक से देखने से जो तिरोहित होने लगे, वह आभास था। जैसे रस्सी में सांप दिखाई पड़ा था, अगर तुम लालटेन ले आते और गौर से देखते, क्या फिर भी तुम्हें सांप दिखाई पड़ता? लालटेन ले आते तो रस्सी दिखाई पड़ती, सांप दिखाई नहीं पड़ता। निरीक्षण करते कि सांप विलीन हो जाता; था ही नहीं, सिर्फ तुम्हारी भ्रांति थी; निरीक्षण में भ्रांति मर जाती, गल जाती।

स्वाध्याय का अर्थ हैः आत्म-निरीक्षण। और अप्रमाद का अर्थ हैः जाग कर, होशपूर्वक।
स्वभावतः, अगर स्वयं का निरीक्षण करना है तो जागरूकता चाहिए, अवेयरनेस चाहिए। कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैंः च्वाइसलेस अवेयरनेस, चुनावरहित जागरूकता। क्योंकि चुनाव किया अगर तुमने कि यह अच्छा, इसको बचा लूं, यह विचार अच्छा, यह कल्पना अच्छी, यह तो बड़ी मधुर, यह तो बड़ी प्रीतिकर; यह देखो कृष्ण कन्हैया बांसुरी बजा रहे हैं, इनको तो बचा लूं; यह दुष्ट फिल्म अभिनेत्री पीछे पड़ी है, इसको भगाऊं, यह यहां कहां घुस आई, इसको दो धक्के! मगर जिसको तुम धक्के दोगे वह लौट-लौट कर आएगा। जिसे तुम हटाओगे उससे तुम उलझ जाओगे। और जिसे तुम पकड़ कर रखना चाहोगे वह भागेगा।
मन के ये नियम हैं, क्योंकि मन का स्वभाव गति है। तुम किसी चीज को पकड़
कर नहीं रख सकते। तुमने अगर कृष्ण की प्रतिमा को पकड़ कर रखना चाहा, बस तिरोहित हो जाएगी, भाग जाएगी; फिर तुम रोओगे, गिड़गिड़ाओगे। इसको तुम भक्ति कहो, भावना कहो, जो तुम्हारी मौज हो कहो--मगर है सिर्फ रोना, गिड़गिड़ाना, कि मेरा खिलौना छिन गया। खिलौना भी नहीं था, खिलौने में भी कुछ यथार्थ होता है, सिर्फ कल्पना का जाल था। इसलिए ईसाई को क्राइस्ट दिखाई पड़ते हैं, कृष्ण नहीं दिखाई पड़ते। उसका खिलौना और है। हिंदू को कृष्ण दिखाई पड़ते हैं, क्राइस्ट नहीं दिखाई पड़ते।
अब पांडुरंग शास्त्री को क्राइस्ट दिखाई पड़ सकते हैं? दिखाई भी पड़ जाएं तो एकदम धक्के देकर बाहर निकाल देंगे, कि तुम यहां कहां घुसे चले आ रहे हो! मैं हूं पांडुरंग शास्त्री, कृष्ण का भक्त, योगेश्वर का भक्त! तुम यहां कहां चले आ रहे हो! समझो कि बुद्ध चले आएं, यूं ही टहलते हुए, सुबह तफरी को निकले हों, और पांडुरंग शास्त्री मिल जाएं तो थोड़ा झांक कर भीतर देख लें कि यहां क्या चल रहा है। फौरन क्रुद्ध हो जाएंगे पांडुरंग शास्त्री, क्योंकि बुद्ध तो वेद-विरोधी। महावीर चले आएं नंग-धड़ंग, बिल्कुल जंचेंगे न, कि यह कोई बात है, यह कोई सलीका है, यह कोई भारतीय संस्कृति है! अरे कम से कम लंगोटी तो लगा लो! आदमी को लंगोट का तो पक्का होना चाहिए। यह क्या, लंगोटी भी नहीं!
कल मैं अखबार में पढ़ रहा था खबर। महाराष्ट्र में एक गांव है सिरपुर, जहां आज सत्तर साल से अदालत में एक मुकदमा चल रहा है, दिगंबर और श्वेतांबर जैनों में। सत्तर साल से तो अदालत में चल रहा है, उसके पहले तीस साल तक अदालत के बाहर चला। मतलब पूरे सौ साल हो गए। असल में इसका उत्सव मनाना चाहिए सारे देश में। शताब्दी पूरी हो गई! और गजब का काम, सत्तर साल में सब वकील मर चुके, जिन-जिन ने भी मुकदमा हाथ में लिया दोनों तरफ से। सब मजिस्ट्रेट मर चुके। मजिस्ट्रेट-वकीलों की छोड़ो, सरकार भी बदल चुकी। जिन्होंने मुकदमा शुरू किया था वे मर चुके, उनके बेटे मर चुके। मगर उनके बेटे मुकदमा लड़ रहे हैं। मुकदमा जारी है। और बात यहां तक बढ़ गई कि एक बार मंदिर की महावीर की प्रतिमा तक को अदालत में गवाही देने आना पड़ा। सुनते हो, क्या-क्या गजब होते हैं! मंदिर पर ताला पड़ा हुआ है। झगड़ा क्या है? झगड़ा तुम सुनोगे तो बहुत हंसी आएगी।
झगड़ा लंगोटी का है, क्योंकि श्वेतांबर महावीर को लंगोटी पहना कर पूजते हैं और दिगंबर लंगोटी निकाल कर पूजते हैं। सवाल यह है कि लंगोटी पहनाई जाए कि न पहनाई जाए। फिर जब श्वेतांबर पहना देते हैं तो दिगंबर निकालें तो झगड़ा खड़ा होता है; जब दिगंबर निकाल देते हैं, श्वेतांबर पहनाएं, तो झगड़ा खड़ा होता है कि तुम हमारे भगवान को कैसे लंगोटी पहना रहे हो, वे तो दिगंबर हैं! और श्वेतांबर कहते हैं कि हम बामुश्किल तो लंगोटी पहना पाए--अब पत्थर की बैठी हुई पद्मासन में मूर्ति, उसको लंगोटी पहनाओगे तो दिक्कत तो होगी ही--बामुश्किल तो हम पहना पाए, अब तुम फिर निकालने लगे। रोज का धंधा।
सौ साल पहले यूं व्यवस्था थी कि समय बंटा हुआ था कि इतने घंटे दिगंबर लंगोटी निकाल कर पूजा करें, इतने घंटे श्वेतांबर लंगोटी पहना कर पूजा कर लें। मगर एक दिन बात बिगड़ गई, कोई ज्यादा भक्ति-भाव में आ गए। लंगोटी पहना कर पूजा करते ही गए, करते ही गए। दिगंबर आ गए, उन्होंने कहा, निकालो

लंगोटी। वह पूजा चलती ही रही, वे लंगोटी खींचने लगे। बात बिगड़ गई। लकड़ियां चल गईं, लहू बह गया। पुलिस के ताले पड़ गए।
फिर अदालत में सत्तर साल से मुकदमा चल रहा है। तुम हैरान होओगे, सिरपुर की छोटी-सी अदालत का मुकदमा प्रिवी कौंसिल तक जा चुका है। प्रिवी कौंसिल से फिर वापस भेज दिया गया है, क्योंकि निर्णय कैसे हो कि महावीर जो हैं वे लंगोटी पसंद करते हैं कि नहीं? दिगंबर अपने शास्त्र रख कर बताते हैं कि नंगे थे वे। श्वेतांबर अपने शास्त्र बताते हैं कि वे लंगोटी पहने हुए थे। तो फिर आखिर में यही हुआ कि उन्हीं को बुला कर देख लिया जाए। क्योंकि मूर्ति, अगर मूर्ति नंगी है तो जाहिर है कि मूर्ति बनाने वालों ने लंगोटी नहीं बनाई, नहीं तो पत्थर में लंगोटी बनाई होती। इसलिए मूर्ति को अदालत में लाया गया।
देखते हो गजब! गरीब महावीर के साथ क्या व्यवहार किया जा रहा है! एक रिक्शे में बैठ कर चले महावीर स्वामी, अदालत पहुंचे! मजिस्ट्रेटों ने निरीक्षण किया, वकीलों ने जिरह की, बड़ी भीड़-भड़क्का इकट्ठी हुई। मगर कुछ निर्णय करना मुश्किल हो गया। निर्णय करना इसलिए मुश्किल हो गया कि श्वेतांबरियों ने पलास्तर कर दिया। लंगोटी तो थी नहीं, मगर उनके पूरे शरीर पर पलास्तर चढ़ा दिया। अब तब से यह झगड़ा चल रहा है कि पलास्तर किसने चढ़ाया? और पलास्तर निकाला जा सकता है कि नहीं?
झगड़ा जारी रहेगा, इसका कोई अंत नहीं होने वाला है। झगड़ा इतना-सा है, अगर दिगंबर के ध्यान में लंगोटी लगा कर आ जाएं महावीर स्वामी, निकाल धक्के देकर बाहर करेगा कि हट, कमबख्त, यहां कहां चला आ रहा है लंगोटी लगाए? या श्वेतांबरी के मन में ध्यान कर रहे हों बेचारे और महावीर स्वामी चले आएं नंग-धड़ंग तो जल्दी से उठ कर लंगोटी पहना देगा कि भैया, कुछ तो ख्याल करो! स्वाध्याय में चुनाव नहीं किया जा सकता। जो भी मन में चल रहा हो, अच्छा या बुरा, नैतिक या अनैतिक, मान्यता के अनुकूल या प्रतिकूल, तुम निर्विकल्प, निर्विचार बने रहना। चलने देना मन के पर्दे पर, तुम निर्णय न लेना। तुम बैठे देखते रहना शांत-भाव से--निष्पक्ष, तटस्थ। जैसे कोई तट के किनारे बैठा और नदी को बहता देखता रहे, या राह के किनारे बैठा और राह को चलती हुई देखता रहे। अच्छे लोग भी निकलते हैं, बुरे लोग भी निकलते हैं, साधु-महात्मा जा रहे हैं, चोर-लफंगे जा रहे हैं। हालांकि तय करना मुश्किल है कि कौन साधु-महात्मा हैं, कौन चोर-लफंगे हैं। चोर-लफंगे साधु-महात्मा हो सकते हैं, साधु-महात्मा चोर-लफंगे हो सकते हैं। कुछ तय करना इतना आसान नहीं। निकलने दो मगर, तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम अपने झाड़ के नीचे बैठे देख रहे हो; हाथी-घोड़े निकल रहे हैं, गधे निकल रहे हैं, सब निकल रहे हैं। गधों पर बैठे हुए भी लोग निकलेंगे।
मोरारजी देसाई ने राजकोट में कहा--किसी ने पूछा कि अगर जनता आपको दुबारा प्रधानमंत्री बनाना चाहे तो आप बनने को राजी हैं? --उन्होंने कहा, अरे क्या प्रधानमंत्री बनने को, अगर जनता मुझे गधे पर बैठने को कहे तो मैं गधे पर बैठने तक को राजी हूं।
अब मोरारजी देसाई गधे पर बैठे चले जा रहे हैं! जनता का क्या है, जनता
कह दे। मैं कहता हूं कि बैठो! मैं भी जनता हूं, तुम भी जनता हो। तुम्हारे हाथ उठवा दे सकता हूं कि बैठो, भाई बैठो। मगर असली सवाल यह है कि गधे नहीं कह रहे, गधों से भी तो पूछो।
और बड़ी कठिनाई तो तब आएगी जब मोरारजी देसाई गधे पर बैठ कर निकलेंगे,
तो यह तय करना मुश्किल हो जाएगा कौन कौन है। सबसे बड़ी कठिनाई तब आएगी, पहचानना मुश्किल हो जाएगा।
चंदूलाल का बेटा अपने बाप से पूछ रहा था कि पिताजी, जब भी किसी की शादी होती है अपने गांव में, तो छोटे-छोटे बच्चों की भी शादी होती है तो भी उनको बड़े-बड़े घोड़ों पर बिठा देते हैं। अरे गधे पर बिठाएं तो अनुपात मालूम होता है।
चंदूलाल ने कहा, बेटा, बड़ा होगा जब तू समझेगा, ये बातें बड़ी गहरी हैं।

फिर भी बेटे ने कहा कि पापा, कुछ तो समझाओ, थोड़ा-बहुत जो समझ लूंगा, फिर याद रखूंगा, फिर बाद में पूरी बात समझ लूंगा। मगर अब जिज्ञासा उठ गई है तो कुछ तो समझाओ।
तो चंदूलाल ने कहा कि बात यह है बेटा, घोड़े पर बिठालते हैं दूल्हा को, गधे पर नहीं बिठालते, नहीं तो बेचारी वधू किसके गले में माला पहनाएगी। गधे पर गधा बैठा हुआ है, अब इसमें कौन दूल्हा है कौन गधा है? गधा न होता तो विवाह ही करने क्यों आता, पहला सवाल तो यह है। इसलिए घोड़े पर बिठालते हैं। अब तू ज्यादा बकवास न कर। बड़ा होगा, खुद ही समझ जाएगा।
बेटे ने कहा, मैं सब समझ गया। अरे मम्मी और आपका व्यवहार देख कर सब समझ में आ ही रहा है कि अगर आप गधे न होते तो क्यों विवाह किया होता!
यह जो स्वाध्याय की प्रक्रिया है, इसमें गधे निकलें, घोड़े निकलें, हाथी निकलें, निकलने दो। जैसे तुम फिल्म देखते हो, कुछ प्रयोजन नहीं। लेकिन फिल्म में भी प्रयोजन पैदा हो जाता है। फिल्म में भी ऐसे मौके आ जाते हैं कि तुम्हारी एकदम कुंडलिनी जगने लगती है। लोग सीधे होकर बैठ जाते हैं; कुर्सी पर टिके बैठे थे, फौरन समझ लो कि कुंडलिनी जग रही है, जब वे सीधे बैठ जाएं। फिल्म में ऐसे दृश्य आ जाते हैं कि फिर उनसे नहीं रहा जाता कि अब आराम से बैठे रहें। सांसें ठहर जाती हैं। एकदम सीधे होकर बैठ जाते हैं कि कहीं कोई चीज चूक न जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन फिल्म देखने गया था, पहली दफा देखने गया था। पहला
शो खतम हो गया, फिर टिकट खरीदी उसने। जाना-माना आदमी है। मैनेजर ने कहा, भई अभी ही तो तुम देख कर निकले हो!
मुल्ला ने कहा, एक दफा और। मैटिनी देख कर निकला था, फिर पहला शो देखा।
और जब पहला शो भी खतम हो गया, फिर बाहर आया, फिर टिकट खरीदने लगा।
मैनेजर ने कहा, कर क्या रहे हो! बहुत देखने वाले देखे, क्या तीसरा शो
भी देखोगे?
मुल्ला ने कहा, अरे तीसरा शो क्या, जब तक यह फिल्म लगी है तब तक देखूंगा। रोज देखूंगा, जितने शो होंगे उतने देखूंगा। मैं कुछ ऐसे हार मानने वाला नहीं।
मैनेजर ने पूछा, मैं कुछ समझा नहीं, क्या राज है?
उसने कहा, राज यह है, कि तुमने देखी होगी फिल्म। फिल्म में वह दृश्य आता है कि एक युवती अपने कपड़े उतार रही है तालाब के किनारे। बस सब उतार चुकी है, सिर्फ अंडरवियर रह गया है। उसका भी फीता खोल ही चुकी है और तभी एक दुष्ट रेलगाड़ी निकल आती है। तो रेलगाड़ी की वजह से स्त्री उस तरफ पड़ जाती है। और जब तक रेलगाड़ी जाती है तब तक वह स्त्री पानी में तैर रही है। मगर मैं कुछ ऐसे हारने वाला नहीं। अरे कभी तो रेलगाड़ी लेट होगी! यह हिंदुस्तान है, कोई रोज समय पर ही आएगी? कभी तो लेट होगी! मैं, जब तक लेट नहीं होने वाली, तब तक यहीं टिकूंगा। मैं तो देख कर ही जाऊंगा, पूरा ही खेल देखूंगा जब आ ही गया!
लोग फिल्म में भी तटस्थता खो देते हैं; वहां भी संयुक्त हो जाते हैं, जुड़ जाते हैं, तादात्म्य हो जाता है। और मन सिवाय फिल्म के और कुछ भी नहीं है। पुरानी याददाश्तें, स्मृतियां, भविष्य की कल्पनाएं--क्या है सिवाय मन के पर्दों पर फिल्मों का लंबा बहाव! उसे चुपचाप, शांत, मौन देखते रहने का नाम स्वाध्याय है। और स्वाध्याय की प्रक्रिया हैः प्रमाद मत करो। स्वाध्यायान मा प्रमदः।
प्रमाद न करने का अर्थ होता हैः मूर्च्छा न करो। प्रमाद का अर्थ हैः सोए-सोए रहना, सुस्त-सुस्त रहना, फीके-फीके जीना। अप्रमाद का अर्थ हैः जागे हुए जीना, ज्योतिर्मय जीना। भीतर का दीया जले, ऐसे जीना।
महावीर ने इस शब्द का बहुत प्रयोग किया है। महावीर ने ध्यान के लिए अप्रमाद ही कहा है। किसी ने पूछा महावीर से कि आपकी मुनि की परिभाषा क्या है और अमुनि की परिभाषा क्या है? महावीर ने इतनी सरल परिभाषा की! सत्य सदा ही सरल होता है। जो जानते हैं, वे उसे सरलता से ही कहते हैं। सिर्फ पंडित उसे उलझाते हैं, क्योंकि जानते नहीं। उसे इतना गोल-मोल करते हैं कि तुम यह न जान पाओ कि वे जानते नहीं हैं। जिसको ज्ञात है वह उसे सीधा-सीधा कह देता

है। महावीर ने दो छोटे-से सूत्र कहेः असुत्ता मुनि। सारे ध्यान की परिभाषा आ गई। असुत्ता मुनि! जो सोया नहीं है वह मुनि। सुत्ता अमुनि। और जो सोया है वह अमुनि। न दिगंबर आया इसमें, न श्वेतांबर आया इसमें। न रात को पानी पीयो या न पीयो, पानी छान कर पीयो कि न पीयो आया, कुछ भी न आया। बस सीधी-सी बातः जागो तो मुनि; सोओ तो अमुनि। जागो तो मोक्ष; सोओ तो संसार। अप्रमाद शब्द का महावीर ने बहुत प्रयोग किया है। अप्रमाद से उठो। अप्रमाद से बैठो। अप्रमाद से सोओ भी। सोते में भी भीतर कोई जागा ही रहे और देखता ही रहे।
स्वाध्याय में प्रमाद मत करो, क्योंकि प्रमाद किया कि स्वाध्याय खो जाएगा।
"स्वाध्याय और प्रवचन में भी प्रमाद मत करो।"
प्रवचन शब्द को भी समझना चाहिए। प्रवचन का अर्थ सिर्फ व्याख्यान नहीं होता। व्याख्यान तो कोई भी दे सकता है। पंडित जो देते हैं वह व्याख्यान ही है। ये पांडुरंग शास्त्री जो दे रहे हैं वह व्याख्यान है, प्रवचन नहीं। प्रवचन तो केवल बुद्ध के, प्रबुद्ध के, जागरूक के वचनों को कहते हैं। जिसने अपने को जान लिया है, उसके वचन को प्रवचन कहते हैं। जो जान कर कह रहा है, जीकर कह रहा है, अनुभवसिक्त है जिसकी वाणी। जो उपनिषद बोले होंगे वे जानते थे। उपनिषद प्रवचन हैं। लेकिन जो उपनिषदों की व्याख्या कर रहे हैं और जिन्होंने कुछ भी नहीं जाना, उनके वचन प्रवचन नहीं हैं। उनके वचन तो सिर्फ व्याख्यान हैं।
स्वाध्याय में जागे रहो और अगर सदगुरु के पास बैठो तो जागे रहो। क्यों, ये दो बातें क्यों जोड़ीं? क्या इतना ही काफी न था, स्वाध्याय में प्रमाद मत करो? इतने में ही बात पूरी नहीं होती थी? नहीं, नहीं पूरी होती थी। क्योंकि स्वाध्याय में तुम्हें यह पता चलेगा, मैं मन नहीं हूं। और प्रवचन से तुम्हें पता चलेगा, मैं कौन हूं। स्वाध्याय से नकारात्मक काम होगा, प्रवचन से विधायक काम होगा। आधा-आधा काम दोनों से होगा।
तुम यह तो अपने तईं जान सकते हो कि मैं मन नहीं हूं, लेकिन तब सवाल उठेगा कि मैं कौन हूं। उसका तुम्हें कौन बोध देगा? स्वाध्याय तुम्हें शून्य कर देगा, लेकिन पूर्ण कौन देगा? स्वाध्याय तुम्हें तैयार कर देगा, जैसे कि किसान खेत को तैयार करता है, घास उखाड़ देता है, जड़ें निकाल देता है, पत्थर हटा देता है; लेकिन बीज भी तो बोने पड़ेंगे। इतने से ही तो फसल न आ जाएगी। सिर्फ घास-पात उखाड़ देना ही तो गुलाब पैदा कर लेने के लिए काफी नहीं है। गुलाब के पौधे भी तो लगाने होंगे। वह कौन करेगा?
स्वाध्याय से शिष्य राजी हो जाता है, प्रवचन के योग्य हो जाता है, सुनने के योग्य हो जाता है--उपनिषद के योग्य हो जाता है। उपनिषद का अर्थ हैः गुरु के सान्निध्य में बैठना। गुरु कुछ बोले तो प्रवचन है, न बोले तो मौन प्रवचन है। गुरु का उठना-बैठना, चलना, भाव-भंगिमा, सब प्रवचन है। फिर गुरु के पास जागरूक होकर रहे, सदा जागा रहे, ताकि गुरु के इशारों को समझ सके, क्योंकि अब बातें इशारों से ही हो सकती हैं। मन तो उसने स्वाध्याय से समाप्त कर दिया। अब मन से मन की बात नहीं हो सकती। अब शब्द बहुत काम के नहीं हैं। अब तो शून्य से शून्य का संवाद होगा। वही प्रवचन है। अगर शब्द बोले भी जाएंगे तो निःशब्द की तरफ इशारा करने के लिए। अगर वाणी का उपयोग भी होगा तो मौन जगाने के लिए।
इसलिए दूसरी शर्त भी जोड़ीः स्वाध्याय और प्रवचन में भी प्रमाद मत करो।
यह सूत्र तो प्यारा है। जिसने भी कहा होगा वह बुद्ध पुरुष रहा होगा। मुझे कुछ प्रयोजन नहीं कि किसने कहा। उस सब में मैं पड़ता नहीं। इतना मैं कह सकता हूं जिसने भी कहा होगा उसने जान कर कहा है, जीकर कहा है। मेरे अनुभव से मैं गवाह बन सकता हूं, साक्षी दे सकता हूं कि मैं भी यही कहता हूं।
लेकिन तुमने पूछा आनंद किरण कि "उपनिषद के इन बोध-वचनों को जीवन-विकास
के लिए अनिवार्य बताते हुए बंबई स्थित श्री पांडुरंग शास्त्री आठवले जी

बहुत समय से स्वाध्याय के नाम से सारे भारत में और विदेशों में भारतीय तथा वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान कार्य कर रहे हैं।"
यह तो बात बड़ी उलटी हो गई। स्वाध्याय से भारतीय संस्कृति का क्या लेना-देना? और स्वाध्याय से वैदिक संस्कृति का क्या लेना-देना? इन मुर्दों को उखाड़ने की क्या जरूरत है? जो गया सो गया। और इनमें निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा है, उसका पुनरुत्थान करके क्या करोगे? लेकिन यही धोखा चलता है। अच्छे शब्दों की आड़ में, अच्छे शब्दों के पर्दे में कुछ भी चलता है, कुछ भी चलाया जा सकता है। लेबिल अच्छे लगाओ, फिर कोई फिक्र नहीं। फिर भीतर क्या है, कौन देखता है?
अब यह वैदिक संस्कृति, बीसवीं सदी में! क्या इरादे हैं? क्या फिर आदमी
को घसीट कर पीछे ले जाना है? क्या फिर आदमी को उन्हीं बचकानी बातों में उलझाना है कि जब खेत में पानी न गिरे तो इंद्र देवता का आवाहन करो। वैदिक संस्कृति में और कुछ है नहीं--देवताओं का आवाहन। और देवताओं के लिए क्या- क्या नहीं करोगे, सब तरह की खुशामद और रिश्वत करो। उनके लिए सोमरस लाओ। सोमरस यानी शराब जैसी कोई चीज। सोमरस पीएंगे देवता।
आल्डुअस हक्सले ने कहा है कि सोमरस कुछ एल.एसड़ी. जैसी चीज रही होगी। एल.एसड़ी. नवीनतम खोज है मादक द्रव्यों में। और आल्डुअस हक्सले एक विचारशील व्यक्ति थे, बहुत विचारशील, और भारत के प्रेमियों में से थे। सोमरस को उन्होंने कहा है कि प्राचीन समय का एल.एसड़ी.। और भविष्य में एक समय आएगा जब एल.एसड़ी. और भी विशुद्ध हो जाएगा। तो आल्डुअस हक्सले उसके लिए नाम अभी से दे गए हैंः सोमा। बनेगा तब बनेगा, मगर उस अंतिम सुसंस्कृत मादक द्रव्य के लिए नाम वे अभी दे गए हैंः सोमा। प्यारा नाम दे गए हैं, सोमरस के आधार पर।
पानी न गिरे तो यज्ञ करो। पानी ज्यादा गिरे तो यज्ञ करो। और यज्ञ भी क्या, उसमें घोड़ों को काटो--अश्वमेध यज्ञ! गऊओं को काटो--गौमेध यज्ञ। और मनुष्यों को काटो--नरमेध यज्ञ। यह सब हत्या फिर से शुरू करवानी है? बामुश्किल महावीर और बुद्ध इस वैदिक संस्कृति से इस देश का छुटकारा करवा पाए, बामुश्किल। फिर भी छूट नहीं पाई है पूरी, कहीं न कहीं अटकी रह गई है। अभी भी तुम खबरें सुनते ही रहते हो--यज्ञ हो रहे हैं। विश्व शांति के लिए कोई भी यज्ञ करवा रहा है। और विश्व में शांति अभी तक हुई नहीं। तीन हजार सालों में पांच हजार युद्ध लड़े गए हैं और तीन हजार सालों में भारत में कितने यज्ञ न हुए होंगे, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। शांति कहां होती है? तुम एकाध गांव में तो शांति करवा कर बता दो। गांव की बकवास छोड़ो, जो ब्राह्मण यज्ञ करवाने इकट्ठे होते हैं उनमें ही मारा-मारी होती है पीछे, क्योंकि कोई ज्यादा ले लेता है चढ़ाव कोई कम ले लेता है; किसी को कम मिला किसी को ज्यादा मिला। वहीं लट्ठ चल जाते हैं। वहीं कुश्तम-कुश्ती हो जाती है। वहीं भुजाएं फड़क जाती हैं। विश्व शांति के लिए युद्ध हो रहा था कि यज्ञ हो रहा था? क्या हो रहा था?
क्या विचार है? वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान की क्या जरूरत है? आदमी बहुत आगे बढ़ आया। आदमी ने बहुत प्रौढ़ता पा ली। अब इस आदमी को फिर से बच्चों के जांघिए पहनाओगे, बड़ा भद्दा लगेगा; ऐसा लगेगा कि हनुमान जी खड़े हैं-- जांघिया पहने हुए। पूंछ और लगा दो, पूरा पुनरुत्थान हो जाए। और स्वाध्याय से इसका क्या लेना-देना है?
और यहीं उपद्रव नहीं करते ये लोग, भारत के बाहर जाकर भी उपद्रव मचाते हैं। और इनकी बातें तुम्हें ठीक लगती हैं, क्योंकि सदियों-सदियों से तुम इनकी बातें सुनते रहे हो।
वे कहते हैं कि "गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र आदि शास्त्रों का एक जगह इकट्ठे होकर अभ्यास, पठन करना, प्रवचन द्वारा दूसरों को समझाना--यही स्वाध्याय है।"
इसका कोई स्वाध्याय से संबंध नहीं है। स्वाध्याय तो ध्यान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ध्यान ही स्वाध्याय है।
"और चित्त की एकाग्रता को वे ध्यान समझते हैं और मूर्ति-पूजा को ध्यान
के लिए अनिवार्य मानते हैं।"

अंधविश्वासों की भी हद होती है! अंधकार की भी सीमा होती है! मगर पंडितों के मन में इतना अंधकार होता है कि असीम ही कहो। चित्त की एकाग्रता और ध्यान! ध्यान है चित्त से मुक्ति, चित्त की एकाग्रता नहीं, चित्त की एकाग्रता से कैसे चित्त से मुक्त होओगे? चित्त की एकाग्रता से तो और चित्त मजबूत होगा। हां, चित्त इतना मजबूत हो सकता है कि तुम्हें कई शक्तियां उपलब्ध हो जाएं जो कल तक उपलब्ध न थीं। मगर उन शक्तियों का कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। चित्त की एकाग्रता से तुम दूसरे के चित्त के विचारों को पढ़ सकते हो। मगर अपना ही चित्त परेशान करने को काफी है, और दूसरों का कचरा पढ़ कर क्या करोगे? चित्त की एकाग्रता से ध्यान का दूर का भी नाता नहीं है। ध्यान है चित्त के प्रति साक्षी-भाव, एकाग्रता नहीं। एकाग्रता और ध्यान की प्रक्रिया बिल्कुल उलटी हैं। एकाग्रता का अर्थ होता है, चित्त को संकीर्ण करना, एक बिंदु पर केंद्रित करना, शेष सब को अलग कर देना, एक बिंदु को बचाना। और ध्यान का अर्थ होता है, चित्त के सारे ऊहापोह को छोड़ कर ऊपर उठ जाना, सारे द्वार-दरवाजे खुले छोड़ देने। सीमित नहीं करना है चित्त को, चित्त के ऊपर उठ जाना है। जैसे पक्षी उड़ता है आकाश में, तब उसकी विहंगम दृष्टि होती है। तब उसे सब दिखाई पड़ता है। जो हमें नहीं दिखाई पड़ता वह उसे दिखाई पड़ने लगता है। ऊंचाई उसकी ऐसी होती है। ध्यान ऊंचाई है, जहां से सब दिखाई पड़ने लगता है। एकाग्र चित्त तो सिर्फ एक चीज को देख सकता है, बाकी सब चीजों के प्रति अंधा हो जाता है। एकाग्र चित्त विज्ञान में उपयोगी है, धर्म में नहीं। विज्ञान का सारा का सारा आधार कनसनट्रेशन है, एकाग्रता है। और धर्म का आधार रिलैक्सेशन है, विश्राम है। और ये दोनों विपरीत यात्राएं हैं। विज्ञान जाता है बाहर की तरफ, धर्म जाता है भीतर की तरफ। मगर यह कुछ अकेले पांडुरंग शास्त्री की ही नासमझी नहीं है। यह इस देश
के पंडित-पुरोहितों की बुनियादी नासमझी है। योग पर किताबें लिखी जाती हैं, ध्यान पर किताबें लिखी जाती हैं--और परिभाषा ध्यान कीः चित्त की एकाग्रता। और फिर चित्त की एकाग्रता करनी है तो मूर्ति-पूजा को निश्चित ही अनिवार्य बताना होगा, क्योंकि किसी पर तो एकाग्र करोगे। या तो जप करो, जैसे महर्षि महेश योगी करवाते हैं, राम-राम राम-राम जपो, या ओंकार का जाप करो, या नमोकार का जाप करो, या अल्लाह-अल्लाह रटो। कुछ भी शब्द पकड़ लो और उसको धुने जाओ, धुने जाओ।
उसके बार-बार दोहराने से आत्म-सम्मोहन पैदा हो जाता है, एक तंद्रा आ जाती है। तंद्रा अच्छी लगती है क्योंकि चिंता छूट जाती है थोड़ी देर को। नींद में जैसा स्वास्थ्य मिलता है, उससे भी अच्छा स्वास्थ्य तंद्रा में मिलता है। क्यों? क्योंकि नींद आठ घंटे पर फैलती है और चित्त की एकाग्रता से अगर कुछ क्षणों के लिए भी तंद्रा आ जाए तो आठ घंटों का काम पूरा हो जाता है। इसलिए बाद में आदमी अपने को बड़ा स्वस्थ और ताजा अनुभव करेगा। यह सब ठीक है। अगर ताजगी के लिए, अगर स्वास्थ्य के लिए तुम चित्त की एकाग्रता कर रहे हो तो मुझे कुछ एतराज नहीं। मगर इससे समाधि न मिलेगी, न मोक्ष मिलेगा, न आत्मा का अनुभव होगा, न परमात्मा की प्रतीति होगी।
फिर अनिवार्य हो जाता हैः या तो नाम-जप करो और या फिर मूर्ति-पूजा। कोई मूर्ति, कोई प्रतिमा बाहर खड़ी करो, फिर धीरे-धीरे उसे भीतर ले जाओ।
पहले आंख खोल कर कृष्ण को देखते रहो घंटों और फिर आंख बंद करके देखने लगो।
प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि अगर एक खिड़की के पास बैठ जाओ और आंख खोल कर देखते रहो, फिर आंख बंद कर लो तो उसका निगेटिव बनेगा; फिर आंख बंद हो जाएगी तो भी खिड़की दिखाई पड़ती रहेगी। कम से कम खिड़की का खांचा दिखाई पड़ता रहेगा। एक फोटोग्राफर अपने एक मित्र के साथ बगीचे में बैठा था। अब हर विशेषज्ञ की अपनी भाषा होती है। फोटोग्राफर ही था। अपने मित्र के साथ बात कर रहा था--दोनों अमरीकी--और तभी एक नीग्रो वहां से निकला।
फोटोग्राफर ने कहा, अरे-अरे, देखो-देखो, निगेटिव जा रहा है!
फोटोग्राफर की भाषा, कि किसी ने बेचारे को पाजिटिव नहीं बनाया, निगेटिव ही छोड़ दिया। तुमने निगेटिव देखा है? फोटोग्राफी में अगर रस है तुम्हें तो जाकर फोटो उतरवा कर निगेटिव देखना, तब तुमको पता चलेगा कि अरे

निगेटिव में तुम नीग्रो हो! वह तो अच्छा हुआ, किसी ने पाजिटिव बना दिया।
इतना ही फर्क है, और कुछ नहीं। जरा रंग का फर्क है।
अगर तुम कृष्ण की मूर्ति पर ध्यान करोगे और वर्षों करते रहोगे और आंख बंद करके मूर्ति दिखेगी, तुम गदगद हो जाओगे। तुम कहोगेः अहा! आ गए भगवान।
कुछ आया-करा नहीं, सिर्फ निगेटिव हो गया पैदा। अब बैठे रहो इस निगेटिव को लिए। कृष्ण को न देखते, बुद्ध को देखते, तो बुद्ध का निगेटिव बनता। महावीर को देखते, महावीर का निगेटिव बनता। जिसको देखते उसका बनता। यह कुछ धर्म नहीं है, न ध्यान है।
और तुम कहते हो, "उनका विचार है गांव-गांव कुटीर मंदिर बनाने का।"
इस देश में कुछ मंदिर कम हैं? आदमी को रहने की जगह नहीं और मंदिर ही मंदिर भरे हैं। सारा देश मंदिरों से भरा हुआ है। और क्या जरूरत है और मंदिरों की? परमात्मा तो ऐसे ही रह सकता है आकाश में, खुले आकाश में ही रह रहा है, कोई जरूरत ही नहीं है उसको मंदिरों की। क्यों परेशान कर रहे हो लोगों को, क्यों परेशान हो रहे हो? चांद-तारों में बसा है, वृक्षों में बसा है, धूप में रचा है, पचा है, सब तरफ वही मौजूद है। क्यों इसे दीवारों में बंद करते हो? दीवारों की, छप्पर की आदमी को जरूरत है। कृष्ण की मूर्ति के लिए, कि महावीर की मूर्ति के लिए, कि बुद्ध की मूर्ति के लिए क्यों मंदिर खड़े करना?
ये सब मंदिर स्कूलों में बदल दो, अस्पतालों में बदल दो, आदमियों को दे दो। आदमी के पास छप्पर नहीं है, मकान नहीं है, रोटी नहीं है, रोजी नहीं है-- और भगवान के लिए प्रसाद लग रहा है! और मंदिर खड़े किए जा रहे हैं। रोज नए मंदिर खड़े किए जा रहे हैं। और इस देश में मंदिर तो सदा से रहे हैं, मंदिर ही मंदिर हैं; किसी भी गांव में जाकर देख लो, हर मोहल्ले में मंदिर हैं। अब और कोई कमी रह गई है मंदिरों की, कि वे कहते हैं कि गांव-गांव कुटीर मंदिर बनाना है!
"वे मानते हैं कि इस तरह हर गांव में भक्ति शुरू हो जाए तो समाज का नव-निर्माण होगा।"
भक्ति कितने समय से चल रही है भैया, भक्ति से ही तो सारी बरबादी हुई!
और भक्ति चलवाना है? भक्ति से ही तो पांच हजार साल में इस देश की यह दुर्दशा हो गई। काफी हो चुकी भक्ति। इतने हजार साल की भक्ति के बाद भी समाज का नव-निर्माण नहीं हुआ, अब तुम करोगे नव-निर्माण?

"और समाज के बदलने पर--उनका कहना है--व्यक्ति आप ही बदलेगा। व्यक्तिगत रूप से साधना-ध्यान आदि करने की कोई जरूरत नहीं है।"
यह तो पागलपन की बात हो गई। साधना तो सदा व्यक्तिगत ही होती है। क्योंकि आत्मा ही व्यक्ति के भीतर विराजमान है; समाज की कोई आत्मा नहीं है। सामाजिक अर्थ ही नहीं होता धर्म का कोई; धर्म तो व्यक्तिगत क्रांति है। धर्म राजनीति नहीं है। राजनीति समाज की होती है, इसलिए राजनीति में कोई आत्मा नहीं होती।
धर्म व्यक्तिगत है, वैयक्तिक है। धर्म में आत्मा की तलाश है, खोज है। व्यक्ति बदले तो समाज बदल सकता है, यह तो समझ में आता है, लेकिन समाज के बदलने से व्यक्ति नहीं बदलता। समाज तो बदलता ही रहा है, कितना नहीं बदल गया है समाज। मगर व्यक्ति कहां बदला? वही क्रोध है, वही लोभ है, वही मोह है, वही वासना है, वही अहंकार है। फिर चाहे अमरीका में रहो, चाहे रूस में रहो; समाज तो अलग-अलग हैं, मगर रूसी के पास कोई अहंकार कम है अमरीकी से? उतना ही अहंकार, वही अहंकार। वही जालसाजी।
कल मैं पढ़ रहा था कि नई से नई खोजें ये हैं कि स्टैलिन मरा नहीं, बल्कि उसकी हत्या की गई। और हत्या करने वालों में जो खास लोग थे वे उसके निकटतम लोग थे। ख्रुश्चेव उनमें एक था। चार आदमियों ने मिल कर हत्या की। ख्रुश्चेव एक था। बेरिया नंबर दो था। बेरिया उसका, गुप्त जो पुलिस थी रूस की, उसका प्रधान था। और दो और लोग। वे भी दोनों कम्युनिस्ट पार्टी के बड़े ऊंचे पदों पर से थे। इन चारों आदमियों ने मिल कर उसकी हत्या की।

चाहे समाजवाद हो, चाहे साम्यवाद हो, चाहे पूंजीवाद हो, बात तो वही चल रही है--वही हत्या, वही उपद्रव, वही बेईमानी, वही जालसाजी। समाज के बदलने से कुछ भी तो नहीं बदलता। व्यक्ति बदले तो ही कुछ बदल सकता है।
"और वे कहते हैं कि व्यक्ति को परिवार की, समाज की, देश की और विश्व की हरेक समस्या का समाधान सिर्फ गीता में मिल सकता है।"
गीता में कुछ प्यारे सूत्र हैं, मगर समय इतना बदल गया, परिस्थितियां इतनी बदल गईं कि जो व्यक्ति गीता में प्रत्येक समस्या का समाधान खोजने जाएगा वह सिर्फ अपनी विक्षिप्तता की घोषणा कर रहा है। और गीता में अगर हर चीज का समाधान है तो तुम्हें कौन रोकता था? पांच हजार साल से गीता तुम्हारे पास है, तुमने अपनी कौन-सी समस्याओं का समाधान कर लिया? जितनी समस्याएं हमारे देश में हैं उतनी समस्याएं दुनिया में कहीं नहीं हैं। और गीता तुम्हारे पास है, कर लो समाधान। साइकिल का पंक्चर भी हो जाएगा, उसका भी साल्यूशन न बना पाओगे। गीता में समाधान कहां से खोज लोगे? कैंसर का इलाज कहां से ले आओगे? फैक्ट्रियां खड़ी करनी हैं, ये कैसे बनाओगे?
और गीता ने जो समाधान उस दिन दिया था वह भी समाधान कहां सिद्ध हुआ? धर्मशास्त्रों के अनुसार गीता के समाधान का कुल परिणाम इतना हुआ कि सवा अरब आदमी युद्ध में मरे; यह समाधान था! यह कृष्ण महाराज की कृपा है! यह उनकी अनुकंपा है! सवा अरब आदमी युद्ध में मरे। और कृष्ण के समझाने के बाद और कृष्ण की मौजूदगी में यह समाधान हुआ! कृष्ण कुछ भी तो हल न कर पाए, क्या हल हुआ?
और क्या तुम सोचते हो, अर्जुन को कुछ बुद्धि आई? क्योंकि कथा तो कुछ और कहती है। कथा यह कहती है कि जब इनका स्वर्गारोहण हुआ, तो सब गल गए रास्ते में ही, सिर्फ युधिष्ठिर और उनका कुत्ता स्वर्ग के द्वार तक पहुंचे। बाकी सब गल गए, अर्जुन भी गल गया! यह कृष्ण के साथ जिंदगी भर रहा, गीता इसने कृष्ण से सुनी, यह भी स्वर्ग तक न पहुंच पाया! क्या खाक समाधान? यह भी रास्ते में ही गल गया। कुत्ता भी आगे निकल गया। मतलब कुत्ता भी गीता ज्यादा समझा। ये सब गल गए रास्ते में। रास्ते में गल जाने का मतलब यह है कि स्वर्ग तक की यात्रा पूरी न हो पाई, समाधि तक की यात्रा पूरी न हो पाई। समाधान क्या हुआ?
और कृष्ण के मरने के बाद, जिन यादवों के वे नेता थे, उनकी क्या गति हुई? वे सब आपस में कट मरे। महाभारत के बाद भारत उठ ही नहीं सका, भारत की रीढ़ टूट गई। उसका सारा जिम्मा कृष्ण पर है और गीता पर है। गीता ने भारत को जो समाधान दिया, वह समाधान नहीं था। उससे भारत की आत्महत्या हो गई। उसके बाद भारत कभी अपनी ऊंचाइयों को फिर से नहीं छू सका।
मगर हम तो अजीब लोग हैं। हम तो एक से एक बातें माने चले जा रहे हैं। मेरे पास पांच-सात दिन पहले एक पत्र आया कि अगर आप भगवान हैं और किसी स्त्री की लाज लुट रही हो और कोई उसकी साड़ी निकाल रहा हो तो आप उसकी साड़ी बढ़ा सकते हैं कि नहीं? कृष्ण भगवान ने साड़ी बढ़ा दी थी, जब द्रौपदी की साड़ी खींचने लगा दुर्योधन।
पहली तो बात यह है कि ये साड़ियां सब लाए कहां से? ये दूसरों की स्त्रियां जो नहाती रहीं यमुना में, उनकी साड़ियां इकट्ठी करते रहे। फिर उन्हीं में गांठ बांध-बांध कर द्रौपदी तक पहुंचाई होंगी। साड़ियां कहां से लाए? और बड़ा मजा यह है कि ये खुद तो स्त्रियों की साड़ियां चुरा कर झाड़ों पर चढ़ें तो लीला, और वही बेचारा दुर्योधन भी सोचा कि थोड़ी लीला मैं भी करूं, तो उसको लीला न करने देंगे! खुद ही लीला करेंगे।
न तो भैया मैं किसी की साड़ी चुराता और न किसी की साड़ी बढ़ाता। साड़ी का धंधा ही नहीं करता। यह क्या साड़ी का धंधा मचा रखा है?
और कृष्ण का जीवन कौन-सा ऐसा जीवन है जिसको कोई इतनी महिमा दो? ऐसा क्या है? और गीता में ऐसी कौन-सी नई बात है? जो भी मूल्यवान है वह सब उपनिषदों से उधार है। और जो भी मूल्यहीन है वह शायद कृष्ण का अपना हो; वह मौलिक मालूम होता है। और गीता तो इतने दिन से है, हल करके दिखाओ कुछ, कोई तो समाधान करके दिखाओ।

कुछ हल गीता वगैरह से होने वाला नहीं है। इस तरह की भ्रांतियों में अब
मत जीओ। भारत को चाहिए आधुनिक टेक्नोलॉजी, आधुनिक शिक्षा, विज्ञान, ताकि भारत की बाहरी समस्याएं हल हो सकें; और भीतर के लिए चाहिए ध्यान, समाधि, ताकि भीतर की समस्याएं हल हो सकें। विज्ञान और ध्यान, दो चीजें पर्याप्त हैं। न गीता की कोई जरूरत है, न कुरान की कोई जरूरत है, न बाइबिल की कोई जरूरत है।

आखिरी प्रश्नः जिस प्रकार शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कहा जाता
है उसी प्रकार मुझे स्वामी आनंद स्वभाव भी प्रच्छन्न सिंधी लगते हैं। आपका क्या विचार है?

सोहन, माई, तूने तो सच्ची बात का पता लगा लिया। मैं डरता था कि कोई न कोई पता लगा ही लेगा। और तूने गजब कर दिया। बेचारी ऊषा, उनका सत्संग करते- करते जमाना बीत गया, बाल-बच्चे पैदा हो गए, वह भी पता न लगा पाई कि ये सज्जन सिंधी हैं। और तूने दूर से ही, आकाश में उड़ते पक्षी को पहचान लिया कि हो न हो, यह स्वभाव प्रच्छन्न सिंधी हैं।
हैं! इसमें दो मत नहीं हो सकते। मैं तेरी बात पर सील-मोहर मारता हूं।
और हों भी क्यों न? स्वामी आनंद स्वभाव सिद्ध पुरुष हैं। सो सिंधी तो होंगे ही। अरे जब तक बिंदु में सिंध न समाए, जब तक सिंध में बिंदु न समाए, तब तक कोई सिद्ध हो सकता है? और जिसके बिंदु में सिंध समा गया वह सिंधी! सिंधी का और क्या अर्थ होता है? पहुंचे हुए सिद्ध पुरुषों का नाम है। इसीलिए तो सिंधियों को साईं कहते हैं।
स्वामी आनंद स्वभाव जब पहले-पहल पूना आ रहे थे तब की घटना है। वे ऊपर
की बर्थ पर सोए हुए थे, नीचे खिड़की के पास चिम्मणराव खड़खड़े भी बैठे हुए थे। एक जगह गाड़ी रुकी तो स्वामी ने पूछा कि भाई, कौन-सा स्टेशन है? चिम्मणराव खड़खड़े पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, सो उन्होंने कहा, मला काय माहीत! मुझे क्या मालूम! स्वामी समझे मला काय माहीत स्टेशन का नाम होगा। सो वे फिर सो गए। घंटे भर बाद फिर स्टेशन आया, स्वामी ने फिर स्टेशन का नाम पूछा और चिम्मणराव खड़खड़े ने फिर कहा, मला काय माहीत! स्वामी जरा हैरान हुए कि यह दूसरा स्टेशन भी मला काय माहीत कैसे हो सकता है! लेकिन फिर यह सोच कर कि अगर राष्ट्र में महाराष्ट्र हो सकता है तो दो मला काय माहीत भी हो सकते हैं। वे पांव पसार कर फिर सो गए। थोड़ी देर बाद फिर स्टेशन पर गाड़ी रुकी और स्वामी ने फिर स्टेशन पूछा और चिम्मणराव खड़खड़े ने फिर कहा, मला काय माहीत! अब स्वामी से न रहा गया। अरे सिंधी तो सिंधी! कब तक सहें, उछाल मारी, कूद पड़े नीचे। आव देखा न ताव, उतर कर चिम्मणराव खड़खड़े को पीटना शुरू कर दिया। तो चिम्मणराव खड़खड़े चिल्लाए, मारतो कसाला? मारता क्यों है! स्वामी आनंद स्वभाव ने दम लेते हुए कहा, पहले ही क्यों नहीं बोला कि इस स्टेशन का नाम मारतो कसाला है! अरे जब पूछा तब बोला मला काय माहीत और अब बोलता है मारतो कसाला! बेवकूफ बनाने की भी हद होती है! अरे तूने क्या मुझे सिंधी समझा है?
छिपाने की कोशिश तो वे बहुत कर रहे हैं, मगर सोहन माई, तू पहचान गई। स्वामी आनंद स्वभाव को एक बार उनके एक पठान दोस्त ने खाने पर बुलाया। खाने में बना था पुलाव और वह भी कम मात्रा में। थाली भी एक ही थी। स्वामी ने सोचा यदि दोनों एक साथ खाना शुरू करेंगे तो यह रहा पठान, ज्यादा खा जाएगा। इसलिए स्वामी ने दीवार की ओर इशारा करके कहा, भाई, यह तस्वीर किसकी है? और यह मर कैसे गई?
पठान गहरी ठंडी सांस लेकर बोला, भैया, यह मेरी महबूबा की तस्वीर है।
और यह एक दुर्घटना में मर गई थी। फिर पठान ने विस्तार से घटना सुनाई। तब तक स्वामी थाली साफ कर चुके थे। पठान जब पूरी घटना कह चुका तो देखा कि थाली साफ। और उसने सोचा कि स्वामी ने मुझे बेवकूफ बनाया। है सिंधी, पक्का सिंधी है--पठान को भी शक हुआ। सोचा उसने, ठीक है इस सिंधी की कभी खबर लूंगा, कभी तो मेरी बारी आएगी।

फिर एक बार यूं हुआ कि स्वामी ने पठान दोस्त को खाने पर बुलाया। उसने
भी पुलाव बनाया। थाली भी एक थी। पठान ने सोचा अब आई मेरी बारी। उसने भी दीवार की तरफ इशारा करके कहा, लगता है यह तुम्हारे पिताजी की तस्वीर है। और ये कैसे मरे?
स्वामी बोले, अरे भाई मौत आई सो मर गए। तुम तो खाना खाओ।
पठान दुख प्रकट करता हुआ बोला, भाई, फिर भी बताओ तो कैसे मरे?
स्वामी जल्दी-जल्दी खाते हुए बोले, भैया, अब क्या गड़े मुर्दों को उखाड़ना! अरे खाना खाओ, प्यारे! बीती ताहि बिसार दे!
बेचारा पठान फिर चूक गया। वह तो इनके पिता की ही बात करता रहा, तब तक
ये तो थाली साफ कर गए।
एक बार सेठ झामनदास, खट्टू सिंधी और स्वामी आनंद स्वभाव पिकनिक मनाने गए। और तो कहां जाते--सासवड़ गए! वहीं खिचड़ी बनाई। झामनदास ने खिचड़ी का पात्र बीचों-बीच रखा और उसके मध्य में बहुत-सा घी डाला। झामनदास ने घी डालने के बाद कहा, भैया, हमारे जमाने में तो ऐसा युद्ध हुआ, ऐसा युद्ध हुआ, कि सारी पृथ्वी दो भागों में बंट गई। और ऐसा कहते हुए उन्होंने खिचड़ी के पात्र में पृथ्वी को दो भागों में बंटी हुई दिखाने के लिए एक लाइन खींच दी। घी उनकी तरफ बहने लगा।
खट्टू सिंधी भी कुछ कम तो न थे। उन्होंने कहा, भैया, तुम्हारे जमाने में कुछ भी नहीं हुआ, हमारे जमाने में ऐसा युद्ध हुआ, ऐसा युद्ध हुआ, कि सारी पृथ्वी चार हिस्सों में बंट गई। ऐसा दर्शाने के लिए उसने भी पात्र में रखी खिचड़ी को दो अंगुलियों से चार भागों में विभक्त कर दिया। घी अब खट्टू सिंधी की ओर बह चला।
स्वामी आनंद स्वभाव ने जब यह देखा तो उन्हें दोनों की बदमाशी समझ में
आई और बोले, भैया, हमारे जमाने में तो गदर हुआ था। और ऐसा कह कर उन्होंने पांचों अंगुलियां खिचड़ी में डाल कर गदर मचा दी।
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
नौवां प्रवचन

जिसको पीना हो आ जाए

पहला प्रश्नः आपको लोग गलत क्यों समझते हैं? क्या सत्य को सदा ही गलत समझा गया है? मैं डरता हूं कि शायद जनमानस आपकी आमूल क्रांति को पचा नहीं सकेगा। आप क्या करने की सोच रहे हैं?

अभयानंद, यह देख कर कि तुम्हारे भीतर बहुत भय है, मैंने तुम्हें नाम दिया--अभयानंद। अचेतन तुम्हारा भय की पर्तों से भरा हुआ है। तुम अपने ही भय को प्रक्षेपित कर रहे हो। और तब बजाए आनंदित होने के तुम मेरे पास बैठ कर भी चिंतित हो जाओगे। ये सारी चिंताएं तुम्हें पकड़ लेंगी कि आपको लोग गलत क्यों समझते हैं! क्या फिक्र? तुमने समझा, उतना बहुत। तुम्हारे भीतर का दीया जला, उतना तुम्हारे मार्ग की रोशनी के लिए काफी है।
लोगों को आजादी है; जिसे जलाना हो अपना दीया जलाए, जिसे न जलाना हो न जलाए। यह उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता है। सत्य किसी पर थोपा तो नहीं जा सकता। सत्य किसी को जबरदस्ती तो दिया नहीं जा सकता। और जो भी जबरदस्ती दिया जाएगा वह असत्य हो जाता है। जो भी थोपा जाएगा वह जंजीर बन जाता है। और सत्य का तो अर्थ है--वह, जो सब जंजीरों को तोड़ दे, सब बेड़ियों को तोड़ दे; जो तुम्हें समस्त कारागृहों के बाहर ले आए। सत्य तो वह है जो तुम्हें पंख दे; पंखों को काट न दे।
और लोग अपनी बेड़ियों में बंधे हैं, अपनी जंजीरों में बंधे हैं। और उन्होंने जंजीरों को खूब सजा लिया है। उन्होंने जंजीरों पर सोने की पर्त चढ़ा ली है, हीरे-जवाहरात मढ़ लिए हैं। अब वे जंजीरें नहीं मालूम होतीं; अब तो लगता है वे आभूषण हैं, बहुमूल्य आभूषण हैं। कारागृह की दीवारों को उन्होंने रंग लिया है, तस्वीरें टांग दी हैं। और कारागृह को अपना घर समझ लिया है। परतंत्रता उन्हें सुरक्षा मालूम होती है। इसलिए वे कैसे मुझे समझें? उनके न्यस्त स्वार्थों के विपरीत मेरी बात जा रही है। जिसे वे आभूषण कहते हैं, मैं कहता हूं जंजीर है, तोड़ो। मेरी मानें तो जीवन भर जिसको आभूषण की तरह ढोया है, उसे तोड़ना पड़ेगा। यह बात अखरती है, अहंकार को चोट करती है, कि मैं क्या इतना मूढ़ हूं कि जीवन भर जंजीरों को आभूषण समझता रहा! मैं क्या पागल हूं कि थोथे शब्दों को सत्य मानता रहा! विश्वासों के आधार पर मैंने अपने जीवन को अब तक चलाया!
और विश्वास यूं हैं जैसे कागज की नाव। डूबेंगे ही। विश्वास का अर्थ
ही हैः अज्ञान। किसी विश्वास को अंधविश्वास मत कहना, क्योंकि सभी विश्वास अंधविश्वास होते हैं। अंधविश्वास शब्द खतरनाक है; उससे यह भ्रांति पैदा होती है कि कुछ विश्वास विश्वास होते हैं और कुछ विश्वास अंधविश्वास होते हैं। ऐसा नहीं है। विश्वास मात्र अंधा होता है। असल में अंधे को ही विश्वास की जरूरत होती है। आंख वाला प्रकाश को देखता है; प्रकाश में विश्वास थोड़े ही करता है! अंधा प्रकाश में विश्वास करता है। बहरा संगीत में विश्वास करता है। जिसने कभी प्रेम को नहीं जाना, वह प्रेम में विश्वास करता है। और जिसकी कोई मुलाकात जीवन से नहीं हुई, वह परमात्मा में विश्वास करता है।
विश्वास अर्थात झूठ। और विश्वासों से घिरे हुए लोग समझें तो कैसे समझें मेरी बात को? इतना बड़ा त्याग करने की छाती नहीं है। घर छोड़ सकते हैं, परिवार छोड़ सकते हैं, पत्नी छोड़ सकते हैं, दुकान छोड़ सकते हैं; वे सब छोटी बातें हैं, दो कौड़ी की बातें हैं। लेकिन जब विश्वास छोड़ने का सवाल उठता है--हिंदू विश्वास, जैन विश्वास, ईसाई विश्वास--तब प्राणों पर बन आती है। यूं लगता है कि जैसे कोई गला घोंटने लगा। यूं लगता है कि जैसे किसी ने आग में फेंक दिया। इन्हीं विश्वासों ने तो भरोसा दिया था कि हम ज्ञानी हैं। इन्हीं विश्वासों ने तो सहारा दिया था। ये ही तो लंगड़े-लूलों की बैसाखियां थे। और इनको ही कोई छीनने लगा!

अभयानंद, लोग गलत न समझें, यह कैसे हो सकता है? लोग तो गलत ही समझेंगे। उनका गलत समझना बताता है कि मैं जो कह रहा हूं वह सत्य है। लोग अगर मेरी बात को बिल्कुल स्वीकार कर लें, अगर भीड़ मेरी बात को स्वीकार कर ले, तो एक ही बात सिद्ध होगी उससे कि मेरी बात में सत्य नहीं होगा। भीड़ हमेशा असत्य के साथ होगी। सत्य के साथ तो कुछ इने-गिने लोग, कुछ हिम्मतवर लोग, कुछ दुस्साहसी लोग, बस केवल थोड़े-से ही लोग सत्य के साथ हो सकते हैं। "लोग"--तुम पूछते हो--"आपको क्यों गलत समझते हैं?"
इसीलिए गलत समझते हैं कि मैं सही हूं और सही को उन्हें गलत समझना ही होगा, क्योंकि वे गलत को इतने दिनों तक सही समझते रहे हैं कि आज उसे छोड़ना, अपने सारे अतीत पर पानी फेर देना है। आदमी अपनी भूलों को भी बचाता है, अपने घावों को भी छिपाता है, अपनी बीमारियों को भी दबाता है कि किसी को पता न चले, किसी को खबर न हो जाए। हम धोखा देने में इतने निष्णात हो गए हैं, हमने मुखौटे ओढ़ लिए हैं; असली चेहरे तो न मालूम कहां खो गए हैं। आज तुम खोजने भी निकलोगे तो अपने असली चेहरे को शायद ही खोज पाओ।
और मैं चाहता हूं कि तुम्हारे सारे मुखौटे छीन लूं--तुम्हारा भारतीय होने का मुखौटा, तुम्हारा हिंदू होने का मुखौटा, तुम्हारा धार्मिक होने का मुखौटा, तुम्हारी सरलता-सादगी का मुखौटा--ये सब झूठ हैं। गरीब आदमी सादगी का मुखौटा ओढ़ लेता है, आखिर गरीबी को किसी तरह सहनीय तो बनाना होगा। नहीं तो काटेगी, छाती में छुरी की तरह चुभेगी। जीना मुश्किल हो जाएगा। कुछ तर्क तो खोजने होंगे कि परमात्मा कसौटी पर कस रहा है, परीक्षा ले रहा है। बस यह अंतिम परीक्षा है, अग्नि-परीक्षा है; फिर आगे तो स्वर्ग के सुख हैं। यूं आदमी सहारा खोज लेता है--जिंदगी के दुख से गुजरने का। जिंदगी के दुख को बदलना तो उसको अपनी सामर्थ्य के बाहर मालूम होता है। हालांकि वह सामर्थ्य के बाहर नहीं है, बाहर हमने कर दिया है। जहां करोड़ों-करोड़ों लोग अपनी दीनता और गरीबी में भी धन्यता अनुभव करने लगेंगे, वहां संपदा पैदा नहीं हो सकती।
हमने अपने पाखंड को नैतिकता समझ लिया है। लेकिन समझना ही होगा, क्योंकि अगर हम पाखंड समझें तो फिर छोड़ना पड़ेगा। पाखंड के ऊपर पुताई कर दो, सफेद चूना पोत दो।
जीसस ने कहा हैः लोग कब्रों पर भी सफेद चूना पोत देते हैं, लेकिन इससे कुछ कब्रें स्वच्छ नहीं हो जातीं; भीतर तो सड़ ही रही है लाश।
ऐसे ही पुते हुए लोग चल रहे हैं, भीतर लाशें सड़ रही हैं। भीतर कुछ और है, बाहर कुछ और दिखा रहे हैं। कैसे मुझसे राजी हों?
मैं उनसे कह रहा हूं कि यह बाहर जो तुम दिखावा कर रहे हो, यह पाखंड छोड़ो। मैं संसार छोड़ने को नहीं कहता हूं, नहीं तो वे मुझसे राजी होते। वह सस्ता मामला है। वह तो कोई भी कायर कर सकता है, कोई भी भगोड़ा कर सकता है। कौन नहीं भाग जाना चाहता? जिंदगी कठिन है। जिंदगी चुनौती है। जिंदगी संघर्ष है। कौन नहीं छिप जाना चाहता जाकर किसी गुफा में? वह अगर मैं कहूं तो लोग बिल्कुल मुझसे राजी होंगे। वह उनकी परंपरा के अनुकूल होगा। हालांकि उनकी सड़ी-गली परंपरा, सिर्फ बदबू उठ रही है उस परंपरा से। लेकिन उस बदबू को छिपाने के लिए वे फूलों से ढांक रहे हैं, इत्र छिड़क रहे हैं। जब लाश को उठाते हैं तो उस पर कपूर मल देते हैं, फूल सजा देते हैं, ताकि बदबू न आए।
ऐसा ही हमारा पाखंड है। और डर लगता है कि कोई हमारे पाखंड को उघाड़ न दे। और मेरा सारा आयोजन यहां यही है कि तुम्हारे पाखंड को उघाड़ दूं। तुम मुझसे नाराज होओगे।
भीड़ मुझसे कैसे राजी हो, अभयानंद? भीड़ तो भेड़चाल जानती है। मेरे साथ
तो केवल वे ही लोग चल सकते हैं जो अकेले होने की हिम्मत रखते हैं। भीड़ तो अपना बचाव करेगी। भीड़ तो आक्रामक हो जाएगी।
सवादे-गम में कहीं गोशा-ए-अमां न मिला
हम ऐसे खोए, कि फिर तिरा आस्तां न मिला
गम की नगरी, दुख की यह दुनिया, इसमें पनाह का एक कोना भी नहीं मिलता है। और हम ऐसे खो गए हैं कि अब परमात्मा की चौखट को खोजना भी बहुत मुश्किल

है। उसकी दहलीज को भी पाना बहुत मुश्किल है। उसके द्वार को भी पाना बहुत मुश्किल है।

सवादे-गम में कहीं गोशा-ए-अमां न मिला हम ऐसे खोए,
कि फिर तिरा आस्तां न मिलाये इत्तिफाके-जमाना है,
इसका रोना क्यामिला, मिला कोई दिल का मिजाज-दां
न मिलागमों की बज्म कि तनहाइयों की महफिल थी
हमें वो दुश्मने-तमकीं कहां-कहां न मिला
अजीब दौरे-सितम है कि दिल को मुद्दत से
नवेदे-गम न मिली, मुज्दाए-जियां न मिला
किसे है याद कि सअई-ओ-तलब की राहों में
कहां मिला हमें तेरा निशां, कहां न मिला
इधर वफा को गिला है कि दिल का लहू न हुआ
उधर सितम को शिकायत है कि कद्रदां न मिला
लबों को नुत्क का एजाज तो मिला "ताबां"
मगर सुकूत का पैराया-ए-बयां न मिला
एक और भी कठिनाई हैः सत्य का अनुभव तो मिल सकता है, लेकिन सत्य को कहने
का कोई उपाय नहीं है। सत्य को कभी कोई कह नहीं सका है।
लबों को नुत्क का एजाज तो मिला "ताबां"
ओंठों को वाणी मिली, वाणी का चमत्कार मिला।
लबों को नुत्क का एजाज तो मिला "ताबां"
मगर सुकूत का पैराया-ए-बयां न मिला
लेकिन वह जो भीतर मौन का अनुभव होता है, शून्य का अनुभव होता है, समाधि
का अनुभव होता है...
मगर सुकूत का पैराया-ए-बयां न मिला
उसे कहने का कोई ढंग न अब तक मिला है और न कभी आगे मिलेगा।
इसलिए भी मैं जो कह रहा हूं, उसे समझना मुश्किल हो जाता है; क्योंकि जो मैं कह रहा हूं उसे समझने के लिए सहानुभूति चाहिए, प्रीति चाहिए। और जो मैं कह रहा हूं उससे तुम पर चोट पड़ती है; उससे तुम्हारे घाव उघड़ते हैं; उससे तुम्हें पीड़ा होती है, तुम तिलमिला जाते हो। सहानुभूति तुम कैसे करो मुझसे? प्रीति तुम कैसे करो मुझसे?
और जो मैं कह रहा हूं वह बिना प्रीति के समझा न जा सके, क्योंकि उसे कहने का और कोई उपाय नहीं है; वह कोई गणित नहीं है; कोई दो और दो चार जैसी सीधी बात नहीं है। हां, प्रेम के किन्हीं क्षणों में शब्दों के साथ-साथ लिपटी हुई भीतर की शून्यता भी चली आती है। लेकिन बस प्रेम के क्षणों में ही संवाद होता है, और तो विवाद ही है।
इसलिए जो यहां मुझे प्रेम से सुनने को राजी हुए हैं, वे मेरे शब्दों
के बीच में जो खाली स्थान हैं उनको भी सुन लेते हैं; मेरी पंक्तियों के बीच में जो रिक्तता है उसमें डुबकी लगा लेते हैं। मगर भीड़ को न सहानुभूति है, न प्रीति है, न सत्य की कोई खोज है, न कोई आकांक्षा है, न फुरसत है, न अभीप्सा है। और मेरी बातें उसे तिलमिला देती हैं।
मेरी भी मजबूरी है। मैं लाख मिठास से कहूं! अब किसी की गर्दन काटनी हो
और तुम तलवार पर लाख मिश्री मलो, इससे क्या होने वाला है? जब गर्दन कटेगी तो तकलीफ होगी ही होगी। और यह मामला गर्दन कटने का ही है।
सहज आसिकी नाहिं! यह प्रेम का रास्ता, यह परमात्मा का रास्ता केवल उनके लिए है जो अपने हाथ से अपनी गर्दन काट कर रख सकते हैं। उनको ही मैं संन्यासी कहता हूं--जो पागल होने को राजी हैं, प्रेम में पागल होने को, जो दीवाने होने को राजी हैं। यह भीड़ का वास्ता भी नहीं है।
अभयानंद, भीड़ का विचार भी न करो। तुम पूछते हो, "क्या सत्य को सदा ही गलत समझा गया है?"
सदा ही गलत समझा गया है, इतना ही नहीं; सदा गलत समझा भी जाएगा, यह भी स्मरण रहे। ऐसी कोई संभावना नहीं है कि कभी भी मनुष्य-जाति समग्ररूपेण सत्य को लेने को राजी हो सकेगी। निन्यानबे प्रतिशत लोग तो झूठ में ही

जीएंगे, क्योंकि झूठ में बड़ी सांत्वना है। और मुफ्त मिलती है सांत्वना, तो कौन दाम चुकाए?
फ्रेड्रिक नीत्शे ने एक महत्वपूर्ण बात कही है कि मत लोगों के असत्यों को खंडित करो, मत तोड़ो उनके झूठों को, क्योंकि बिना झूठों के वे एक क्षण जी न सकेंगे। उनके असत्य मत छीनो, अन्यथा उनके पैर के नीचे से जमीन निकल जाएगी; एक कदम उठाना उन्हें मुश्किल हो जाएगा। उन्हें उनके भ्रमों को सम्हालने दो। उनके भ्रम उनकी सुरक्षा है, उनकी सांत्वना है, उनकी आशाएं हैं, उनकी कल्पनाएं हैं, उनकी मृग-मरीचिकाएं हैं। मत करो खंडन उनका। न उन्हें सत्य की चाह है, न उन्होंने सत्य मांगा है। सोने दो उन्हें। वे प्यारी नींद में सोए हैं। वे गहरी नींद में हैं। वे सुंदर-सुंदर सपने देख रहे हैं। मत तोड़ो उनके सपनों को।
फ्रेड्रिक नीत्शे एक अर्थ में सही बात कहता है। निन्यानबे प्रतिशत लोगों के संबंध में तो यह सही है ही। लेकिन मेरे जैसे लोगों की भी मजबूरी है। जो जाग गए हैं उनकी भी मजबूरी है। वे कैसे सोने दें? क्योंकि उन्होंने जाग कर जो पाया है, उन्होंने आंख खोल कर जो देखा है, तब उन्हें पता चला है कि हम आंख बंद करके जो सपने देख रहे थे, वे थे ही नहीं; हम नाहक ही समय गंवा रहे थे; हम व्यर्थ ही जीवन को व्यतीत कर रहे थे। आंख जिसकी खुली उसकी भी मजबूरी है।
नीत्शे ठीक कहता है निन्यानबे प्रतिशत लोगों की तरफ से। मैं भी कहना चाहता हूं एक प्रतिशत लोगों की तरफ से। मैं नीत्शे से कहना चाहता हूं कि तुम ठीक कहते हो। मगर वह ठीक केवल सोए हुए लोगों के संबंध में लागू है। जागे हुए लोगों की भी एक पीड़ा है। अगर तुम्हें दिखाई पड़ रहा हो कि कोई आदमी गड्ढे में गिरने को है, गिरने को है, गिरने को है, तो तुम कैसे उसे न रोकोगे? वह चाहे जिद भी करे कि मत रोको मुझे, जाने दो मुझे; मगर तुम कहोगे, पागल हो! यह गड्ढा मेरा परिचित है, मैं गिर चुका हूं। इसी में मैंने अपनी हड्डी-पसलियां तोड़ी हैं। अब तू तो मत तोड़! तुम्हारे देखते हुए कोई आग में उतरता हो, एक छोटा बच्चा अंगारों को उठाने चला हो, तुम रोकोगे या नहीं रोकोगे? एक छोटा बच्चा सांप को पकड़ने चला हो, तुम बाधा डालोगे या नहीं डालोगे?
बुद्धों की यही पीड़ा हैः उन्हें दिखाई पड़ रहा है और तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। उनकी पीड़ा भी मैं समझता हूं, तुम्हारी पीड़ा भी मैं समझता हूं। तुम जैसा भी मैं था, उन जैसा मैं हूं। यह भी पक्का है कि तुम गलत समझोगे। और यह भी पक्का है कि बुद्ध पुरुष सत्य को कहे ही जाएंगे--इस आशा में कि कितने लोग गलत समझेंगे? कोई तो सही समझेगा। कोई तो माई का लाल होगा! बस उन थोड़े-से लोगों को निमंत्रण देने के लिए ही सत्य कहा जाता है।

शरहे-जां सोजी-ए-गम, अर्जे-वफा क्या करते
तुम भी इक झूठी तसल्ली के सिवा क्या करते
हृदय की व्यथा, गम की तपिस, किससे कहें? और कहने से भी क्या सार है? शरहे-जां सोजी-ए-गम, अर्जे-वफा क्या करते
तुम भी इक झूठी तसल्ली के सिवा क्या करते
शीशा नाजुक था, जरा चोट लगी, टूट गया
हादिसे होते ही रहते हैं, गिला क्या करते
रात ने छेड़ दिए भूले हुए अफसाने
जाग कर सुबह न करते तो भला क्या करते
अपनी कश्ती को भी मिल जाता किनारा शायद
तुंद थी मौज, मुखालिफ थी हवा,
क्या करते जज्बा-ए-शौक को इजहार की
फुर्सत ही न मिलीलफ्जी-मानी का फुसूं
टूट गया, क्या करतेथी न क्या-क्या हवसे-सैरो-तमाशा "ताबां"
रास्ता पांव की जंजीर बना, क्या करते
हृदय व्यथा से भरा है, चारों तरफ दुख की बरसती हुई आग है। मगर किससे कहो, कौन सुनेगा? और कोई सुन भी लेगा तो क्या करेगा?

शरहे-जां सोजी-ए-गम, अर्जे-वफा क्या करते
तुम भी इक झूठी तसल्ली के सिवा क्या करते
लोग क्या कर रहे हैं? झूठी तसल्लियां दे रहे हैं! बच्चा रोता है तो हम उसका ही अंगूठा उसके मुंह में दे देते हैं। अपने ही अंगूठे को चूसता रहता है। और चूस-चूस कर किलकारी मारता है। बड़ा प्रसन्न होता है। नहीं तो लोग रबर का स्तन खरीद लाते हैं और बच्चे के मुंह में लगा देते हैं। उसको चूसता- चूसता बच्चा सो जाता है।
और तुम्हारे मुंह में भी इसी तरह के झूठे स्तन लगा दिए गए हैं, जिनको चूस-चूस कर तुम नींद में सो रहे हो। न तुम्हें पता है पिछले जन्मों का, लेकिन तुमसे कहा गया है कि पिछले जन्मों में तुमने बुरे कर्म किए थे, इसलिए तुम दुख पा रहे हो। इससे सांत्वना मिल गई कि अब क्या करें! अब तो कुछ किया नहीं जा सकता; भाग्य में लिखा है, शांति से भोग लेना ही उचित है। और अभी शांति से भोग लोगे तो आगे खूब फल पाओगे। तो भोग ही लो। चार दिन की जिंदगी है, यूं ही कट जाएगी, यूं ही कट जाती है। क्या रोना-धोना?
शरहे-जां सोजी-ए-गम, अर्जे-वफा क्या करते
तुम भी इक झूठी तसल्ली के सिवा क्या करते
शीशा नाजुक था, जरा चोट लगी, टूट गया
हादिसे होते ही रहते हैं, गिला क्या करते
क्या करो शिकायत, किससे करो शिकायत? रोज तुम्हारे शीशे टूटते हैं। जरा-सी चोट लगती है और टूट जाते हैं। जिन नातों पर तुमने सब कुछ बारा था। जरा-सी चोट में टूट जाते हैं। पत्नी कल तक तुम्हारी थी, आज तुम्हारी नहीं। पति कल तक तुम्हारा था, आज तुम्हारा नहीं। बेटा कल तक तुम्हारा था, आज तुम्हारा नहीं। कल तक जो तुम्हारे नहीं थे, आज तुम्हारे हो जाते हैं। यहां शीशे टूटते ही नहीं, जुड़ते भी हैं। इधर टूटते हैं उधर जुड़ते हैं। यहां जाल एक कटा नहीं कि दूसरा निर्मित हो जाता है।
हादिसे होते ही रहते हैं, गिला क्या करते
ये घटनाएं होती ही रहती हैं। आदमी धीरे-धीरे इनके लिए राजी हो जाता है, सहने को राजी हो जाता है। आदमी मरते रहते हैं, बच्चे पैदा होते रहते हैं; हम मौत से भी राजी हो जाते हैं, जीवन से भी राजी हो जाते हैं। घसिटते रहते हैं। कहते हैं, यहां तो यह सब होता ही रहता है। यह तो संसार है।
रात ने छेड़ दिए भूले हुए अफसाने
जाग कर सुबह न करते तो भला क्या करते
यादें भी आती हैं, मगर करो तो क्या करो! कुछ करने को रास्ता तो दिखाई नहीं पड़ता। चारों तरफ तुम्हारे ही जैसे भटके हुए लोग हैं, उन्हीं की भीड़ है। उनके बीच ही तुम्हें जीना है। उनके जैसे ही होकर जीओ तो आसानी है। वे जिस मंदिर में जाते हैं उसी मंदिर में जाओ। वे जिस मस्जिद में नमाज पढ़ते हैं उसी मस्जिद में नमाज पढ़ो। वे हनुमान-चालीसा दोहराते हों तो तुम भी दोहराओ। तुम्हें जंचे कि न जंचे, यह सवाल नहीं है। लेकिन जिनके साथ रहते हो उनके जैसे ही रहो, उन्हें नाराज न करो। अन्यथा जिंदगी वैसे ही मुसीबत से भरी है, और वे सारे लोग मिल कर मुसीबत खड़ी कर देंगे।
जैसे गाड़ी के चाक में हम चर्रचूं की आवाज आने लगे तो तेल डाल देते हैं; तेल डालने से चर्रचूं की आवाज बंद हो जाती है। तेल चाक को सुविधा से चलाने लगता है। बस हमारी सारी व्यवस्था इतनी ही है कि जिंदगी में ज्यादा चर्रचूं न हो, तेल डालते रहो। रविवार आया, चर्च हो आओ--यह तेल डालना है, और कुछ भी नहीं। बाकी जो गए हैं वे भी तेल डालने गए हैं। सब एक-दूसरे को देख कर राजी हो जाते हैं कि ठीक है, सब ठीक चल रहा है।
लोग धार्मिक हैं। लोग अधार्मिक नहीं हो गए हैं। और है क्या तुम्हारा चर्च? एक तरह का धार्मिक क्लब। कुछ लोग रोटरी क्लब जाते हैं, कुछ लोग लायंस क्लब जाते हैं, कुछ लोग चर्च जाते हैं, कुछ लोग भजन-मंडली में बैठते हैं, कुछ लोग रामायण सुनते हैं। कौन सुनता है? बस बैठे रहते हैं कि सब लोग देख लें कि हां भाई, यह आदमी भी है तो धार्मिक! क्योंकि फिर तेईस घंटे अधर्म करना है। उस अधर्म में चर्रचूं न हो। तो यह तेल का काम कर देता है धर्म। अब आदमी राम-नाम की चदरिया ओढ़े बैठा हो दुकान पर, दुगने दाम वसूल कर

ले, तो भी तुम सोचोगे यह आदमी झूठ थोड़े ही बोलेगा। राम का ऐसा भक्त, माला फेरता रहता है!
लोग दुकानों पर बैठे रहते हैं, हाथ में माला लिए हुए राम-राम जपते रहते हैं। राम-राम भी जप रहे हैं, कुत्ता आ जाता है, उसको भी भगा देते हैं। ग्राहक आ जाता है, मुनीम को इशारा कर देते हैं--सम्हाल!
मैंने सुना, एक होटल में आधी रात गए एक युवक ठहरने को आया। मैनेजर ने कहा, इतनी रात तुम्हें लौटाऊं, यह भी अच्छा नहीं। फिर तुम पुराने ग्राहक भी हो। मगर बड़ी मजबूरी है, पूरी होटल भरी है, क्योंकि गांव में सर्व-धर्म-सम्मेलन चल रहा है तो सभी धर्मगुरु आए हुए हैं। सिर्फ एक मैं कर सकता हूं काम और वह यह कि अभी-अभी एक यहूदी धर्मगुरु, रबाई, एक कमरे में आकर ठहरा है, वह अभी सोया भी नहीं होगा। अभी-अभी हम उसे उसके कमरे में छोड़ कर आए हैं। उस कमरे में दूसरा बिस्तर भी है। और आदमी भला है, इसलिए राजी हो जाएगा। तुम अगर राजी होओ उसके साथ ठहरने को... ।
युवक ने कहा, मुझे रात तो गुजारनी ही है। ऐसे तो हैरान हुआ, थोड़ा दुखी
भी हुआ, क्योंकि बड़ी कल्पनाएं और कामनाएं लेकर आया था, उस होटल में बड़ी सुंदरियां भी उपलब्ध थीं। मगर अब यह धर्मगुरु का सत्संग करना पड़ेगा! किस्मत ठोंक ली, मगर अब आधी रात जाए तो कहां जाए! सोचा कि चलो जो है ठीक है, कम से कम रात सो तो लूं, फिर सुबह देखा जाएगा। पहुंचा। अंदर गया तो देखा कि यहूदी धर्मगुरु घुटने टेके परमात्मा से प्रार्थना कर रहा है। बड़ी भावपूर्ण मुद्रा है। बड़ी प्रार्थना छाई है चेहरे पर। बड़ा प्रभावित हुआ युवक। दो बिस्तर हैं। कौन-सा बिस्तर युवक ले, यह धर्मगुरु ने कौन-सा बिस्तर लिया है, पूछना जरूरी है। मगर यह प्रार्थना जारी है और उसको सोना है। उसने अपने कपड़े वगैरह उतारे और फिर धर्मगुरु से पूछा कि मैं कौन-सा बिस्तर ले लूं, आप जरा इशारा कर दें। तो धर्मगुरु ने एक बिस्तर की तरफ हाथ से इशारा कर दिया, प्रार्थना जारी रही। वह युवक बिस्तर पर जाकर अपने कपड़े रख कर लेटने को हुआ। सोचा कि आदमी भला है, प्रार्थना में भी इशारा कर दिया, पूछ ही लूं। तो उसने पूछा कि अगर आपको कोई एतराज न हो तो मैं एक लड़की को भी ले आना चाहता हूं। धर्मगुरु ने कहा हाथ उठा कर, एक नहीं, दो। अब ला ही रहे हो तो दो ले आना। एक मेरे लिए भी।
प्रार्थना जारी है। प्रार्थना में बाधा ही क्या पड़ती है इससे?
माला लोग जपते रहते हैं और सब काम चलता रहता है। संसार वैसा का वैसा बना रहता है, धर्म चलता रहता है। तुम्हारा तथाकथित धर्म तुम्हारे जीवन में क्रांति नहीं है, वरन सिर्फ सुविधा है। इससे तुम्हारे और और लोगों के बीच नाते-रिश्ते बनाने में आसानी होती है। एक औपचारिकता है।
अपनी कश्ती को भी मिल जाता किनारा शायद
किनारा तो प्रत्येक कश्ती को मिल सकता है।
अपनी कश्ती को भी मिल जाता किनारा शायद
लेकिन कश्ती कागज की नहीं होनी चाहिए। और तुम्हारी कश्तियां शास्त्रों से बनी हैं; शास्त्र यानी कागज। कोई गीता की कश्ती में बैठा है और मारे जा रहा है, पतवार चलाए जा रहा है। कोई कुरान की कश्ती में बैठा है। अलग-अलग शास्त्रों में से लोगों ने कश्तियां बना ली हैं और बड़ी आशा से चल पड़े हैं। और फिर दोष देंगे किसी और बात को।
अपनी कश्ती को भी मिल जाता किनारा शायद
तुंद थी मौज--तेज थीं बहुत लहरें। मुखालिफ थी हवा--हवा दुश्मन थी, हवा प्रतिकूल थी। क्या करते?
अपनी कश्ती को भी मिल जाता किनारा शायदतुंद थी मौज, मुखालिफ थी हवा, क्या करते
फिर बहाने खोजते हैं कि क्या करें, बड़ी तेज आंधी उठी, तूफान उठा, बवंडर आया! तुंद थी मौज, मुखालिफ थी हवा! और हवा ने दुश्मनी साधी। न मालूम किन जन्मों की दुश्मनी! क्या करते? इसलिए डूब गए।
और मैं तुमसे कहता हूंः डूबने का कारण न तो हवा की तेजी है, न हवा की दुश्मनी है। अरे हवा को तुमसे क्या लेना-देना? लहरों को तुमसे क्या प्रयोजन? कश्तियां डूबती हैं, क्योंकि कागज की हैं। ताश के पत्तों का घर

बनाते हो, फिर हवा का झोंका गिरा देता है, तो कहते हो, हवा का झोंका दुश्मन था। यह नहीं सोचते कि ताश के पत्तों का घर बनाओगे, गिरेगा नहीं तो क्या होगा? गिरेगा ही गिरेगा। गिरना सुनिश्चित है। मगर बहाने।
जज्बा-ए-शौक को इजहार की फुर्सत ही न मिली
जीवन यूं ही बीत जाता है--इन्हीं व्यर्थ की बकवासों में; इन्हीं व्यर्थ के इंतजामों में। कागज की नावें बनाओ। बामुश्किल नावें बनती हैं, फिर इनको तैराओ; बामुश्किल तैरती हैं। घड़ी दो घड़ी भी तैर जाएं तो बहुत। फिर इनको बचाने में लगो; बचती नहीं, कितना ही बचाओ; डूब ही जाती हैं और तुम्हें भी ले डूबती हैं।
जज्बा-ए-शौक को इजहार की फुर्सत ही न मिली
और इस अस्तित्व के प्रति प्रेम करने का, इस अस्तित्व के प्रति प्रीति
का आवेदन करने का अवसर ही कहां मिलता है! तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारा प्रेम तो नहीं है। तोतों की तरह दोहरा रहे हो। प्रेम यंत्रवत नहीं होता। हिंदू हिंदू प्रार्थना दोहरा रहा है, जैन जैन प्रार्थना दोहरा रहा है; दोनों में से किसी को प्रयोजन नहीं है कि वे क्या दोहरा रहे हैं। बस याद हो गई है, कंठस्थ हो गई है प्रार्थना। दोहराए चले जा रहे हैं।
जज्बा-ए-शौक को इजहार की फुर्सत ही न मिली
प्रेम तो था भीतर। प्रेम तो हम सब लेकर पैदा हुए हैं। और प्रेम ही प्रार्थना बनता है। लेकिन उसको मौका ही कहां मिलता है!
लफ्जी-मानी का फुसूं टूट गया, क्या करते
शब्दों और अर्थों का जादू जल्दी ही टूट जाता है और तुम्हें दूसरा कोई जादू मालूम नहीं।
लफ्जी-मानी का फुसूं टूट गया, क्या करते
फिर बहाना तुम यह करते हो कि हम कहते भी तो क्या कहते, किन शब्दों में कहते? शब्द छोटे हैं, ओछे हैं, सीमित हैं। कहना भी चाहा था तो कुछ कह न पाए। लफ्जी-मानी का फुसूं टूट गया, क्या करते
लेकिन एक और भी तो प्रार्थना है मौन की। एक और भी तो प्रार्थना है ध्यान की। वही तो प्रार्थना है। वही तो प्रेम का, वही तो अस्तित्व के साथ प्रणय का वास्तविक निवेदन है--जब तुम मौन कृतज्ञभाव में झुक जाते हो। न कुछ कहने को है न कुछ सुनने को है। और ध्यान रहे, जब न कुछ कहने को है, तभी कुछ कहा जाता है। और जब न कुछ सुनने को है, तभी सुना जाता है। वही प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचती है जो निःशब्द है, जो मौन है, जो शून्य अनुग्रह का भाव है, जो शुद्ध प्रेम है। फूल भी नहीं, सिर्फ सुगंध है।
फूल में भी वजन होता है, गिरेगा तो जमीन पर गिर जाएगा। ऐसे ही शब्दों में वजन होता है। गिरेंगे तो जमीन पर गिर जाते हैं। और सुगंध आकाश की तरफ उठने लगती है, चांद-तारों की तरफ चलने लगती है। सुगंध यूं है जैसे दीए की ज्योति। ज्योति तो ऊपर की तरफ जाती है; दीए को गिराओगे तो नीचे की तरफ गिरेगा। लेकिन ज्योति को तुम लाख नीचे की तरफ गिराना चाहो, नहीं गिरा सकते। ज्योति का स्वभाव ही ऊर्ध्वगमन है।
ऐसे ही मौन ऊपर की तरफ जाता है, शून्य ऊपर की तरफ जाता है, क्योंकि शून्य में कोई वजन नहीं होता। शब्दों में वजन होता है। तुम भी जानते हो कि शब्दों में वजन होता है। लोग कहते हैं कि उसने बड़ी वजनी गाली दी। शब्दों में वजन होता है, गालियों में वजन होता है। तो प्रार्थनाओं में भी वजन होगा। थोड़ा कम सही, छटांक, आधी छटांक, कम। गाली अगर मनों में तौली जाए तो समझो कि प्रार्थना को सेरों में तौल लेना, पसेरियों में तौल लेना। लेकिन वजन तो होगा शब्दों में। सिर्फ शून्य में वजन नहीं होता। और जिसमें वजन नहीं है वह गुरुत्वाकर्षण के पार हो जाता है।
थी न क्या-क्या हवसे-सैरो-तमाशा "ताबां"
कैसी-कैसी आकांक्षाएं लेकर आए थे, कैसी-कैसी अभीप्साएं लेकर आए थे! रास्ता पांव की जंजीर बना, क्या करते
लेकिन मंजिल की तो बात ही न उठी।
रास्ता पांव की जंजीर बना, क्या करते

जिनको तुम रास्ते समझते हो वे तुम्हारे पैरों की जंजीर बन गए हैं। यूं तो कहा जाता है ये सब रास्ते हैं परमात्मा तक पहुंचाने के, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं ये अब कोई रास्ते नहीं हैं। कभी थे रास्ते। रास्ता होता है कोई रास्ता तभी तक जब तक उस रास्ते को जन्म देने वाला जिंदा होता है। उसकी जिंदगी में जादू होता है। वह मिट्टी को छूता है तो सोना हो जाती है। वह शब्दों को छूता है तो शून्य से भर जाते हैं। वह बोलता है तो गीत बन जाते हैं; नहीं बोलता है तो संगीत बन जाता है। उसके भीतर अनाहत का नाद बज रहा है। उठेगा, बैठेगा, चलेगा--उसका प्रत्येक कृत्य प्रसादपूर्ण होता है। उसका बुद्धत्व तो हर घड़ी बहा जा रहा है। उससे गंध उठ रही है। उससे ज्योति जग रही है। उससे प्रकाश विकीर्णित हो रहा है।
जब बुद्ध जिंदा थे तो उन्होंने जो कहा वह मार्ग था, रास्ता था। और जब बुद्ध मर गए तो जो रह गया वह यूं है जैसे सांप निकल जाए और धूल में निकले सांप की लकीर छूटी रह जाए। वह लकीर सांप नहीं है। उस लकीर को तुम फिर पीटते रहो जन्मों-जन्मों तक, कुछ भी न पाओगे। और बुद्ध ने बहुत ठीक कहा है कि बुद्ध पुरुष तो यूं हैं जैसे आकाश में उड़ते हुए पक्षी। आकाश में जब पक्षी उड़ते हैं तो उनके पैरों के कोई चिह्न भी नहीं बनते। ये गए वे गए! आकाश वैसा का वैसा कोरा रह जाता है।
बुद्ध को ठीक-ठीक प्रतीक मिल गया। ठीक उन्होंने बात कही कि बुद्ध पुरुष आकाश में उड़ते हुए पक्षी हैं; कोई चिह्न नहीं छूट जाते। लेकिन जहां चिह्न नहीं हैं वहां भी लोग चिह्न बना लेते हैं, अपने पत्थर गड़ा देते हैं। और उन्हीं पत्थरों की पूजा में लग जाते हैं।
बुद्ध के साथ बुद्ध का रास्ता भी तिरोहित हो जाता है। जीसस के साथ जीसस का रास्ता भी खो गया। और जिन रास्तों पर अब करोड़ों-करोड़ों ईसाई चल रहे हैं वे सिर्फ पैर की जंजीर हैं, और कुछ भी नहीं।
थी न क्या-क्या हवसे-सैरो-तमाशा "ताबां"रास्ता पांव की जंजीर बना, क्या करते
अभयानंद, तुम कहते हो कि "मैं डरता हूं कि शायद जनमानस आपकी आमूल क्रांति को पचा नहीं सकेगा।"
जनमानस पचा सके, ऐसी मेरी कोई आकांक्षा भी नहीं। बस थोड़े-से चुनिंदे लोग पी लें, काफी है। इतना पर्याप्त है। कुछ दीए जल जाएं तो बहुत है। सारी भीड़ के लिए तो संभावना नहीं है, क्योंकि भीड़ इतनी जोखिम न उठा सकेगी।

गर्मी-ए-शौके-नजारा का असर तो देखो
गुल खिले जाते हैं वो साया-ए-दर तो देखो
ऐसे नादां भी न थे जां से गुजरने वालेनासेहो,
पंदगरो, राहगुजर तो देखोवो तो वो है
तुम्हें हो जाएगी उल्फत मुझसे
इक नजर तुम मिरा महबूबे-नजर तो देखो
वो जो अब चाक गिरेबां भी नहीं करते हैं
देखने वालो कभी उनका जिगर तो देखो
दामने-दर्द को गुलजार बना रखा है
आओ इक दिन दिले-पुरखूं का हुनर तो देखो
सुबह की तरह चमकता है शबे-गम का उफक"फैज"
ताबंदगी-ए-दीदा-ए-तर तो देखो
वे तो मेरे पास ही नहीं आते, कैसे मुझे समझेंगे?
दामने-दर्द को गुलजार बना रखा है
आओ इक दिन दिले-पुरखूं का हुनर तो देखो
कभी आओ पास! कभी इस आत्मा में उठ रही जादू की तरंगों को तो देखो! मगर जो आएंगे ही नहीं, उनके समझने का सवाल कहां है?
वो तो वो है तुम्हें हो जाएगी उल्फत मुझसे
आओ पास तो प्रेम जगे!
वो तो वो है तुम्हें हो जाएगी उल्फत मुझसेइक नजर तुम मिरा महबूबे-नजर
तो देखो

यह मेरा ईश्वर को देखने का ढंग, यह उस प्रेमी को देखने की मेरी नजर तो तुम देखो!
वो तो वो है तुम्हें हो जाएगी उल्फत मुझसे
इक नजर तुम मिरा महबूबे-नजर तो देखो
वो जो अब चाक गिरेबां भी नहीं करते हैं
देखने वालो कभी उनका जिगर तो देखो
यह मामला तो हृदय का है। जो मेरे पास आएंगे, उठेंगे, बैठेंगे, जो इस सत्संग में डूबेंगे, जो इस संगीत में डुबकी मारेंगे, वे ही केवल जान पाएंगे। जनमानस अभागा है, सदा से अभागा है। बुद्ध से चूका, लाओत्सु से चूका, महावीर से चूका, जरथुस्त्र से चूका, जीसस से चूका, कबीर से, नानक से चूका, मुझसे भी चूकेगा। चूकता ही रहेगा।
और तुम पूछते हो अभयानंद, "आप क्या करने की सोच रहे हैं?"
करना क्या है? मैं यहां बैठा हूं। जिसको पीना हो आ जाए। मुझे तो कहीं जाना नहीं। प्यासे को कुएं के पास आना पड़ता है। हां, तुम्हें कुछ करना पड़ेगा, अभयानंद। मेरे संन्यासियों को कुछ करना पड़ेगा। तुम्हें मैं भेजूंगा दूर-दूर। भेज रहा हूं सारी पृथ्वी के कोने-कोने में। कोई दो लाख संन्यासी, दुनिया का एक भी ऐसा देश नहीं, एक भी ऐसा कोना नहीं, जहां मेरी बातें को नहीं पहुंचा रहे हैं।

चश्मे-नम, जाने-शोरीदा काफी नहीं
तोहमते-इश्के-पोशीदा काफी नहीं
आज बाजार में पाबजौलां चलो
दस्त-अफ्शां चलो, मस्त-ओ-रक्सां चलो
खाक बर-सर चलो, खूं-बदामां चलो
राह तकता है सब शहरे-जानां चलो हाकिमे-शहर भी, मजमा-ए-आम भी तीरे-इल्जाम भी, संगे-दुश्नाम भी सुब्हे-नाशाद भी, रोजे-नाकाम भी
इनका दमसाज अपने सिवा कौन है शहरे-जानां में अब बासिफा कौन है
दस्ते-कातिल के शायां रहा कौन है
रख्ते-दिल बांध लो दिलफिगारो चलो
फिर हमीं कत्ल हो आएं यारो चलो
जीसस, सुकरात, मंसूर, सरमद--वही फिर होगा।
रख्ते-दिल बांध लो दिलफिगारो चलो
दिल का सामान बांध लो अब। ऐ हृदय घायल हो गया जिनका, ऐसे लोगो, ऐ घायल हृदय वालो, अब दिल रूपी सामान बांध लो!
रख्ते-दिल बांध लो दिलफिगारो चलो
फिर हमीं कत्ल हो आएं यारो चलो
अब और तो कोई दिखाई नहीं पड़ता।
फिर हमीं कत्ल हो आएं यारो चलो
चश्मे-नम--आंखें गीली हों, आंसुओं से भरी हों--जाने-शोरीदा काफी नहीं।
और सिर्फ दीवानगी हो, इतना काफी नहीं, कुछ और करना होगा। तुम्हें कुछ करना होगा। मैं तो करने न करने के पार हुआ। जब तक तुम पार नहीं हो गए हो तब तक कुछ करो, अभयानंद।
चश्मे-नम जाने-शोरीदा काफी नहीं
सिर्फ मेरे प्रेम में तुम्हारी आंखें गीली हों और तुम सिर्फ मेरे प्रेम में दीवाने और परवाने रहो, इतना काफी नहीं।
तोहमते-इश्के-पोशीदा काफी नहीं
तुम्हारे प्रेम के कारण तुम पर बहुत बदनामी होगी, वह भी काफी नहीं।
आज बाजार में पाबजौलां चलो

आज तो बाजार-बाजार में चलना होगा। शायद तुम्हारे पैरों में जंजीरें डाल दी जाएं। शायद तुम्हारे हाथों में जंजीरें डाल दी जाएं। फिक्र न करना, जंजीरों को बजाते हुए चलना।
चश्मे-नम जाने-शोरीदा काफी नहींतोहमते-इश्के-पोशीदा काफी नहींआज बाजार में पाबजौलां चलो
आज हथकड़ियों और बेड़ियों को बजाते हुए भी चलना पड़े तो चलो।
दस्त-अफ्शां चलो...
जोर से बजाते हुए चलना हाथों को और पैरों को।
... मस्त-ओ-रक्सां चलो
उन्मत्त और नृत्य करते हुए चलना।
दस्त-अफ्शां चलो, मस्त-ओ-रक्सां चलोखाक बर-सर चलो...
तुम्हारे ऊपर धूल फेंकी जाएगी, हजार लांछन लगेंगे, कोई फिक्र न करना। सिर धूल से भर जाए तो चिंता मत करना।
खाक बर-सर चलो, खूं-बदामा चलो
और तुम्हारे दामन पर तुम्हारा ही खून गिरेगा। अभी तो मैंने तुम्हारे वस्त्रों को गैरिक से रंग दिया है--उसी तैयारी में कि आज नहीं कल, सच में ही ये वस्त्र खून से रंग जाएंगे। शुरुआत मैंने कर दी है। तुम्हें इशारा दे दिया है। यह रंग यूं ही नहीं चुन लिया है।
दस्त-अफशां चलो, मस्त-ओ-रक्सां चलो
खाक बर-सर चलो, खूं-बदामां चलोराह तकता है सब शहरे-जानां चलो
और अब उस प्यारे की मंजिल की तरफ चलना है। राह देख रहा है वह।
राह तकता है सब शहरे-जानां चलो
कब तक रुके रहोगे? प्रेयसी के नगर चलना है! प्रेमी के नगर चलना है! हाकिमे-शहर भी, मजमा-ए-आम भी
तीरे-इल्जाम भी, संगे-दुश्नाम भी
सुब्हे-नाशाद भी, रोजे-नाकाम भी
इनका दमसाज अपने सिवा कौन है
शहरे-जानां में अब बासिफा कौन हैदस्ते-कातिल के शायां रहा कौन है
अब किसकी मरने की तैयारी है? अब कौन है इस योग्य जिसकी गर्दन पर कातिल
का खंजर पड़े! अब कौन है इस योग्य जो सरमद हो सके, मंसूर हो सके? दस्ते-कातिल के शायां रहा कौन है
अब तुम पर ही भरोसा है।
रख्ते-दिल बांध लो दिलफिगारो चलो
फिर हमीं कत्ल हो आएं यारो चलो

दूसरा प्रश्नः आपका मिलन दादा चूहड़मल फूहड़मल से कब, कहां और कैसे हुआ? दादा के संबंध में कुछ और बताइए न!

निर्मला, बाई, काहे को दादा चूहड़मल फूहड़मल के पीछे पड़ी है! बेचारे मरहूम हो गए, स्वर्गीय हो गए! फिर भी बचाव नहीं!
अब तू कहती है, कुछ और बताइए न! आपका मिलन कब और कहां और कैसे हुआ?
मिलन तो बड़ी अजीब परिस्थितियों में हुआ। मेरे पड़ोस में रहते थे सरदार विचित्तर सिंह। उनके पास एक अलसेशियन कुत्ता था। नाम उन्होंने रखा था कुत्ते काः रणजीत सिंह। मोहल्ले के लोग इतने डरते थे सरदार विचित्तर सिंह से कि रणजीत सिंह का नाम कोई रणजीत सिंह नहीं ले सकता था। लोग कहते थेः हिज हाईनेस कैसे हैं! और कुत्तों के नाम तो मैंने बहुत सुने हैं, कोई कहता टाईगर, कोई कुछ, कोई कुछ। मगर विचित्तर सिंह ने नाम बिल्कुल ठीक रखा था। उनका कुत्ता एकाक्षी था, था भी रणजीत सिंह।
इसी कुत्ते के कारण मेरा दादा चूहड़मल फूहड़मल से मिलन हुआ, इसलिए उससे
ही कथा को शुरू करना पड़े। क्योंकि इसी रणजीत सिंह ने दादा चूहड़मल फूहड़मल को काट लिया। काटा दादा चूहड़मल फूहड़मल को कि कुत्ता पागल हो गया। जब मुझे खबर मिली कि रणजीत सिंह पागल हो गए, तो यह तो मैंने बहुत बार सुना था कि

कुत्ते के काटने से आदमी पागल हो जाए, मगर कुत्ता पागल हो गया! मैंने कहा, यह साईं सिद्ध है! सत्संग करना चाहिए।
और कुत्ता पागल ही न हुआ, कई चमत्कार हुए। उससे ही दादा प्रसिद्ध हुए। यूं वे काम ऐसा करते थे कि उनकी प्रसिद्धि की कोई संभावना न थी। जबलपुर में गुरंदी बाजार है, कबाड़ियों का बाजार। उसमें दादा का अड्डा बीच में ही था। पहुंचे हुए कबाड़ी थे। पुरानी चीजें खरीदना, खास कर पुरानी रद्दी।
सो ऐसे तो मैं जाता था उनकी दुकान पर, क्योंकि उनकी दुकान से मुझे कभी- कभी बड़ी कीमती पुरानी किताबें हाथ लग जाती थीं। सो उनकी रद्दी में मैं पुरानी किताबें खोजने अक्सर जाता था। मगर यह मुझे ख्याल न था कि वे जो खाट पर बैठे हुए और हुक्का गुड़गुड़ाया करते थे, वे कोई पहुंचे हुए साईं हैं! मैं चूहड़मल फूहड़मल ही समझता था कि हैं, ठीक है। मगर जब इस कुत्ते ने उन्हें काटा और विचित्तर सिंह ने कहा कि हद हो गई कि मेरा कुत्ता पागल हो गया! और पागल ही नहीं हुआ, और-और चमत्कार हो रहे हैं।
मैंने पूछा, क्या चमत्कार?
बोले, कुत्ता बोलने भी लगा है। अरे इतना ही नहीं, लिखने भी लगा है।
मैंने कहा, बिल्कुल पागल हो गया। अब इसके बचने की कोई उम्मीद नहीं।
मैं भी देखने गया कुत्ते को। कुत्ता बैठा खाट पर। दादा चूहड़मल को काटा था, सो वह भी खाट पर बैठा था। और जल्दी-जल्दी कुछ लिख रहा था।
मैंने पूछा, हिज हाईनेस, क्या लिख रहे हो?
उसने कहा, फेहरिस्त बना रहा हूं कि अब मुझे किन-किन को काटना है। फेहरिस्त देखी तो मैं दंग हुआ। नंबर एक महात्मा गांधी, नंबर दो मोहम्मद अली जिन्ना, नंबर तीन पंडित जवाहरलाल नेहरू। एकदम लिखे ही जा रहा है। मैंने पूछा कि अगर तुझे गुस्सा ही है तो इन बेचारों ने तेरा क्या बिगाड़ा है? अगर लिखना ही है तो नंबर एक लिख दादा चूहड़मल फूहड़मल।
अरे, उसने कहा कि भूल कर अब किसी सिंधी को नहीं काटूंगा। एक ही बार काटने का तो यह फल भोग रहा हूं कि मेरा पतन हो गया, कुत्तों की जाति से बाहर गिर गया, आदमी हो गया।
तो मैंने कहा, इन्होंने तेरा क्या बिगाड़ा है? महात्मा गांधी और मोहम्मद अली जिन्ना और जवाहरलाल... ?
उसने कहा कि इन्हीं दुष्टों के कारण तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा; न हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटता, न ये चूहड़मल फूहड़मल आता। मेरी बरबादी का कारण ये ही हैं। तो इसके पहले कि मेरा होश खो जाए, मैं फेहरिस्त बना रहा हूं। मेरे रग-रेशे में एकदम सिंधी खून दौड़ रहा है। बस मैं जैसे ही तैयार हुआ कि दिल्ली की तरफ जाता हूं और एक-एक को ठिकाने लगा दूंगा।
वह तो बेचारा दिल्ली नहीं पहुंच पाया, रास्ते में मर गया। इसलिए तो मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि यह कहावत है कि सिंधी और सांप अगर मिल जाएं तो पहले सिंधी को मारना, क्योंकि सांप का काटा बच जाए, सिंधी का काटा नहीं बचता। वह मर ही गया, दिल्ली पहुंचा ही नहीं। मगर तब से मैं दादा चूहड़मल फूहड़मल के सत्संग में जाने लगा। यह आदमी तो बड़ा पहुंचा हुआ है! ऐसे निर्मला, चूहड़मल फूहड़मल से मेरा संबंध बना। फिर तो खूब घुटी, खूब गहरी बातें छनीं, खूब गुफ्तगू हुई।
और तू कहती है, "उनके संबंध में कुछ और बताइए न!"
दादा चूहड़मल फूहड़मल कृष्ण-भक्त थे। रासलीला में उनका भरोसा था। रासलीला ही करते थे। गोपिएं इकट्ठी होतीं। और बड़े यथार्थवादी थे। कोई ऐसे बातचीत ही नहीं करते थे, रास हो ही जाता था। ऐसे ही एक गोपी से रासलीला करने गए थे। गोपी कोई और नहीं, खट्टमल की पत्नी। डरे तो हुए थे बहुत, क्योंकि खट्टमल भी कोई साधारण पुरुष नहीं। डरे-डरे गए थे। झोला टांगे रहते थे हमेशा एक। उस झोले में रासलीला का सब सामान रखते थे। अरे कब कहां मौका मिल जाए, कब कहां बात छिड़ जाए, मौके-बेमौके गोपी मिल जाए, और रासलीला छिड़ जाए, सो एक पीतांबर, मोर-मुकुट, घूंघर वगैरह उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन में बने सब झूठे आभूषण, मतलब हीरे-जवाहरात, बांसुरी। मगर विधि से करते थे रासलीला।

जब इस खट्टमल की पत्नी के यहां रासलीला करने गए तो बड़ी चोरी-छिपे गए। रासलीला तो चोरी-छिपे होती है। इसके पहले कि रासलीला शुरू हो, उस स्त्री ने कहा कि सावधान, खट्टमल न आ जाएं! जरा ही खटखट हो कि सम्हल जाना। इसीलिए उनका नाम खट्टमल है। बड़ी खटर-पटर करते आते हैं, आधा मील दूर से उनकी खटर-पटर सुनाई पड़ना शुरू हो जाती है। सो जैसे ही खट्ट-पट्ट हो कि तुम पीछे के दरवाजे से भाग खड़े होना। फिर यह मत देखना कि रासलीला पूरी हुई कि नहीं हुई और यह सामान वगैरह ले जा सके कि नहीं। वह मैं बाद में पहुंचा दूंगी। यह झोला भी छोड़ जाना यहीं बिस्तर के नीचे।
दादा बहुत घबड़ाए कि ये खट्टमल दूर से ही खट्ट-खट्ट करते हैं! खैर उन्होंने कहा कोई बात नहीं। इसके पहले कि वे अपना मोर-मुकुट बांधें, उस गोपी ने कहा कि इस बकवास में न पड़ो, समय खराब न करो, खट्टमल कभी भी आ सकते हैं। अरे तुम तो सीधी लीला शुरू करो। भूमिका वगैरह की कोई जरूरत नहीं है। अब बांसुरी वगैरह बजाई और किसी ने सुन ली! वे जमाने गए कि जब कृष्ण कन्हैया बांसुरी बजाए जा रहे हैं, बजाए जा रहे हैं, कोई सुन ही नहीं रहा। जंगली जानवर तक चले आ रहे हैं, कोई सुन ही नहीं रहा। गोपियां चली आ रही हैं निकल-निकल कर और गोप कोई बाधा नहीं डाल रहे। वह जमाना गया।
दादा बहुत घबड़ाए। घबड़ाहट में बोले कि भाई ठीक है, मगर बिना विधि-विधान
के रासलीला! उसने कहा कि विधि-विधान कुल इतना है कि यह लो। और एक निरोध उन्हें थमा दिया। इसका उपयोग अवश्य करिएगा--गोपी ने कहा--दादा, वरना मुसीबत हो जाएगी।
दादा ने निरोध को उलट-पलट कर देखा और बोले, बाई, यह क्या है? हजारों दफे रासलीला कर चुका, यह चीज तो शास्त्रों में लिखी ही नहीं। ऐसा तो सुना है कि ऋषि-मुनि नियोग का उपयोग करते थे, मगर निरोध का!
नियोग कहते थे, ऋषि-मुनियों के पास जब कोई स्त्री चली जाए और उनसे प्रार्थना करे कि मुझे बाल-बच्चा नहीं होता, तो वे बाल-बच्चा पैदा करवा देते थे। उसका नाम नियोग था। ऋषि-मुनियों का काम वही था जो सांड़ों का काम होता है। अरे समाज पालता है तो उपयोग भी लेगा। मुफ्त खिलाएगा तो कुछ काम में भी लगाएगा। कोई निठल्ले थोड़े ही बैठे रहने देगा। हर गांव में सांड छोड़ देते हैं एक, शिव जी का सांड, ऐसे ही ऋषि-मुनि, उनसे नियोग का वर्णन है शास्त्रों में। नियोग का मतलब है कि कोई भी स्त्री जाकर प्रार्थना कर सकती है। विधवा हो, पति बच्चे पैदा न कर पाता हो या कोई और अड़चन आ गई हो... । जैसे परशुराम ने काट डाले सब क्षत्रिय, तो फिर क्षत्रिय कहां से आए? अठारह दफे काट डाले, फिर क्षत्रिय कहां से आए? अरे नियोग की कला! ऋषि-मुनि प्रसन्न हुए कि बिल्कुल ठीक, काटो तुम। स्त्रियों को तो काट नहीं सकते थे, वे भी जरा संकोच खाते थे स्त्रियों को काटने में, पुरुष काट देते थे। स्त्रियों जाकर नियोग करवा कर फिर बच्चे पैदा कर देती थीं। ऐसे ही तो क्षत्रियों की जगह खत्री रह गए। खत्री यानी नियोग से पैदा हुए क्षत्रिय। क्योंकि अठारह दफे में तो क्षत्रिय तो और कहां से आते? क्षत्रिय तो खतम हो चुके थे।
सो दादा बोले, यह तो कुछ अशास्त्रीय बात मालूम होती है। यह कौन-सी भूमिका? यह फुग्गे जैसी चीज, यह है क्या? अरे मैं बांसुरी बजाऊं कि फुग्गा फूंकूं?
गोपी बहुत नाराज हुई कि दादा, तुम्हें कुछ पता नहीं है। तुम सतयुगी रासलीला कर रहे हो, अरे कलियुगी करो। हमेशा समय के अनुकूल होना चाहिए। मगर वे बोले कि बाई, तू बता तो, इसका करूं क्या? कुछ विस्तार से बता।
बाई ने कहा, विस्तार से नहीं बता सकती। खट्टमल न आ जाएं।
तभी एक चूहे ने खटर-पटर की। दादा बोले, खट्टमल आए क्या?
स्त्री ने कहा, खट्टमल ऐसे नहीं आते चूहों की तरह। वे आते हैं सिंह की तरह दहाड़ते हुए। दादा सब रासलीला भूल जाओगे, जल्दी करो।
तभी कुछ लड़के बाहर गिल्ली-डंडा खेलने लगे, खटर-खटर की आवाज हुई। दादा फिर बोले, खट्टमल आ रहे हैं मालूम होता है।
अरे, उस स्त्री ने कहा, तुम बकवास छोड़ो, खट्टमल आएंगे तो मैं तुम्हें बताऊंगी, तुम क्या पहचानोगे? खट्टमल कोई ऐसे आते हैं गिल्ली-डंडे के

खेलते हुए। अरे जब आएंगे तो जैसे तूफान आ रहा हो। वे भी सिद्ध पुरुष हैं। वे भी लीला करने गए हैं, आते ही होंगे। यहां दो फुग्गे थे, एक वे ले गए, एक यह बचा।
उसने कहा, विस्तार से मैं कुछ नहीं बता सकती। संक्षिप्त सार इतना है, शास्त्रों में वर्णन हो या न हो, मुझे कुछ मतलब नहीं। उस स्त्री ने अपने अंगूठे पर फुग्गे को चढ़ा कर बता दिया कि इस तरह चढ़ाओ।
दादा बोले कि ठीक है भाई, अगर रासलीला आधुनिक इसी तरह की होनी है तो इसी तरह की हो। और तत्काल स्त्री ने बिजली बुझा दी। दादा को फिर हैरानी हुई कि शास्त्रों में कहीं उल्लेख ही नहीं है, किस तरह की रासलीला हो रही है! पहले तो फुग्गा पकड़ा दिया, अब बिजली बुझा दी। कृष्ण भगवान ने बहुत रासलीला की, न कोई बिजली बुझाने का उल्लेख आता, न कुछ। अरे खुलेआम, झाड़ के नीचे, कदंब के वृक्ष के तले, आम्रकुंज में मोर नाच रहे, कोयलें गा रहीं, और लीला चल रही! और यह कैसी लीला है अंधेरे में!
कोई तरह टटोल कर लीला शुरू हुई। लीला अधूरी ही थी कि वह स्त्री बोली
कि दादा, ऐसा लग रहा है निरोध खिसक गया। जरा देखना। नहीं तो बाद में मुसीबत हो जाएगी। दादा को गुस्सा आ गया। बोले, हद हो गई, निरोध, निरोध, निरोध! यह क्या बार-बार मुसीबत लगा रखी है? बरी! अरे मैं कोई ऐसा-वैसा साईं हूं कि क्या जो निरोध को खिसक जाने दूं?
दादा ने अपने हाथ का अंगूठा दिखाते हुए कहा, यह देख, जैसा तूने बताया
था बिल्कुल वैसा ही चढ़ा हुआ है।
ऐसे पहुंचे सिद्ध पुरुष थे! अब तू पूछती है, उनके संबंध में कुछ विस्तार से बताइए!
मियां जुम्मन ने एक बार प्रतियोगिता रखी कि जो भी व्यक्ति उनके बकरे
के साथ एक घंटे तक कमरे में ठहरेगा उसे वे एक हजार रुपया इनाम देंगे। प्रतियोगिता में भाग लेने की फीस सौ रुपए थी। बड़े-बड़े महारथी प्रतियोगिता में भाग लेने आए, जिनमें मटकानाथ ब्रह्मचारी, अखंडानंद, मुक्तानंद, ढब्बू जी, चंदूलाल; उन्हीं में दादा चूहड़मल फूहड़मल भी गए।
मटकानाथ और ढब्बू जी तो क्रमशः एक के बाद एक बकरे के कमरे के बाहर एकदम भाग खड़े हुए। पांच-सात मिनट भी न रुक सके, ऐसी भयंकर बदबू थी उस बकरे में। जुम्मन मियां का बकरा बड़ा जाहिर बकरा था। उसके बाद चंदूलाल मारवाड़ी का नंबर आया, चंदूलाल लेकिन आधा घंटे तक रुका। किसी तरह सांस उसने बंद रखी, प्राणायाम साधा। अरे बड़ा योगी आदमी! लेकिन वह भी आधा घंटे के बाद सह न सका और बाहर निकल आया। फिर दादा गए। उन्हें भी बकरे के कमरे में भेजा गया। उन्होंने जाते से ही कमरे का दरवाजा बंद कर लिया। अभी पांच-दस मिनट ही हुए होंगे कि दरवाजे पर अंदर जोर-जोर से धक्का लगने लगा। दरवाजा खोला गया। जुम्मन मियां ने विजयी भाव से दरवाजा खोला। दरवाजा खुलते ही जुम्मन मियां का बकरा उन्हें चारों खाने चित करता हुआ कमरे के बाहर भाग गया। प्रतियोगिता के इस आश्चर्यजनक मोड़ के कारण दादा को विजयी घोषित किया गया। और इनाम के एक हजार रुपए लेकर दादा प्रसन्न घर लौटे। उस दिन के बाद जुम्मन मियां का बकरा आज तक लापता है। और उस दिन के बाद से उस गांव में इस तरह की कोई प्रतियोगिता नहीं हुई।
आज इतना ही।

सहज आसिकी नाहिं
दसवां प्रवचन

अंतर-आकाश के फूल

पहला प्रश्नः ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति
य इत दद विदुस्त इमे समासते।।
जिसमें सब देवता भलीभांति स्थित हैं उसी अविनाशी परम व्योम में सब वेदों का निवास है। जो उसे नहीं जानता वह वेदों से क्या निष्कर्ष निकालेगा? परंतु जो जानता हैउसे वह उसी में से भलीभांति मिल जाता है। श्वेताश्वर उपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए खोलने की अनुकंपा करें।

सत्यानंद, यह सूत्र उन थोड़े-से अदभुत सूत्रों में से एक है जिन्हें गलत समझना तो आसान, सही समझना बहुत मुश्किल। एक-एक शब्द की गहराई में उतरना जरूरी है। एक-एक शब्द जैसे जीवन-अनुभव का निचोड़ है। हजारों गुलाबों से जैसे इत्र की कुछ बूंदें बनें, ऐसे हजारों समाधि के अनुभव इस एक सूत्र में पिरोए हुए हैं।
पहले एक-एक शब्द को अलग-अलग समझ लें, फिर उनकी माला बना लेना कठिन न होगा। पहला शब्द हैः ऋचा। विश्व की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है। ऋचा का साधारण अर्थ तो होता है कविता, मगर वह तो कविता से ही प्रकट हो जाता है, उसके लिए ऋचा शब्द की कोई आवश्यकता नहीं है। कविता के पर्यायवाची शब्द दुनिया की सभी भाषाओं में हैं। संस्कृत अकेली भाषा है, जिसमें कविता के लिए दो शब्द हैं--कविता और ऋचा। कविता वह, जो मनुष्य निर्मित करता है, बांधता है छंद में, राग में, गीत में, सौंदर्य देता है, निखारता है, रूप देता है, रंग देता है।
जैसे कोई चित्रकार तितली बनाए; प्यारे हों रंग, सुंदर हो आकृति; अब उड़ी तब उड़ी ऐसा लगे--मगर उड़े कभी भी नहीं, उड़ सके ही नहीं। कैनवास पर ही रहेगी; न कहीं आएगी न कहीं जाएगी। बगीचे में फूल भी खिलेंगे तो भी वह तितली कैनवास पर ही रहेगी। सूरज भी निकलेगा, किरणें संदेश भी लाएंगी कि चलो यात्रा पर चलो, हवाएं भी आएंगी, शायद कैनवास भी फड़फड़ाएगा; लेकिन तितली के पंख नहीं खुलेंगे। नहीं खुल सकते हैं। वह तो केवल तस्वीर है।
कविता मात्र आदमी के द्वारा बनाई गई तस्वीर है; कितनी ही प्यारी हो फिर भी तस्वीर है। और ऋचा--जब मनुष्य मिट जाता है। मन मिट जाता है तो मनुष्य मिट जाता है। मन नहीं तब ध्यान। उस ध्यान में जो उतरता है आकाश से, अंतरिक्ष से, वह है ऋचा। उसके छंद नहीं बिठाने होते। उसके बंध नहीं बिठाने होते। उसकी मात्राएं नहीं जुटानी होतीं। वह गीत जीवित है। वह जीवंत काव्य है। वह बहता है। जैसे तितली उड़ती है। जैसे असली फूल खिलते हैं। वह कागज का फूल नहीं है, गुलाब की झाड़ी पर खिला फूल है। वह तस्वीर नहीं है दीए की, सच में ही दीया है।
ऋचा उतरती है समाधिस्थ चेतना में। काव्य है सौंदर्य की संवेदनशीलता।
और ऋचा है परमात्मा को अपने में से बहने देना। जब कोई बांस की पोंगरी की तरह हो जाता है, शून्य, खाली, तो बस परमात्मा के ओंठों पर बांसुरी बन जाता है।
इसलिए कविता तो कवि की होती है, ऋचा ऋषि की होती है। दोनों ही गाते हैं, दोनों ही गुनगुनाते हैं; मगर दोनों की गुनगुनाहट के स्रोत अलग हैं। ऋषि वह है जो परमात्मा के साथ एक हो गया। उस एकता से जो आनंद की लहरें उठती हैं, उस एकता से जो नृत्य उठता है, जो घूंघर बज उठते हैं--वह है ऋचा। उस एकता के बिना मनुष्य अपने सौंदर्य-बोध से, अपने मन से, जो निर्मित करता है-- कितना ही प्रीतिकर हो, मगर रहेगा मुर्दा। परमात्मा के बनाए बिना किसी चीज में कोई जीवन नहीं होता है। आदमी केवल लाशें गढ़ सकता है, मूर्तियां बना सकता है, लेकिन उनमें प्राण का संचरण नहीं कर सकता, उनमें श्वास नहीं फूंक सकता।

ऋचा है सांस लेती हुई कविता। ऋचा है सप्राण काव्य। कविता है केवल देह,
जब देह में आत्मा भी विराजित होती है तो ऋचा।
दूसरा शब्द हैः अक्षर। वर्णमाला को हम--केवल हम सारी पृथ्वी पर--अक्षर
से शुरू करते हैं। अ अक्षर का प्रतीक है। अच्छा नहीं किया लोगों ने कि अभी कुछ वर्षों से वर्णमाला क ख ग से शुरू होने लगी। वह अ से ही शुरू होनी चाहिए। अ यानी अक्षर। अक्षर परमात्मा का दूसरा नाम है। सभी यात्रा उसी से शुरू होनी चाहिए। शब्द की यात्रा के पहले कदम में ही अक्षर की झलक होनी चाहिए। इसलिए हमारी वर्णमाला अक्षरमाला है। हम ही हैं केवल पृथ्वी पर जो अक्षर जैसे अनूठे भाव का प्रयोग कर रहे हैं वर्णमाला के लिए। और वर्णमाला की यात्रा का जो पहला कदम है, अ, वह अक्षर का संकेत है--जिसका क्षय न हो; जो कभी झरे न; जो कभी मिटे न; जो है, सदा था, सदा रहेगा।
तीसरा शब्द हैः व्योम। आकाश ही कहने से चल जाता। लेकिन आकाश वह है जो हमारे बाहर फैला है। और व्योम आकाश से भी बड़ा है। व्योम का अर्थ हैः बाहर का आकाश धन भीतर का आकाश। एक तो अस्तित्व है जो हमारे बाहर फैलता चला गया है; कहो संसार, कहो विश्व, ब्रह्मांड। और एक है अस्तित्व जो हमारे भीतर फैलता चला गया है। दोनों असीम हैं। दोनों के जोड़ का नाम व्योम है। व्योम का अर्थ होता है जो सदा विस्तीर्ण ही होता चला जा रहा है, फैलता ही चला जा रहा है, जिसकी कोई सीमा नहीं आती। कितना ही चलो, लेकिन कभी ऐसा क्षण न आएगा कि कह सको कि बस, अब आगे और कुछ भी नहीं है। फिर भी शेष है। फिर भी शेष है। जो सदा शेष है; कितनी ही डुबकी मारो, जिसकी थाह नहीं मिलती; और कितना ही विचार करो, जिसका वर्णन नहीं होता है; और कितने ही गीत गाओ, जो अनगाया ही रह जाता है--उसका नाम है, व्योम। व्योम में अंतर-आकाश सम्मिलित है।
अब तुम्हें पहली पंक्ति का अर्थ समझ में आ सकता है।
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्।
ऋचा अविनाशी परम व्योम में झरती है। वह फूल उस अंतर-आकाश में खिलता है। वह कमल चैतन्य की झील में उमगता है। और उस कमल की गंध ही ऋचा बन जाती है, वेद बन जाती है। वेद से तुम अर्थ न लेना उन चार वेदों का। उनमें तो निन्यानबे प्रतिशत व्यर्थ की बातें हैं। कहीं भूले-चूके कोई हीरा मिल जाए, मिल जाए, नहीं तो सब कंकड़-पत्थर हैं। वेद का अर्थ होता हैः तुम्हारे भीतर जो जानने की क्षमता है, उसका परम निखार--विद का परम निखार। विद यानी ज्ञान, बोध। बुद्धत्व है वेद का अर्थ। इसलिए बुद्ध ने चारों वेदों को इनकार कर दिया, क्योंकि जिसे पांचवां वेद उपलब्ध हो उसे चारों को इनकार करना ही होगा। उन चार में जो खो जाता है वह पांचवें को नहीं पा पाता है। यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
और इस व्योम में ही विश्व के सारे देवताओं का निवास है।
देवता शब्द भी समझने जैसा है, नहीं तो भ्रांति हो जाएगी। क्योंकि तुमने देवता शब्द सुना कि तुमने समझा श्री गणेशाय नमः! कि गणेश जी, कि हनुमान जी, कि इंद्र महाराज, कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश। इन सबसे देवता का कोई संबंध नहीं है।
देवता शब्द बड़ा वैज्ञानिक शब्द है। देवता बनता है दिव से। दिव का अर्थ होता हैः प्रकाश। उसी से दिवस बना है, दिन। उसी से अंग्रेजी का डे बना है--दिव से। उसी से अंग्रेजी का डिवाइन बना है। उसी से हिंदी का दिव्य बना है। और तुम चकित होओगे जान कर, उसी से अंग्रेजी का डेविल बना है। दिव्य भी उसी से और अदिव्य भी उसी से। क्योंकि वही है, और कोई भी नहीं है। उठो तो उसमें, गिरो तो उसमें। जागो तो उसमें, सोओ तो उसमें। डेविल का अर्थ होता है जो सोया है; जो गिर गया है; जो सिर के बल खड़ा है। मगर इससे क्या फर्क पड़ता है? है तो उसकी ऊर्जा भी दिव्य।
यूं समझोगे तो तुम्हें यह बात समझ में आ जाएगी कि क्यों चांद को देवता कहा गया है, क्यों सूरज को देवता कहा गया है। इसीलिए कि वे प्रकाश के स्रोत हैं। प्रकाश के कारण ही उन्हें देवता कहा गया है। इसीलिए अग्नि को देवता कहा गया है।
लेकिन लोग तो नासमझ हैं। वे अग्नि की पूजा करने लगे। वे सूर्य-नमस्कार करने लगे। उन्होंने समझा कि सूर्य देवता है। जैन मुनि बहुत नाराज

थे जब पहली दफे अमरीकी यात्री चांद पर उतरे। जैन मुनियों ने तो एक भारी संगठन खड़ा किया कि ऐसा नहीं होना चाहिए, क्योंकि देवता के ऊपर और मनुष्य के चरण पड़ें! आदमी और देवता पर चले, यह बात शोभा देती है? क्योंकि हमने देवता का अर्थ ही गलत समझ लिया है।
यूं तो पृथ्वी भी देवता है। जिन्होंने चांद पर खड़े होकर पृथ्वी को देखा वे चकित हुए, क्योंकि देखा कि पृथ्वी भी इतनी ही ज्योतिर्मय है, जैसा चांद। चांद से पृथ्वी ज्योतिर्मय मालूम होती है, चांद मिट्टी रह जाता है। दूर के ढोल सुहावने! जमीन से चांद लगता है प्रकाशित, चांद से पृथ्वी लगती है प्रकाशित। क्योंकि प्रकाशित लगने का कारण सूर्य की किरणों का वापिस लौटना है। सूर्य की किरणें चांद पर पड़ कर वापिस लौटती हैं, वापिस लौटती किरणें जब तुम्हारी आंखों को मिलती हैं तो लगता है कि चांद प्रकाशित है। चांद पर खड़े होकर देखोगे तो पृथ्वी से सूरज की किरणें वापिस लौट रही हैं। वे तुम्हारी आंखों से मिलती हैं तो लगता है पृथ्वी प्रकाशित है।
जैसे कि कोई टार्च को दर्पण के ऊपर मारे तो दर्पण से ज्योति निकलनी शुरू हो जाए; दर्पण प्रतिफलित कर देगा प्रकाश को और तुम्हें लगेगा कि शायद दर्पण से ज्योति आ रही है। ठीक ऐसा ही चांद है, ऐसी ही पृथ्वी है, ऐसा ही मंगल है। ये कोई व्यक्ति नहीं हैं। लेकिन देवता शब्द से व्यक्ति की भ्रांति पैदा होती है। सिर्फ अर्थ हैः इस जगत में जो भी प्रकाशित है, इस जगत में जो भी प्रकाश है, आलोक है, वह सब इसी परम अविनाशी व्योम में, इसी भीतर के महाशून्य में, उसका स्रोत है।
"जिसमें सब देवता भलीभांति स्थित हैं उसी अविनाशी परम व्योम में सब वेदों का निवास है।"
और जहां से यह प्रकाश आ रहा है, जहां से तुम्हारी चेतना आ रही है-- क्योंकि चेतना से ज्यादा प्रकाशित इस जगत में और कुछ भी नहीं है, न चांद, न सूरज, न तारे; चेतना इस जगत में सबसे ज्योतिर्मय है, सर्वाधिक प्रकाशोज्ज्वल अनुभूति है--इस चेतना में ही सब वेदों का निवास है, अर्थात सारे ज्ञान का निवास है।
यही मैं तुमसे कह रहा हूं रोज कि खोदो अपने भीतर। कहीं और जाना नहीं है--न वेद में, न गीता में, न कुरान में, न बाइबिल में। खोदो अपने भीतर। लो ध्यान की कुदाली और खोदो अपने भीतर। जो अपने भीतर खोदता है उसी को मैं संन्यासी कहता हूं। जो बाहर की खुदाई में लगा है वह संसारी है। जो भीतर की खुदाई में लग गया है वह संन्यासी है। और जिसने भीतर खोदा है उसने सब वेद पा लिए, सब कुरान पा लिए, सब बाइबिलें पा लीं। उसके भीतर बुद्ध भी मिल गए, महावीर भी मिल गए, कृष्ण भी मिल गए, जरथुस्त्र भी, जीसस भी। उसके भीतर मोहम्मद भी बोले, फरीद भी बोले, नानक भी बोले, कबीर भी बोले, पलटू भी बोले। उसके भीतर सारे संतों का समागम हो गया। सारे देवता वहां विराजमान हैं।
सारे वेद वहां विराजमान हैं। क्योंकि बोध वहां विराजमान है।
"जो उसे नहीं जानता वह वेदों से क्या निष्कर्ष निकालेगा?"
सूत्र बड़ा प्यारा है।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति।
और जिसने भीतर के वेद को नहीं पहचाना वह पागल बाहर के वेदों के अर्थ
कर रहा है! पंडित लगे हैं व्याख्याएं करने में। अपना पता नहीं है और शास्त्रों के अर्थ कर रहे हैं। अर्थ क्या करेंगे, अनर्थ कर रहे हैं! अर्थ कर ही नहीं सकते। उनसे अर्थ हो ही नहीं सकता, केवल अनर्थ ही हो सकता है। मगर मजे से करते चले जाते हैं।
चैतन्य कीर्ति ने पूछा है कि एक जैन मुनि श्री मधुकर ने आपके खिलाफ एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने लिखा है कि संभोग से समाधि असंभव है।
जहां तक मुझे याद पड़ता है, मधुकर मुनि मुझे मिले हैं। राजस्थान में ब्यावर में तीन दिन तक मुझे रोज मिले हैं। और एक ही उनकी जिज्ञासा थी कि ध्यान कैसे लगे।
ध्यान का पता नहीं है और संभोग और समाधि की व्याख्या में लगे हैं! दोनों शब्द एक ही बीज से निकले हैंः सम। संभोग भी और समाधि भी। जहां समता है, जहां सब सम्यक हो गया, वहीं संभोग है। क्षण भर को होगा, लेकिन उस क्षण

भर को सब ठहर गया, सब सम हो गया, कुछ विषम न रहा। कोई विचार न रहा, कोई चिंता न रही, कोई मैं-तू का भाव न रहा, ऐसी ही घड़ी को तो संभोग कहते हैं। वह एक क्षण को ठहरेगी, फिर खो जाएगी। समाधि ऐसा संभोग है जो आया तो आया, फिर जाता नहीं है। अगर संभोग बूंद है तो समाधि सागर है। मगर दोनों सम से ही बने हैं, ख्याल रहे। संभोग शब्द को गाली मत देना। उसे गाली दी तो तुम सम शब्द को गाली दे रहे हो।
लेकिन उन्हें ध्यान का तो कुछ पता नहीं, न समाधि का कुछ पता है। लेकिन पंडित हैं तो उन्होंने व्याख्या कर दी समाधि कीः सम धन आधि। और संभोग रहेगा तब तो आधि रहेगी, आधि से व्याधि पैदा होगी, व्याधि से उपाधि पैदा होगी। चले! अब शब्द में से शब्द निकलते जाएंगे। समाधि का कोई अनुभव नहीं है। समाधि की कोई झलक नहीं है। लेकिन समाधि शब्द की व्याख्या शुरू हो गई। और फिर व्याख्या में अनर्थ तो होने वाला है।
समाधि की क्या व्याख्या की! कि जो आधियों के बीच अपने मन को संतुलित रखता है। सुख आए कि दुख आए--आधियां आती हैं--सफलता मिले कि असफलता मिले, जो दोनों के बीच अपने मन को सम रखता है वह समाधिस्थ।
मन को सम रखता है! मन कभी सम होता ही नहीं। मन है ही विषमता का नाम। जब
तक यह दिखाई पड़ रहा है कि यह सफलता है और यह असफलता, क्या खाक मन को सम रखोगे? जिस दिन मन नहीं रहता उस दिन समता आती है। मन का अभाव है समता। मन कभी सम नहीं होता। मन का तो स्वरूप विषम है। मन तो डांवाडोल ही रहेगा, नहीं तो मन ही न रहेगा।
लेकिन भाषा में हम इस तरह के उपयोग करते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक होटल खोली और पहला ही आदमी भीतर आया--चंदूलाल मारवाड़ी। मुल्ला ने तो सिर पीट लिया कि यह कहां सुबह-सुबह मारवाड़ी दिखाई पड़ गया! और पहले ही दिन होटल खोली है, हो गया बंटाढार! लेकिन अब क्या कर सकता था? कहा कि विराजिए; क्या सेवा करूं?
चंदूलाल बोले कि बड़ी गर्मी है, बड़ी धूप पड़ रही है, एक पानी का गिलास। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, पानी का गिलास असंभव। पानी का गिलास यहां
है ही नहीं। गिलास में पानी दे सकता हूं, लेकिन पानी का गिलास कहीं और खोजो। रास्ता पकड़ो।
भाषा में चल जाता है--पानी का गिलास। मगर मुल्ला नसरुद्दीन भी मुल्ला है, मौलवी है। अरे किसी मुनि से पीछे थोड़े ही है! किसी मधुकर मुनि से पीछे थोड़े ही है! आधि से व्याधि, व्याधि से उपाधि--चले! उसने वहीं तरकीब निकाल ली। मारवाड़ी को वहीं ठंडा कर दिया कि जा भाग, कहां पानी का गिलास मांग रहा है! पानी का कहीं गिलास होता है?
तूफान आता है, सागर में लहरें ही लहरें उठ आती हैं; उत्तुंग लहरें, जैसे आकाश को छू लेंगी। नावें डांवाडोल होती हैं, डूबती हैं, जहाज टकराते हैं। फिर तूफान चला गया। तुम कहते हो, तूफान शांत हो गया। लेकिन यह सिर्फ उसी तरह का शाब्दिक उपयोग है, जैसे पानी का गिलास। तूफान शांत हो गया या नहीं हो गया? तूफान शांत होने का अर्थ तो यह हुआ कि तूफान है तो, मगर अभी शांत है। अगर शब्द को ही पकड़ो--और पंडित के पास कुछ और तो पकड़ने को होता नहीं, सिर्फ शब्द ही पकड़ने को होते हैं। तूफान शांत है, इसका अर्थ है कि तूफान तो है मगर शांत है। अब कब अशांत हो जाएगा, क्या पता! जंजीरें डाल दी हैं, शांत बैठा है। है तो। लेकिन जब तुम कहते हो तूफान शांत हो गया तो असल में तुम्हारा मतलब यह है कि तूफान नहीं हो गया, अब तूफान नहीं है।
मन शांत नहीं होता। मन को शांत कहने का कोई अर्थ नहीं है। मन को शांत कहने का अर्थ हैः अमनी दशा। नानक ने कहाः अमनी दशा। मन नहीं रहा। वही शांत है मन का होना। जहां मन नहीं है वहां समाधि है।
मगर मधुकर मुनि व्याख्या कर रहे हैंः सफलता में असफलता में, सुख में दुख में, हार में जीत में--समभाव रखना। मगर अभी हार और जीत दिखाई तो पड़ती है न! जब दिखाई पड़ती है तो समभाव कैसे रहेगा? हार हार है, जीत जीत है। मिट्टी पड़ी है, सोना पड़ा है, दोनों के बीच समभाव से बैठे हैं मधुकर मुनि कि समभाव रखना है। सोना सोना है, मिट्टी मिट्टी है, अपने को क्या लेना-देना? मगर जब तक सोना सोना दिखाई पड़ रहा है और मिट्टी मिट्टी दिखाई पड़ रही है, तब तक तुम

लाख अपने को समझा कर बिठाए रखो, यह जबरदस्ती थोपा गया संयम तो हो सकता है, लेकिन समाधि नहीं। समाधि तो बड़ी और बात है।
कबीर का बेटा थाः कमाल। कबीर ने उसे नाम ही कमाल दिया--इसीलिए कि कबीर
से भी एक कदम आगे छलांग ली उसने। कबीर का ही बेटा था, आगे जाना ही चाहिए। वह बेटा ही क्या जो बाप को पीछे न छोड़े! हर बाप की यही आकांक्षा होनी चाहिए कि मेरा बेटा मुझे पीछे छोड़ दे। हर गुरु की यही आकांक्षा होनी चाहिए कि मेरा शिष्य मुझे पीछे छोड़ दे। यही उसकी सफलता है। यही उसका सौभाग्य है।
कबीर के पास लोग धन ले आते चढ़ाने, सोना ले आते। कबीर कहते, नहीं भाई, यह
सब तो मिट्टी है। इस मिट्टी को क्या करेंगे, ले जाओ! कमाल कबीर के झोपड़े के बाहर ही बैठा रहता। वह कहता, भैया, मिट्टी लाए और मिट्टी फिर ले जा रहे! अरे रख जाओ, मिट्टी ही है! जब मिट्टी ही है तो कहां ले जा रहे हो? एक तो लाने की भूल की, अब कम से कम दूसरी भूल तो न करो। रख दे, रख दे!
कबीर को लोगों ने शिकायत की कि आप ऐसे महात्यागी और यह लड़का तो शैतान है! आप तो भीतर से कह देते हो लोगों को कि यह मिट्टी है, ले जा भाई, हम क्या करेंगे, हम तो फकीर आदमी हैं; और यह लोगों से कहता है कि अरे मिट्टी है, कहां ले जा रहे हो? एक तो यहां तक ढोई, यह कष्ट सहा; अभी भी अज्ञान में ही पड़े हो? अरे छोड़ दे, रख दे! यहीं रख दे! रखवा लेता है।
कबीर ने कहा, यह बात तो ठीक नहीं। कमाल को कहा कि यह बात ठीक नहीं। कमाल ने कहा, आप ही कहते हो कि मिट्टी है, तो फिर बात ठीक क्यों नहीं? बेचारों ने यहां तक ढोया, अब उनको फिर वापिस ढोने के लिए कह रहे हो! कुछ तो दया करो! अरे दया-ममता तो होनी ही चाहिए फकीर में, संन्यासी में!
कबीर ने कहा कि मेरी-तेरी न बनेगी, तू अलग ही एक झोपड़ा बना ले। तो उसने अलग ही झोपड़ा बना लिया। काशी-नरेश कबीर के पास आते थे। उन्होंने पूछा, बहुत दिन से कमाल नहीं दिखाई पड़ता, वह तो बाहर ही बैठा रहता था। कबीर ने कहा, उसे अलग कर दिया, क्योंकि वह लोगों से धन-पैसा ले लेता था।
काशी-नरेश ने कहा कि देखें, परीक्षा करें। वे गए एक बड़ा बहुमूल्य हीरा लेकर। कमाल बैठा था अपने झोपड़े में। उन्होंने हीरा चढ़ाया। कमाल ने कहा, अरे, क्या पत्थर लाए! न खा सकते, न पी सकते, क्या पत्थर लाए! कुछ लाते काम की चीज।
काशी-नरेश ने सोचा कि यह तो बात बड़ी गजब की कह रहा है और इसको कबीर ने अलग कर दिया! सो उठा कर वह अपने हीरे को वापिस जेब में रखने लगे। अरे--कमाल ने कहा--अब छोड़ रे! अरे मूर्ख! यहां तक ढोया पत्थर को, अब कहां ले जा रहा है? रख!
तब काशी-नरेश ने समझा कि यह तो आदमी होशियार है! यह तो बड़ा... अब इससे कुछ कह भी नहीं सकते, क्योंकि इनकार ही अगर करना था कि पत्थर नहीं है तो पहले ही करना था। पहले तो हां भर ली कि हां भई है तो पत्थर ही, अब कैसे इनकार करें? किस मुंह से इनकार करें? इसने तो खूब फंसाया।
तो काशी-नरेश ने पूछा, कहां रख दूं?
कमाल ने कहा, वही गलती, वही गलती, गलती पर गलती। अरे पत्थर को कोई पूछता है कहां रख दूं? अभी भी तुम हीरा ही मान रहे हो? अरे कहीं भी रख दो, जहां रखना हो। या पड़ा रहने दो जहां पड़ा है। रखना क्या?
मगर काशी-नरेश भी तय ही करके आया था कि परीक्षा पूरी कर लेनी उचित है।
तो उसने--बहुमूल्य हीरा था, मुश्किल था उसको पड़ा रहने देना--छप्पर में खोंस दिया। पंद्रह दिन बाद लौटा। सोचा उसने कि मैं इधर बाहर निकला कि इसने हीरा निकाला।
पंद्रह दिन बाद वापिस लौटा, इधर-उधर की बात की, आया तो पता लगाने था हीरे का। पूछा कि मैं पंद्रह दिन पहले हीरा लाया था, क्या हुआ? हीरे का क्या हुआ?
कमाल ने कहा, गजब करते हो! कैसा हीरा? कब लाए थे? मैंने तो नहीं देखा। काशी-नरेश ने कहा, अरे हद! मेरे सामने ही झूठ बोल रहे हो! मेरा वजीर भी मौजूद था, मैं उसको साथ लेकर आया हूं गवाह। तो कबीर ठीक ही कहते हैं कि यह आदमी गड़बड़ है।

कमाल ने कहा, अरे तुम उस पत्थर की बात तो नहीं कर रहे जो एक दिन लाए थे पंद्रह-बीस दिन पहले? उसी पत्थर को हीरा कह रहे हो, अभी भी हीरा कह रहे हो? यह तो तय हो गया था, यह तो निर्णय हो चुका था पत्थर है।
काशी-नरेश ने कहा, हां निर्णय हो गया था, मैं उसको खोंस गया था झोपड़े में। तूने निकाला होगा।
कमाल ने कहा, मुझे क्या पड़ी निकालने की? तुम देख लो। अगर कोई और निकाल
कर ले गया हो तो मैं कुछ कर नहीं सकता, क्योंकि मैं कोई पहरेदार नहीं हूं यहां तुम्हारे पत्थरों का। और अगर किसी ने न निकाला हो तो होगा झोपड़े में। नरेश चकित हुआ देख कर हीरा वहीं के वहीं छप्पर में खुंसा हुआ था। पैरों पर गिर पड़ा कमाल के और कहा, मुझे क्षमा कर दो।
पर, उसने कहा, इसमें क्षमा करने की बात ही क्या है? तुम गलती ही गलती किए चले जा रहे हो। अरे पत्थर है, उसको मैंने नहीं निकाला, तो इसमें खूबी की क्या बात है? पत्थर तो बाहर बहुत पड़े हैं। कोई पत्थर बीनने के लिए यहां बैठा हूं। यहां पैरों पर किसलिए पड़ रहे हो? अगर तुम उसे हीरा ही मानते हो तो भैया ले जाओ और दुबारा इस तरह की चीजें यहां मत लाना।
हिम्मत तो नहीं पड़ी ले जाने की काशी-नरेश की। लेकिन यह कमाल कबीर से
भी गहरी बात कह रहा है। अगर तुम्हें दिखाई पड़ने लगा कि सोना मिट्टी है तो फिर मिट्टी और सोने में फर्क कहां रह जाएगा? फिर समता का सवाल कहां है? अगर सफलता और असफलता सच में ही समान हो गए तो किसको सफलता कहोगे, किसको असफलता कहोगे? किसको प्रशंसा, किसको अपमान?
ये मधुकर मुनि सिर्फ लफ्फाजी कर रहे हैं। न इन्हें संभोग शब्द का अर्थ पता है, क्योंकि अनुभव नहीं, समता का कोई अनुभव ही नहीं। एक क्षण नहीं जाना समता का। मेरे सामने गिड़गिड़ाते थे, पूछते थे कि ध्यान कैसे लगे? और उस लेख में उन्होंने ध्यान समझाया है--चित्त की एकाग्रता ध्यान है। और धारणा ध्यान बन जाती है जब मजबूत होती है। और जब ध्यान मजबूत होता है तो समाधि बन जाती है।
मजबूत! जैसे धारणा डंड-बैठक लगाए तो ध्यान बने, फिर ध्यान अखाड़ाबाजी करे तो समाधि बने! मजबूत! कौन करेगा धारणा? धारणा तो मन में होती है। अगर धारणा मजबूत होगी तो मन मजबूत होगा, ध्यान मजबूत नहीं होगा। और चित्त की एकाग्रता से तो चित्त ही मजबूत होगा, इससे समाधि कैसे आ जाएगी? मगर यही चलता है।
यह सूत्र ठीक कहता है कि जो उसे नहीं जानता, जो स्वयं के भीतर के वेद
को नहीं पढ़ा है अभी, वह वेदों से क्या निष्कर्ष निकालेगा? मगर वे ही लोग व्याख्याएं कर रहे हैं, टीकाएं कर रहे हैं, बड़ी विस्तीर्ण व्याख्याएं लिखते हैं। ब्रह्म का कोई अनुभव नहीं है और ब्रह्म-सूत्र पर भाष्य लिखते हैं। योग की कोई झलक भी नहीं मिली। योग मतलब जोड़। परमात्मा से मिलने की कोई प्रतीति ही नहीं हुई और पतंजलि के योग-सूत्र पर लिखे चले जाते हैं। अभी भगवान ने कोई गीत भीतर गाया नहीं, अभी भगवतगीता जन्मी नहीं। हां, मगर वह जो बाहर की गीता है उस पर कितनी टीकाएं हैं! एक हजार तो प्रसिद्ध टीकाएं हैं और अनेक हजार अप्रसिद्ध टीकाएं होंगी।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति।
पहले भीतर के वेद को तो खोल लो। वह कोरी किताब तो पढ़ लो। उसे पढ़ते ही
सब समझ में आ जाता है। क्यों? क्यों सब समझ में आ जाता है? इसलिए कि--
य इत दद विदुस्त इमे समासते।
क्योंकि जो भीतर को जानता है वह भीतर के साथ एक हो जाता है। जो उसे जानता है, जो चैतन्य को जानता है, वह चैतन्य की परिपूर्णता को उपलब्ध हो जाता है, वह चैतन्य के साथ तदाकार हो जाता है। बूंद सागर को जानने जाएगी, सागर में उतरेगी कि सागर हो जाएगी। और जानने का एकमात्र यही उपाय है--वही हो जाओ। बाकी सब जानना बाहर-बाहर से है।
यही विज्ञान और धर्म का भेद है। विज्ञान यूं है जैसे फूल के चारों तरफ चक्कर लगाओ, लगाए जाओ चक्कर। इधर से जानो, उधर से जानो। इस कोने से देखो, उस कोने से देखो। इधर से परखो, उधर से परखो। बाहर-बाहर। और धर्म हैः फूल में प्रवेश कर जाओ।

चीन की एक बहुत पुरानी झेन कथा है। एक सम्राट ने, जिसे हिमालय से बहुत प्रेम था, एक झेन फकीर को कहा, जो उस समय का सर्वाधिक बड़ा कलाविद था, चित्रकार था--कि क्या तुम मेरे लिए हिमालय की छबि उतार दोगे? मेरे सोने के कमरे में, पूरी दीवार पर हिमालय की वे उत्तुंग आकाश को छूते हुए शिखर! वे हिमाच्छादित शिखर! वे कुंवारे हिमाच्छादित शिखर, जिन पर कोई कभी चला नहीं! उनकी तुम छबि बना दो।
उस चित्रकार ने कहा, बनाऊंगा। लेकिन समय बहुत लगेगा। और जब तक पूरी बात न हो जाए, पूरा चित्र न बन जाए, भीतर किसी को आने की आज्ञा न होगी। सम्राट राजी हुआ। तीन वर्ष लगे। प्रतीक्षा बढ़ती गई, उत्सुकता बढ़ती गई
कि तीन वर्ष झेन फकीर क्या कर रहा है! तीन वर्ष बाद उसने एक दिन कहा कि बस आज आप आएं। दरवाजा खोला, सम्राट भीतर गया। उसके दरबारी भीतर गए, उसकी रानी भीतर गई।
अवाक खड़ा रह गया, आंख की पलकों ने झपकना बंद कर दिया। हिमालय देखा था, मगर इस फकीर ने तो गजब कर दिया था। ऐसा सजीव हो उठा था हिमालय दीवार पर कि वह भूल ही गया कि यह चित्र है! वह पूछने लगा, यह कौन-सा शिखर है? यह कौन-सा शिखर है? यह कौन-सी नदी बह रही है? और तभी उसने पूछा, यह पहाड़ के पास से एक पगडंडी जाती है, यह कहां जाती है?
उस फकीर ने कहा कि इस पगडंडी पर जाकर मैंने देखा नहीं। मैं जरा जाकर देखूं।
और कहते हैं कि वह फकीर उस पगडंडी पर जो गया सो गया, लौटा ही नहीं।
अब यह कहानी बड़ी बेबूझ हो गई। कहीं कोई चित्र की पगडंडी पर जा सकता है!
और जाए भी तो लौटे ही नहीं! थोड़ी दूर तक तो सम्राट को दिखाई पड़ता रहा, फिर पहाड़ की ओट में चली गई थी पगडंडी, पीछे की तरफ मुड़ गई थी, फिर उसका कोई पता न चला।
मगर यह कहानी बड़ी प्रीतिकर है। यह कहानी यही कह रही है कि धर्म के जानने का ढंग विज्ञान के जानने के ढंग से भिन्न है। विज्ञान बाहर से जानता है, चारों तरफ चक्कर मारता है। इसलिए विज्ञान में ज्ञान नहीं है, केवल परिचय है, पहचान है। धर्म ज्ञान है, वेद है, बोध है। व्यक्ति प्रविष्ट हो जाता है। यूं प्रविष्ट हो जाता है कि लौटने की जगह ही नहीं बचती। अब बूंद सागर में उतरेगी तो फिर क्या लौटेगी? यही कह रही है यह कहानी।
ठीक कहता है सूत्र, "जो उसे जानता है वह उसी में भलीभांति मिल जाता है।"
और जब तक हम एकाकार न हो जाएं अस्तित्व से तब तक हमने जाना नहीं। बुद्ध ने इसी व्योम को शून्य कहा है। कबीर ने भी इसी व्योम को सुन्न गगन कहा है। निर्वाण कहो इसे। लेकिन बात एक ही है। इस तरह मिट जाना है कि खोजने से भी अपना पता न चले।
जिस दिन तुम इस भांति मिट जाओगे कि अपना कोई पता न चलेगा, उसी दिन पता चलेगा कि परमात्मा क्या है। और उसी दिन पता चलेगा जीवन का अर्थ, जीवन का गीत, जीवन का नृत्य, जीवन का उत्सव!
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति
य इत दद विदुस्त इमे समासते।।

दूसरा प्रश्नः मेरी कामवासना नहीं जाती। क्या करूं?

हरिकृष्णदास ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य के कारण ही नहीं जाती होगी। वासना गई नहीं, और ब्रह्मचारी तुम हो कैसे गए? वासना जाए तब ब्रह्मचर्य है। लेकिन लोग उलटे कामों में लगे हैंः पहले ब्रह्मचर्य की कसमें खाते हैं, फिर वासना को हटाने में लगते हैं। ऐसे नहीं होगा। ऐसा जीवन का नियम नहीं है। तुम जीवन के नियम के विपरीत चलोगे तो हारोगे, दुख पाओगे। और तब तुम एक मूर्च्छा में जीओगे।

अब तुम मान रहे हो कि मैं ब्रह्मचारी हूं। कसम खा ली है, तो ब्रह्मचारी हूं। मगर कसमों से कहीं मिटता है कुछ? कसमों से कहीं कुछ रूपांतरित होता है? अब ऊपर-ऊपर ढोंग करोगे पाखंड का, ब्रह्मचर्य का झंडा लिए घूमोगे, और भीतर? भीतर ठीक इससे विपरीत स्थिति होगी। यह दुनिया बड़ी विचित्र है, हरिकृष्णदास ब्रह्मचारी।
लास एंजिल्स के एक बाईस वर्षीय युवक ने अखबार में एक विज्ञापन दिया
कि मैं अकेला हूं और एक ऐसी लड़की की तलाश में हूं जो मेरे साथ दक्षिण अमेरिका की यात्रा पर चल सके। बाक्स नंबर के साथ दिए इस विज्ञापन के जवाब में केवल एक पत्र आया। जानते हैं, वह किसका था? उसी युवक की अति धार्मिक विधवा मां का। अति धार्मिक विधवा मां! मगर चूंकि बाक्स नंबर था, उसे क्या पता कि अपने ही बेटे को उत्तर दे रही है। पाखंड कहीं न कहीं से खुलेगा ही, खुलना अनिवार्य है।
दादा चूहड़मल फूहड़मल नशे की पीनक में ऊंघ रहे थे। मैं पास ही बैठा अखबार पढ़ रहा था। एक खबर पढ़ कर मैंने कहा, दादा, अरे देखो किसी ने कुएं में गिर कर जान से हाथ धो लिए।
दादा बोले, कोई पागल था, अरे जब कुएं में गिर ही गया तो जान से हाथ क्यों धोए, पानी से धो लेता!
होश नहीं है, एक बेहोशी है। अब तुम कम से कम अपने को ब्रह्मचारी लिखना
तो बंद करो! इतना तो कर ही सकते हो। कामवासना जाए या न जाए, कम से कम ब्रह्मचर्य को तो जाने दो। इतना ही कर लिया तो बहुत। मगर दो-दो नाव पर सवार हो, बहुत मुश्किल में पड़ोगे। दो-दो घोड़ों पर सवार होओगे, अड़चन आएगी। बहुत अड़चन आएगी।
फादर पैरट नाम के एक ईसाई पादरी इस बात पर अति क्रुद्ध थे कि मैंने पोप के इस वचन की आलोचना क्यों की कि स्वयं की पत्नी को वासनामयी नजरों से देखना पाप है। फादर पैरट ने एक संन्यासी स्वामी सत्यानंद से कहा, सुनो स्वामी, तुम्हारे भगवान ने ठीक नहीं किया जो पोप की निंदा की। पोप कहीं गलत बोल सकते हैं? जो भी व्यक्ति अपनी बीबी को कामुक नजरों से देखेगा वह निश्चित ही नरक में पाप का फल भोगेगा।
फिर कुछ दिनों बाद ऐसा संयोग हुआ कि सत्यानंद ब्लू डायमंड में नाश्ता
कर रहे थे, उन्होंने देखा कि उनकी बगल में ही टेबल पर वेश बदल कर साधारण कपड़े पहने फादर पैरट बैठे हुए हैं और टकटकी लगा कर सामने बैठी एक सुंदर युवती को इस तरह देख रहे हैं, मानो अभी इनकी आंखों से लार टपकने वाली है। सत्यानंद ने आश्चर्य से कहा, हलो फादर, गुड मार्निंग! आप यहां क्या कर रहे हैं? क्या आप पोप की शिक्षा भूल गए कि अपनी बीबी को वासना की दृष्टि से देखना भी पाप है?
फादर पैरट एक क्षण को तो सकपका गए, फिर सम्हल कर बोले, मगर स्वामी, तुम
यह क्यों भूल रहे हो कि यह स्त्री मेरी बीबी नहीं है!
फिर आदमी तर्क निकालता है। फिर एक से एक अर्थ निकालता है। फिर बचने के उपाय निकालता है।
पहली तो बात यह समझ लो कि इस ब्रह्मचर्य को जाने दो--यह दो कौड़ी का ब्रह्मचर्य। लेकिन अहंकार इस तरह की सजावटें पसंद करता है।
एक जिज्ञासु खट्टमल ने दादा चूहड़मल फूहड़मल से पूछा कि दादा, एक प्रश्न तो बताओ। मेरा बेटा मुझे बहुत परेशान किए हुए है, बार-बार पूछता है और मैं उत्तर नहीं दे पाता।
दादा ने कहा, पूछो-पूछो। अरे जिज्ञासा न करोगे तो ज्ञान कैसे होगा? क्या प्रश्न है?
खट्टमल बोले, मेरा बेटा मुझसे पूछता है कि पाजामा एक वचन है या बहुवचन?
दादा कुछ सोचे, आंख बंद करके धारणा साधी, धारणा से ध्यान मजबूत किया, ध्यान से समाधि मजबूत की, फिर बोले, बच्चा, ऊपर से एक वचन और नीचे से बहुवचन।
आदमी को अपनी रक्षा तो करनी ही पड़ेगी।

दादा चूहड़मल फूहड़मल के सत्संगी खट्टमल को कुछ दिनों से बुखार आ रहा था। दादा गए देखने, बोले, बच्चा, अब बुखार का क्या हाल है?
खट्टमल ने कहा, दादा, अब बुखार तो टूट गया है, अब केवल कमर में दर्द है। दादा बोले, घबड़ाओ मत, ईश्वर ने चाहा तो वह भी टूट जाएगी।
ज्ञानियों से बचो। किसी ज्ञानी के चक्कर में पड़े हो। नहीं तो यह ब्रह्मचारी कैसे हो गए तुम? पहले तो कामवासना जानी चाहिए, फिर ब्रह्मचर्य तो अपने आप आ जाएगा; लाना तो नहीं पड़ता है। मगर कोई ज्ञानी का सत्संग कर रहे हो; उसने तुम्हें उलझन में डाल दिया, फांसी लगा दी।
एक दिन दादा चूहड़मल फूहड़मल सत्संग करवा रहे थे। बोले कि कल रात मैं दो बजे तक शास्त्रों का अध्ययन करता रहा। एक गोपी से न रहा गया और उसने कहा, दादा, अरे झूठ तो न बोलो। रात तो कल ग्यारह बजे के बाद सारे गांव की बिजली ही चली गई थी।
दादा बोले, चली गई होगी, मैं तो शास्त्र-अध्ययन में इतना मगन था कि मुझे पता ही नहीं चला कि बिजली कब चली गई।
थोड़ी होश की बात करो। इतने मगन न हो जाओ।
कामवासना जीवन की एक अनिवार्यता है; अनुभव से जाएगी, कसमों से नहीं; ध्यान से जाएगी, व्रत-नियम से नहीं। छोड़ना चाहोगे, कभी न छोड़ पाओगे, और जकड़ते चले जाओगे। इसलिए पहली तो बात, यह छोड़ने की धारणा छोड़ दो। जो ईश्वर ने दिया है, दिया है। और दिया है तो कुछ राज होगा। इतनी जल्दी न करो छोड़ने की, कहीं ऐसा न हो कि कुंजी फेंक बैठो और फिर ताला न खुले।
कामवासना कोई पाप तो नहीं। अगर पाप होती तो तुम न होते। पाप होती तो ऋषि-मुनि न होते। पाप होती तो बुद्ध महावीर न होते। पाप से बुद्ध और महावीर कैसे पैदा हो सकते हैं? पाप से कृष्ण और कबीर कैसे पैदा हो सकते हैं? और जिससे कृष्ण और कबीर, बुद्ध और महावीर, नानक और फरीद पैदा होते हों, उसे तुम पाप कहोगे? जरूर देखने में कहीं चूक है, कहीं भूल है। कामवासना तो जीवन का स्रोत है। उससे ही लड़ोगे तो आत्मघाती हो जाओगे। लड़ो मत, समझो। भागो मत, जागो। मैं नहीं कहता कि कामवासना छोड़नी है; मैं तो कहता हूं समझनी है, पहचाननी है। और एक चमत्कार घटित होता है; जितना ही समझोगे उतनी ही क्षीण हो जाएगी, क्योंकि कामवासना का अंतिम काम पूरा हो जाएगा। कामवासना का अंतिम काम है तुम्हें आत्म-साक्षात्कार करवा देना। तुम हैरान होओगे मेरी बात सुन कर। इसीलिए तो मुझे गालियां दी जाती हैं। कामवासना का पहला काम है तुम्हें जीवन देना और दूसरा काम है तुम्हें जीवन के स्रोत से परिचित करा देना। बस दो काम पूरे हो गए कि कामवासना अपने आप चली जाती है। सीढ़ी के तुम पार हो गए, अब सीढ़ी की कोई जरूरत न रही। परमात्मा उसे खुद खींच लेता है। जैसे दी है वैसे ही खींच लेता है। न तुमने बनाई है, न तुम मिटा सकते हो--इतना मैं तुमसे कहे देता हूं। जिसने बनाई है वही मिटा सकता है। तुम उपयोग कर लो।
एक काम तो हो गया कि तुम्हें जीवन मिल गया, अब दूसरा काम बाकी रह गया है, अधूरा है। अगर उसे पूरा न किया तो फिर-फिर आना पड़ेगा, फिर-फिर आना पड़ेगा। दूसरा काम है कि अब अपनी कामवासना को समझने में लगो कि यह है क्या। और निंदा मत करना। निंदा की तो समझोगे कैसे? दुश्मनी कर ली पहले से तो फिर आंखें ही न मिला सकोगे।
निष्पक्ष भाव से समझने की कोशिश करो, यह कामवासना क्या है। इसके साक्षी बनो। जिस दिन तुम पूरे साक्षी हो जाओगे, चमत्कार घटित होता हैः कामवासना तिरोहित हो जाती है। फिर तुम लाना भी चाहो तो नहीं ला सकते। अभी तुम कहते हो, कैसे जाए? तब तुम पूछो भी हरिकृष्णदास ब्रह्मचारी कि लाना है वापिस, फिर कोई उपाय नहीं। फिर लाख उपाय करो तो सब व्यर्थ है। काम पूरा हो गया कि गई।
लड़ो मत। लड़ाई अति है। एक अति है कामुक व्यक्ति की, जो चौबीस घंटे कामवासना में डूबा हुआ है; दूसरी अति है ब्रह्मचारी की कि चौबीस घंटे लड़ रहा है। मगर दोनों का केंद्र कामवासना है।
दादा चूहड़मल फूहड़मल एक दिन कह रहे थे, कुछ भी करो, लोग नाराज ही होते हैं।

मैंने पूछा, अपनी बात जरा साफ करिए।
कहने लगे, पहले मैं उस मारवाड़ी मूरख चंदूलाल को कामदेव की औलाद कहता था, क्योंकि उसका बाप बहुत ही कामुक, लफंगा और एक जाना-माना गुंडा था। इस बात पर वह बहुत गुस्सा होता था। सत्य उसे कड़वा लगता था। मैंने सोचा कि चलो इस चंदूलाल को खुश करने के लिए आज झूठ बोल दूं। मैं झूठ बोला, मगर फिर भी उस मारवाड़ी को बात मीठी न लगी। साला क्रोध में भनभना उठा।
मैंने पूछा, दादा, आपने ऐसा कौन-सा झूठ बोल दिया जिससे वह क्रोध में भनभना उठा? आपने क्या कहा था?
बोले, आज मैंने उससे कहा था, कहो ब्रह्मचारी के बच्चे, क्या हाल हैं!
एक अति से दूसरी अति पर जाने में देर नहीं लगती। कहां कामदेव की औलाद-- उल्लू मर गए औलाद छोड़ गए! और आज तुम अचानक कहोगे--लल्लू मर गए औलाद छोड़ गए! मतलब तो वही निकलेगा। आज कहने लगे कि ऐ ब्रह्मचारी के बच्चे! उसे और ही गुस्सा आ गया। पहले कम से कम बात सच भी थी, अब तो बात की हद हो गई।
मगर ऐसी ही अतियों पर चित्त डोलता रहता है।
भजन-प्रतियोगिता थी। दादा भी गए थे। कहने लगे मुझसे कि मैंने माइक पर
एक भजन गाया तो किसी दुष्ट ने एक जूता फेंका।
मैंने कहा, दादा, यह तो हद हो गई! फिर क्या हुआ? फिर आपने क्या किया? अरे--बोले--करते क्या! मेरे लिए एक जूता बेकार था, सो मैंने एक भजन और सुना दिया।
कामवासना को समझो। यह भजन गाने से जाएगी नहीं; और जूते पड़ जाएंगे। आदमी अपने ही हाथ से पिटता है; खुद को ही पीटता है। थोड़ा सजग होओ। थोड़ी बुद्धिमत्ता का उपयोग करो।
कामवासना बड़ा रहस्य है जीवन का, सबसे बड़ा रहस्य। उसके पार बस एक ही रहस्य है--परमात्मा का। इसलिए मैं कहता हूं, जीवन में दो रहस्य हैं--एक संभोग और एक समाधि। तीसरा कोई रहस्य नहीं है। संभोग ने तुम्हें जीवन दिया है और समाधि तुम्हें नया जीवन देगी। संभोग ने तुम्हें देह का जीवन दिया है, समाधि तुम्हें आत्मा का जीवन देगी।
लेकिन तुम कामवासना को एक किनारे कर दो। तुम उससे झगड़ो मत, उलझो मत, लड़ो मत। उसे मिटाने की चेष्टा न करो। तुम ध्यान में अपनी ऊर्जा को लगाओ। ध्यान आएगा, वासना ध्यान में रूपांतरित हो जाएगी। अभी तुमने बच्चों को जन्म दिया; यह एक कामवासना का रूप हुआ। जब ध्यान में जीओगे तो स्वयं को जन्म देने में समर्थ हो जाओगे। ऐसे व्यक्ति को ही हमने द्विज कहा है; वही ब्राह्मण है।

आखिरी प्रश्नः बस आखिरी बार दादा चूहड़मल फूहड़मल के संबंध में थोड़ा हलुवा और बांटें। और यह भी बताएं कि मियां जुम्मन का बकरा कमरे से क्यों निकल भागा था और फिर लौटा क्यों नहीं?

जोगेंदर सिंह, सत श्री अकाल! सिंधी हलुवा में और तुम्हारा ऐसा कृपाण लेकर और साफा बांध कर कूद पड़ना, जैसे कि कोई समोसा पग्गड़ बांध ले और लेकर कृपाण और सिंधी हलुवा में कूद पड़े और एकदम गदर मचा दे!
कहावत है नः दाल-भात में मूसरचंद। उसको बदल दो। कहोः दाल-भात में मूसरसिंह! कहां मूसरचंद, गए वे जमाने!
मगर एक बात तुमने सच कही कि दादा चूहड़मल फूहड़मल के संबंध में थोड़ा हलुवा और! सिंधी हलुवा गजब की चीज है। और सब मिठाइयां, बस मिठाइयां हैं-- सांसारिक समझो। सिंधी हलुवा आध्यात्मिक। मैं अनुभव से कहता हूं। मैंने चखा नहीं। चखने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।
मैं जिस रास्ते से कालेज पढ़ाने जाता था, उस रास्ते पर सिंधी हलुवा बिकता था--बड़ा रंगीन, रंग-बिरंगे ढंग से बिकता था! और इतना सस्ता कि मैं चकित होता था कि आठ आना सेर! हलुवा और आठ आना सेर! एक दिन मैंने कहा कि ले तो चलूं, किसी को चखाऊंगा। जब मैंने हलुवा लिया तो मैं और हैरान हुआ, वह यूं कंपे जैसे मनुष्य का मन कंपता है। मैं और डरा कि यह क्या, चीज क्या है यह! जिनके घर में मैं रहता था, वहां लाया, उन्होंने सबने मुझसे कहा--बाहर

फेंको! सिंधी हलुवा है, बाहर करो! यह काहे के लिए लाए? आठ आने किसलिए खराब किए?
मैंने कहा, मैंने तो सोचा, इतनी सस्ती मिठाई, ले चलूं।
उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, इसको एकदम हटा दो। पास में एक बुढ़िया रहती थी, भिखारिन, उसको दे आओ। तो मैंने उस भिखारिन को दिया। उसने देखते ही से कहा, फेंक दे! फेंक दे! सिंधी हलुवा है!
सो मैंने चखा नहीं, मगर इतना अनुभव मुझे है। और समोसा और उसमें कूद पड़े तो सब गड़बड़ हो जाएगी। इसलिए बहुत हो चुका, अब और नहीं।
आज इतना ही।